माध्यमिक पाठ्यक्रम

संस्कृत साहित्य-248

पुस्तक-1

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
ए-24-25, संस्थागत क्षेत्र, सेक्टर- 62
नोएडा - 201 309 (उत्तर प्रदेश)
वेबसाइट : www.nios.ac.in निर्मूल्य दूरभाष- 18001809393

© राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान National Institute of Open Schooling

प्रथम संस्करण 2021 First Edition 2021 (Copies)

ISBN (Book 1)

ISBN (Book 2)

सचिव, राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, ए-२४-२५, संस्थागत क्षेत्र, सेक्टर- ६२ नोएडा - २०१ ३०९
(उत्तर प्रदेश) द्वारा प्रकाशित। ..... द्वारा मुद्रित।

माध्यमिक स्तर
संस्कृत साहित्य-248

सलाहकार समिति

प्रो. सरोज शर्मा
अध्यक्ष
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा-संस्थान
नोएडा, (उत्तर प्रदेश)-201309

डॉ. राजीव कुमार सिंह
निदेशक (शैक्षिक)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा-संस्थान
नोएडा, (उत्तर प्रदेश)-201309

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

समिति अध्यक्ष
स्वामी आत्मप्रियानन्द
कुलपति, रामकृष्ण मिशन विवेकानंद विश्वविद्यालय
बेलुर मठ, हावड़ा-711202 (प. बंगाल)

समिति उपाध्यक्ष
डॉ. वेंकट रमण भट्ट
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत अध्ययन विभाग)
रामकृष्ण मिशन विवेकानंद विश्वविद्यालय
बेलुर मठ, हावड़ा-711202 (प. बंगाल)

श्री पलाश घोडई
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत विभाग)
राजा नरेन्द्र लाल खान महिला महाविद्यालय
मण्डल-पश्चिम मेदिनीपुरम-721102 (प. बंगाल)

श्री सुमन्त चौधरी
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत विभाग)
सबं सजनीकान्त महाविद्यालय
पत्रालय-लुटुनिया, रक्षालय-सबं
मण्डल-पश्चिम मेदिनीपुरम-721166 (प. बंगाल)

डॉ. भास्करानन्द पाण्डेय
उपप्राचार्य, सर्वोदय बाल विद्यालय, नई दिल्ली

श्री मलय पोडे
सहायक प्राध्यापक (W.B.E.S.) (संस्कृत विभाग)
राणीबाँध, मण्डल-बाँकुडा-722135 (प. बंगाल)

श्री सन्तु कुमार पान
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत विभाग)
विजयनारायण महाविद्यालय
पत्रालय- इटाचुना, मण्डल-हुगली-712147 (प. बंगाल)

स्वामी वेदतत्त्वानन्द
प्राचार्य, रामकृष्ण मठ विवेकानंद वेद विद्यालय
बेलुर मठ, मण्डल-हावड़ा-711202 (प. बंगाल)

डॉ. राम नारायण मीणा
सहायक निदेशक (शैक्षिक)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, (उत्तर प्रदेश)-201309

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ. राम नारायण मीणा
सहायक निदेशक (शैक्षिक)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, (उत्तर प्रदेश)-201309

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

संपादक मण्डल

डॉ. वेंकटरमण भट्ट
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत अध्ययन विभाग)
रामकृष्ण मिशन विवेकानंद विश्वविद्यालय
बेलुर मठ, हावड़ा-711202 (प. बंगाल)

स्वामी वेदतत्त्वानन्द
प्राचार्य
रामकृष्ण मठ विवेकानंद वेद विद्यालय
बेलुर मठ, मण्डल-हावड़ा 711202 (प. बंगाल)

पाठ लेखक

(पाठः 1, 2, 3, 19, 15)
श्री सन्तु कुमार पान
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत विभाग)
विजयनारायण महाविद्यालय
पत्रालय- इटाचुना, मण्डल-हुगली- 712147 (प. बंगाल)

(पाठः 1, 2, 3, 19, 15)
श्री मलय पोडे
सहायक प्राध्यापक (W.B.E.S.) (संस्कृत विभाग)
राणीबाँध, मण्डल-बाँकुडा- 722135 (प. बंगाल)

(पाठः 4-7)
श्री राहुल गाजि
अनुसन्धाता (संस्कृत विभाग)
जादवपुर विश्वविद्यालय
कलकत्ता - 700032 (प. बंगाल)

(पाठः 4-7)
श्री पलाश घोडई
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत विभाग)
राजा नरेन्द्र लाल खान महिला महाविद्यालय
मण्डल-पश्चिम मेदिनीपुरम-721102 (प. बंगाल)

(पाठः 8)
डॉ. वेंकट रमण भट्ट
सहायक प्राध्यापकः (संस्कृत अध्ययन विभाग)
रामकृष्ण मिशन विवेकानंद विश्वविद्यालय
बेलुर मठ, हावड़ा-711202 (प. बंगाल)

(पाठः 19-22)
श्री सुमन्त चौधरी
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत विभाग)
सब सजनीकान्त महाविद्यालय
पत्रालय-लुटुनिया, रक्षालय-सबं
मण्डल-पश्चिम मेदिनीपुरम-721166 (प. बंगाल)

अनुवादक मण्डल

डॉ. योगेश शर्मा
सहायक प्रोफेसर (संस्कृत)
संस्कृत, दर्शन और वैदिक अध्ययन विभाग
बनस्थली विद्यापीठ, टोंक-304022 (राजस्थान)

सुश्री प्रियंका रस्तोगी
अनुसन्धाता
संस्कृत, दर्शन और वैदिक अध्ययन विभाग
बनस्थली विद्यापीठ, टोंक-304022 (राजस्थान)

डॉ. राम नारायण मीणा
सहायक निदेशक (शैक्षिक)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, (उत्तर प्रदेश)-201309

श्री पुनीत त्रिपाठी
वरिष्ठ कार्यकारी अधिकारी (शैक्षिक)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, (उत्तर प्रदेश)-201309

रेखाचित्राङ्कन और मुखपृष्ठ चित्रण

स्वामी हररूपानन्द
रामकृष्ण मिशन, बेलुर मठ
मण्डल-हावड़ा- 711202 (प. बंगाल)

आप से दो बातें...

अध्यक्षीय सन्देश

प्रिय शिक्षार्थी,

'भारतीय ज्ञान परम्परा' पाठ्यक्रम के अध्ययन के लिए आपका हार्दिक स्वागत करता हूँ। भारत अति प्राचीन और विशाल देश है। भारत का वैदिक वाङ्मय भी उतना ही प्राचीन, प्रशंसनीय और श्रेष्ठ है। सृष्टिकर्ता भगवान ही भारतीयों के सम्पूर्ण विद्याओं के प्रेरक हैं, ऐसा सिद्धान्त शास्त्रों में प्राप्त होता है। भारत के प्रसिद्ध विद्वान, सामान्य जनमानस तथा अन्य ज्ञानी लोगों के बीच प्राचीन काल में आदान-प्रदान का माध्यम संस्कृत भाषा ही थी ऐसा सभी को ज्ञात है। इतने लम्बे काल में भारत के इतिहास में जो शास्त्र लिखे गए, जो चिन्तन हुए, जो भाव प्रकट हुए वे सभी संस्कृत भाषा के साहित्यरूपी भण्डार में निबद्ध हैं। इस भण्डार का आकार कितना है, भाव कितने गंभीर हैं, मूल्य कितना अधिक है, इसका निर्धारण करने में कोई भी समर्थ नहीं है। प्राचीन काल में भारतीय क्या-क्या पढ़ते थे, वह निम्न श्लोक के माध्यम से प्रकट होता है -

अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः। पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश॥ (वायुपुराणम् 61.78)

इस श्लोक में चौदह प्रकार की विद्याएँ बताई गयी हैं। चार वेद (और चार उपवेद), छः वेदाङ्ग मीमांसा (पूर्वोत्तरमीमांसा), न्याय (आन्वीक्षिकी), पुराण (अठारह मुख्य पुराण और उपपुराण), धर्मशास्त्र (स्मृति) ये चौदह विद्या कहलाते हैं। इनके अलावा अनेक काव्य ग्रंथ और बहुत ही शास्त्र हैं। इन सभी विद्याओं का प्रवाह ज्ञान प्रदान करने वाला, प्रगति करने वाला और वृद्धि करने वाला है जो प्राचीन समय से ही चल रहा है। समाज के कल्याण के लिए भारत में विद्या दान परम्परा के रूप में गुरुकुलों में आध्यात्मिक, मनोवैज्ञानिक, आयुर्वेद, राजनीति, दण्डनीति, काव्य, काव्य शास्त्र और अन्य बहुत से शास्त्रों का अध्ययन-अध्यापन होता रहा है।

विद्या के शिक्षण के लिए ब्रह्मचारी परिवार को छोड़कर गुरुकुल में ब्रह्मचर्याश्रम को धारण कर जीवन बिताते थे और इन विद्याओं में पारंगत होते थे। इन विद्याओं में आज भी कुछ पारंगत लोग हैं। प्राकृतिक परिवर्तनों, विदेशी आक्रमणों, स्वदेश में हो रही ऊठा-पटक इत्यादि अनेक कारणों से पहले जैसी अध्ययन-अध्यापन की परम्परा अब छूटती जा रही हैं। इन पाठ्यक्रमों की, परीक्षा, प्रमाणपत्र इत्यादि आधुनिक शिक्षण पद्धति के द्वारा कुछ राज्यों/प्रदेशों में होता है, परन्तु बहुत से राज्यों/प्रदेशों में नहीं होता है। अतः इन प्राचीन शास्त्रों के अध्ययन, परीक्षण और प्रमाणीकरण का होना आवश्यक है। इसे ध्यान में रखकर यह पाठयक्रम राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान के द्वारा प्रारम्भ किया गया है। लोगों के कल्याण के लिए जितना ज्ञान आवश्यक है वैसा ज्ञान इन शास्त्रों में निहित है और मनुष्य के सामने प्रकट हो, ऐसा लक्ष्य है। जिसके द्वारा सभी यहाँ पर सुखी हों, सभी निरोगी हों, सभी कल्याण दृष्टि से कल्याणकारी हों, किसी को कोई दुःख नहीं हो, कोई किसी को दुःख नहीं दें, इस प्रकार अत्यन्त उदार उद्देश्य को ध्यान में रखकर 'भारतीय ज्ञान परम्परा' इस नाम से पाठ्यक्रम का निर्माण किया गया है। विज्ञान शरीरारोग्य का चिन्तन करता है। कला विषय मनोविज्ञान तथा आध्यात्मिक विज्ञान को का पोषण करता है। विज्ञान साधन स्वरूप और सुखोपभोग साध्य है। अतः निःसन्देह रूप से कहा जा सकता है कि कला विषय शाखा विज्ञान से भी श्रेष्ठ है। कला को छोड़कर विज्ञान से सुख प्राप्त नहीं किया जा सकता है बल्कि विज्ञान को छोड़कर कला से सुख को अवश्य प्राप्त कर सकते हैं।

यह संस्कृत साहित्य का पाठ्यक्रम छात्रानुकूल, ज्ञानवर्धक, लक्ष्य साधक और पुरुषार्थ साधक हैं, ऐसा मेरा मानना है। इस पाठ्यक्रम के निर्माण में जिन हिताभिलाषी, विद्वान, उपदेष्टा, पाठ लेखक, त्रुटि संशोधक और मुद्रणकर्ता इत्यादि ने परोक्ष या अपरोक्ष रूप से सहायता की है। उनके प्रति संस्थान की तरफ से मैं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं। रामकृष्ण मिशन-विवेकानन्द विश्वविद्यालय के कुलपति श्रीमान् स्वामी आत्मप्रियानन्द जी का विशेष रूप से धन्यवाद जिनकी अनुकूलता और प्रेरणा के बिना इस कार्य की परिसमाप्ति दुष्कर थी। इस पाठयक्रम के अध्येताओं का विद्या से कल्याण हो, जीवन में सफल हो, विद्वान बनें, देशभक्त हो और समाज सेवक हो, ऐसी हमारी हार्दिक इच्छा है।

अध्यक्ष

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

आप से दो बातें...

निदेशकीय वाक्

प्रिय पाठक,

'भारतीय ज्ञान परम्परा' पाठ्यक्रम को पढ़ने की इच्छा से उत्साहित भारतीय ज्ञान परम्परा के अनुरागी और उपासकों का हार्दिक स्वागत करता हूँ। यह अत्यधिक हर्ष का विषय है कि गुरुकुलों में पढ़ाये जाने वाला पाठ्यक्रम हमारे राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान के पाठ्यक्रम में भी सम्मिलित किया गया है। आशा है की लम्बे समय से हमारी प्राचीन संस्कृति से जो दूरी थी वह अब समाप्त हो जाएगी। हिन्दु, जैन और बौद्ध धर्म के धार्मिक, आध्यात्मिक और काव्यादि वाङ्गमय प्रायः संस्कृत में लिखा हुआ है। सैकड़ों, करोड़ों मनुष्यों के प्रिय विषयों की भूमिका के माध्यम से प्रस्तुत प्रवेश योग्यता के द्वारा और मन को प्रसन्न करने के लिए माध्यमिक स्तर और उच्चतर माध्यमिक स्तर पर कुछ विषय सम्मिलित किये गए हैं। जैसे आंग्ल, हिंदी, आदि भाषा ज्ञान के बिना उस भाषा के लिखे गए माध्यमिक स्तरीय ग्रन्थ पढ़ने में और समझ में सक्षम नहीं हो सकते हैं, वैसे ही यहाँ पर प्रारम्भिक संस्कृत तथा हिन्दी भाषा को नहीं जानते तो, इस पाठ्यक्रम को जानने में समर्थ नहीं हो सकते हैं। अतः प्रारम्भिक संस्कृत तथा हिन्दी के विद्वान् छात्र यहाँ इस पाठ्यक्रम के अध्ययन के अधिकारी है ऐसा जानना चाहिए।

गुरुकुलों में अध्ययन करने वाले छात्र आठवीं कक्षा तक जितना संभव हो अपनी परंपरा से अध्ययन करें। नौवीं, दशवीं कक्षा और ग्यारहवीं तथा बारहवीं कक्षा तक भारतीय ज्ञान परम्परा के इस पाठ्यक्रम का निष्ठा से नियमित अध्ययन करें। इस पाठ्यक्रम से विद्यार्थी उच्च शिक्षा के लिए योग्य होंगे।

संस्कृत के विभिन्न शास्त्रों में किया गया कठिन परिश्रम विद्वान, प्राध्यापक, शिक्षक और शिक्षाविद इस पाठ्यक्रम का प्रारूप रचना में, विषय निर्धारण के लिए, विषय परिमाण निर्धारण में, विषय प्रकट करने का, भाषा स्तर निर्णय में और विषय पाठ लिखने में संलग्न हैं। अतः इस पाठ्यक्रम का स्तर उन्नत होना है।

संस्कृत साहित्य की यह स्वाध्याय सामग्री आपके लिए पर्याप्त, सुबोध, रुचिकर, आनन्दरस को प्रदान करने वाली, सौभाग्य प्रदान करने वाली, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि पुरुषार्थों के लिए उपयोगी रहेगी, ऐसी हम आशा करते हैं। इस पाठ्यक्रम का प्रधान लक्ष्य है की भारतीय ज्ञान परम्परा का शैक्षणिक क्षेत्रों में विशिष्ट और योग्य स्थान स्वीकृत होना चाहिए। यह लक्ष्य इस पाठ्यक्रम के माध्यम से पूर्ण होगा, ऐसा हमारा दृढ विश्वास है। पाठक अध्ययनकाल में यदि मानते है की इस अध्ययन सामग्री में, पाठ के सार में, जहाँ संशोधन, परिवर्तन और परिवर्धन संस्कार चाहते हैं, उन सभी के प्रस्ताव का हम स्वागत करते हैं। इस पाठ्यक्रम को फिर भी और अधिक प्रभावी, उपयोगी और सरल बनाने में आपके साथ हम हमेशा तत्पर हैं।

सभी अध्येताओं के अध्ययन में सफलता, जीवन में सफलता और कृतकृत्य के लिए हमारे आशीर्वचन हैं।

किं बाहुना विस्तरेण।

अस्माकं गौरववाणीं जगति विरलाम् सर्वविद्याया लक्ष्यभूताम् एव उद्धरामिद्य

सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्।

दुर्जनः सज्जनो भूयात् सज्जनः शान्तिमाप्नुयात्।

शान्तो मुच्येत बन्धेभ्यो मुक्तश्चान्यान् विमोचयेत्॥

स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया।

मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी॥

निदेशक (शैक्षिक)

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

आप से दो बातें...

समन्वयक वचन

प्रिय जिज्ञासु,

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु सह वीर्य करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

परम्परा को आधार मानकर यह प्रार्थना है कि हमारा अध्ययन विघ्नों से रहित हो। अज्ञान का नाश करने वाला तेजस्वी हो। द्वेष भावना का नाश करने वाला हो। विद्या लाभ के द्वारा सभी कष्टों का निवारण करने वाला हो।

'भारतीय ज्ञान परम्परा' पाठ्यक्रम के अङ्गभूत यह पाठ्यक्रम माध्यमिक कक्षा के लिए निर्धारित किया गया है। इस पाठ्यक्रम की अध्ययन सामग्री आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए मैं परम हर्ष का अनुभव कर रहा हूँ। सरल संस्कृत तथा हिन्दी भाषा को जो जानता है वह इसके अध्ययन में समर्थ है।

विद्वानों का अभिप्राय और अनुभवों के आधार पर काव्य और काव्यशास्त्र का फल रस ही है। आनंद रस स्वरूप ही है। सभी प्राणियों का सभी कार्य आनंद और सुखपूर्वक सम्पन्न हों, यहीं प्रबल इच्छा है। काव्य के सभी विषय रस में ही स्थित हैं। काव्यों के अनेक प्रकार हैं और काव्य प्रपंच सबसे महान हैं। काव्य बहुत हैं। उनमें से विविध काव्यांशों का चयन करके इस पाठ्य सामग्री में सम्मिलित किया गया है। इसी प्रकार साहित्य का सामान्य स्वरुप, काव्य का स्वरुप, भेद आदि प्रारम्भिक ज्ञान यहाँ पर दिया गया है। पारम्परिक गुरुकुलों में जिस शिक्षण पद्धति से पाठ दिए जाते थे, उसी पद्धति का अनुसरण कर यह पाठ्यक्रम प्रतिपादित किया गया है।

माध्यमिक कक्षा हेतु निर्धारित साहित्य विषय का यह पाठ्यक्रम अत्यन्त उपकारक है। शिक्षार्थी इसके अध्ययन से ज्ञान प्राप्त करने में समर्थ होंगे। इसके अध्ययन से छात्र अन्य काव्यों में प्रवेश के योग्य होंगे। यह पाठ्य सामग्री काव्य और काव्यशास्त्र का श्रद्धा सहित अध्ययन में प्रवेश के लिए और मन को शांति देने वाली है। इस पाठ्य सामग्री के आकार पर नहीं जाना चाहिए और न इससे भय होना चाहिए। परन्तु गम्भीर रूप से अध्ययन करना चाहिए।

सम्पूर्ण पाठ्य पुस्तक दो भागों में विभक्त है। पाठक पाठो को अच्छी तरह से पढ़कर पाठ में आये प्रश्नों के उत्तरों पर स्वयं विचार कर अन्त में दिए हुए प्रश्नों के उत्तरों को देखें, और उन उत्तरों को अपने उत्तरों से मिलाएं। प्रत्येक पत्र में दिए हुए रिक्त स्थान पर टिप्पणी करनी चाहिए। पाठ के अन्त में दिये प्रश्नों के उत्तरों का निर्माण करके परीक्षा के लिए तैयार हो जाएँ।

शिक्षार्थी अध्ययन काल में किसी भी कठिनता का अनुभव करते हैं, तो अध्ययन केन्द्र में किसी भी समय जाकर के समस्या के समाधान के लिए आचार्य के समीप जाएँ या राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान के साथ ई-पत्रद्वारा सम्पर्क करें। वेबसाइट पर भी संपर्कव्यवस्था है। वेबसाइट www.nios.ac.in इस प्रकार से है।

ये पाठ्य विषय आपके ज्ञान को बढ़ाए, परीक्षा में सफलता को प्राप्त करवाए, आपकी विषय में रुचि बढ़ाए, आपका मनोरथ पूर्ण करे, ऐसी कामना करता हूँ।

अज्ञानान्धकारस्य नाशाय ज्ञानज्योतिषः दर्शनाय च इयं में हार्दिकी प्रार्थना
ॐ असतो मा सद् गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मामृतं गमय ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

भवत्कल्याणकामी,
पाठ्यक्रम समन्वयक
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

अपने पाठ कैसे पढ़ें!

संस्कृत साहित्य, माध्यमिक स्तर की इस पाठ्य सामग्री को विशेष रूप से आपकी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए निर्मित किया गया है। आप स्वतंत्र रूप से स्वयं पढ़ सकें इसलिए इसे एक प्रारूप में ढाला गया है। निम्नलिखित संकेत आपको सामग्री का सर्वोत्तम उपयोग करने का तरीका बताएंगे। दिए गए पाठों को कैसे पढ़ना है आइए, जानें

पाठ का शीर्षक : इसे पढ़ते ही आप अनुमान लगा सकते हैं कि पाठ में क्या दिया जा रहा है। इसे पढ़िए।

भूमिका : यह भाग आपको पूर्व जानकारी से जोड़ेगा और दिए गए पाठ की सामग्री से परिचित कराएगा। इसे ध्यानपूर्वक पढ़िए।

उद्देश्य : प्रस्तुत पाठ को पढ़ने के बाद आप इस पाठ के उद्देश्यों को प्राप्त करने में समर्थ हो जाएंगे। इन्हें याद कर लीजिए।

पाठगत प्रश्न : इसमें एक शब्द अथवा एक वाक्य में पूछे गए प्रश्न हैं तथा वस्तुनिष्ठ प्रश्न हैं। ये प्रश्न पढ़ी हुई इकाई पर आधारित है इनका उत्तर आपको देते रहना है। इसी से आपकी प्रगति की जाँच होगी। ये सवाल हल करते समय आप हाथ में पेंसिल रखिए और जल्दी-जल्दी सवालों के समाधान ढूँढ़ते रहिए और अपने उत्तरों की जाँच पाठ के अंत में दी गई उत्तरमाला से मिलाइए। उत्तर ठीक न होने पर इकाई को पुनः पढ़िए।

आपने क्या सीखा : यह पूरे पाठ का संक्षिप्त रूप है- कहीं यह बिंदुओं के रूप में है, कहीं आरेख के रूप में तो कहीं प्रवाह चार्ट के रूप में। इन मुख्य बिंदुओं का स्मरण कीजिए। यदि आप कुछ अपने मतलब की मिलती-जुलती नई बातें जोड़ना चाहते हैं तो उन्हें भी वहीं बढ़ा सकते हैं।

पाठांत प्रश्न : पाठ के अंत में दिए गए लघु उत्तरीय तथा दीर्घ उत्तरीय प्रश्न हैं। इन्हें आप अलग पृष्ठों पर लिखकर अभ्यास कीजिए। यदि चाहें तो अध्ययन केन्द्र पर अपने शिक्षक या किसी उचित व्यक्ति को दिखा भी सकते हैं और उन पर नए विचार ले सकते हैं।

उत्तरमाला : आपको पहले ही बताया जा चुका है इसमें पाठगत प्रश्नों और क्रियाकलापों के उत्तर दिए जाते हैं। अपने उत्तरों की जाँच इस सूची से कीजिए।

पुस्तक-1

सुभाषित आदि

1. सुभाषित-2
2. सुभाषित-2
3. प्रहेलिका तथा समस्या श्लोक

कथा तथा साहित्य

4. वेताल पच्चीसी-2
5. वेताल पच्चीसी-2
6. शुकसप्तति
7. पञ्चतन्त्र

काव्यशास्त्र का परिचय

8. काव्यशास्त्र प्रवेश-2
9. काव्यशास्त्र प्रवेश-2
10. काव्यशास्त्र प्रवेश-2
11. काव्य के प्रकार

पुस्तक-2

रामायण का अध्ययन

(वाल्मीकि रामायण के किष्किन्धा काण्ड
तृतीय सर्ग के 2-39 श्लोक)

12. राम तथा हनुमान का मिलन
13. हनुमान द्वारा राम लक्ष्मण की प्रशंसा वचन
14. राम के द्वारा हनुमान के प्रति प्रशंसा वचन
15. राम और सुग्रीव की मैत्री

कर्णभारम्

16. कर्ण का परिताप
17. अस्त्र का वृतांत
18. कवच तथा कुण्डल का दान

किरातार्जुनीयम्

(प्रथम सर्ग 2-30 श्लोक)

19. वनेचर के चरानुरूप वचन
20. कपटी दुर्योधन का धर्माचरण
21. शङ्कित दुर्योधन का नीतिकौशल
22. युधिष्ठिर प्रबोध

संस्कृत साहित्य

माध्यमिक पाठ्यक्रम-248

पुस्तक-1

क्र. सं.	विषय सूची	पृष्ठ संख्या
सुभाषित आदि		
1.	सुभाषित-1	1-14
2.	सुभाषित-2	15-28
3.	प्रहेलिका तथा समस्या श्लोक	29-44
कथा तथा साहित्य		
4.	वेताल पच्चीसी-1	45-64
5.	वेताल पच्चीसी-2	65-76
6.	शुकसप्तति	77-96
7.	पञ्चतन्त्र	97-114
काव्यशास्त्र का परिचय		
8.	काव्यशास्त्र प्रवेश-1	115-126
9.	काव्यशास्त्र प्रवेश-2	127-150
10.	काव्यशास्त्र प्रवेश-3	151-172
11.	काव्य के प्रकार	173-190

1

सुभाषित-1

ध्यान दें:

प्रस्तावना

बाणभट्ट द्वारा रचित हर्षचरित में सुभाषित का लक्षण इस प्रकार कहा गया है कि

पुराणेष्वितिहासेषु तथा रामायणादिषु।
वचनं सारभूतं यत् तत् सुभाषितमुच्यते॥

अर्थात् पुराणों में, इतिहास में, रामायण आदि महाकाव्यों में अखिल मनुष्य हित के लिए बार-बार कहा गया है कि सत्य को जहाँ सारभूत तत्व से कहा जाता है, वह सुभाषित कहलाता है। संस्कृत में उसी प्रकार की हजारों से अधिक सुभाषित हैं। अगर सुभाषितों के अनुसार जीवन व्यतीत किया जाए तो समस्त जीवन ही सुखमय होता है। उन्हीं सुभाषितों में से दस सुभाषित हम इस पाठ में दिए गए हैं। इस पाठ को पढ़ने से हम विद्या के महत्व को जानेंगे। एवं विद्या के महत्व को जानकर विद्या प्राप्त करने के प्रति हमारी प्रीति उत्पन्न होगी। इन सुभाषितों को पढ़ने से हम जीवन के वास्तविक रास्तों पर चल सकते हैं। सुभाषित में कहे गए रास्ते पर चलने से हमें अवश्य ही लाभ होगा। इस पाठ को पढ़ने से हमें अत्यन्त आनन्द की प्राप्ति होगी।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- विद्या के महत्व को जान पाने में;
- धर्माचरण को किस प्रकार करना चाहिए इसे समझ पाने में;
- वाणी की महत्ता समझ पाने में;
- साहित्य आदि शास्त्रविहीन व्यक्ति की कैसी दशा होती है इसे समझ पाने में;
- श्लोक में स्थित पदों का अन्वय समझ पाने में;
- श्लोकों की व्याख्या कर पाने में।

पाठ-1

सुभाषित-1

ध्यान दें:

1.1 मूलपाठ

दानं भोगो नाशस्तिस्त्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति॥1॥

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं
विद्या भोगकरी यशःसुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः।
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परं दैवतं
विद्या राजसु पूज्यते न तु धनं विद्याविहीनः पशुः॥2॥

अजराऽमरवत्प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिन्तयेत्।
गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्॥3॥

विद्या ददाति विनयं विनयाद् याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद् धनमाप्नोति धनात् धर्मं ततः सुखम्॥4॥

श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन
दानेन पार्णिन तु कङ्कणेन।
विभाति कायः करुणापराणां
परोपकारैः र्न तु चन्दनेन॥5॥

वचो हि सत्यं परमं विभूषणं
लज्जाङ्गनायाः कृशता कटौ च।
द्विजस्य विद्यैव पुनस्तथा क्षमा
शीलं हि सर्वस्य नरस्य भूषणम्॥6॥

केयुराणि न विभूषयन्ति पुरुषं हारा न चन्द्रोज्ज्वला
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालङ्कृता मूर्धजाः।
वाण्येका समलङ्करोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम्॥7॥

नरस्याभरणं रूपं रूपस्याभरणं गुणः।
गुणस्याभरणं ज्ञानं ज्ञानस्याभरणं क्षमा॥8॥

साहित्यसङ्गीतकलाविहीनः
साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः।
तृणं न खादन्नपि जीवमान-
स्तद्भगधेयं परमं पशुनाम्॥9॥

यत्र विद्वज्जनों नास्ति श्लाघ्यस्तत्राल्पधीरपि।
निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते॥10॥

1.2) मूल पाठ

दानं भोगो नाशस्तिस्त्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति॥1॥

सुभाषित-1

अन्वयः- वित्तस्य दानं भोगः नाशः तिस्त्रः गतयः भवन्ति। यो न ददाति, न भुङ्क्ते तस्य वित्तस्य तृतीया गतिः भवति।

अन्वयार्थः- धन की दान-प्रदान, भोग-उपभोग, नाश-विनाश तीन प्रकार की गतियाँ होती हैं। जो मनुष्य ना देता है अर्थात् दान नहीं करता है, न खाता है अर्थात् भोग नहीं करता है, उस मनुष्य के धन की तीसरी गति अर्थात् धन का नाश हो जाता है।

सरलार्थः- धन की दान भोग और नाश ये तीन प्रकार की गतियाँ है। कोई मनुष्य यदि धन का दान नहीं करता और भोग भी नहीं करता है तब उसके धन का विनाश अवश्य होता है।

तात्पर्यार्थः- धन ही सभी मनुष्यों का इष्ट है। हमारे जगत में धन के बिना किसी कार्य की सिद्धि नहीं है। परन्तु उस धन की दान भोग और नाश ये तीन प्रकार की गतियाँ हैं। अर्थात् धन का दान कर सकते है अथवा उसका भोग कर सकते है नहीं तो धन का नाश होगा। जिसके पास में अधिक धन है उस जैसा व्यक्ति यदि गरीबों की अथवा अन्य सुयोग्य पात्र के लिए वह धन नहीं देता है, और स्वयं भी यदि उसका भोग नहीं करता है, केवल संचय ही करता है तब कुछ दिनों के भीतर ही उसका विनाश अवश्य होता है। धन का तो अवश्य ही सभी को उपार्जन करना चाहिए। परन्तु यदि हमारे पास कमाया हुआ धन अधिक होता है तब अवश्य ही गरीबों को अथवा किसी शुभ कार्य के लिए उसका दान करना चाहिए। यदि किसी की दान करने की इच्छा नहीं है फिर उस धन का भोग करना चाहिए। जो दान भी नहीं करता, भोग भी नहीं करता उसके उपार्जित धन का अवश्य ही विनाश होता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

1. भुङ्ते - भुज् धातु प्रथम पुरुष एकवचन

सन्धि युक्त शब्द

1. नाशस्तिस्त्रः - नाशः + तिस्त्रः।
2. तिस्त्रो गतयः - तिस्त्रः + गतयः।
3. गर्तिभवति - गतिः + भवति।

प्रयोग परिवर्तनः- धन का दान के द्वारा, भोग के द्वारा, नाश के द्वारा तीन गतियाँ होती हैं। जो न दान देता है, न भोग करता है उसके धन की तीसरी गति होती है।

छन्द परिचय- इस श्लोक में आर्या छन्द है।

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं
विद्या भोगकरी यशःसुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः।
विद्या बन्धुजनों विदेशगमने विद्या परं दैवतं
विद्या राजसु पूजिता न तु धनं विद्याविहीनः पशुः॥2॥

अन्वयः- विद्या नाम नरस्य अधिकं रूपम्, प्रच्छन्नगुप्तं धनम्, विद्या भोगकरी, यशः सुखकरी, विद्या गुरूणां गुरुः। विद्या विदेशगमने बन्धुजनः, विद्या परा देवता, विद्या राजसु पूज्यते, धनं न तु पूजितम् अस्ति। विद्याविहीनः पशुः।

अन्वयार्थः- विद्या मनुष्य का सर्वश्रेष्ठ सुन्दर रूप है। अन्दर स्थित छिपा हुआ धन है। विद्या भोग की उत्स स्वरूप है, यश और सुख की साधनभूत है। विद्या उपदेश करने वाले गुरुओं का भी गुरु है।

ध्यान दें:

पाठ-1

सुभाषित-1

ध्यान दें:

विद्या विदेश गमन काल में बन्धुजन अर्थात् मित्र स्वरूप है। विद्या ही श्रेष्ठ देवता है। राजाओं द्वारा विद्या ही पूजी जाती है। धन नहीं। विद्या से हीन मनुष्य पशु समान है।

सरलार्थः- विद्या ही मनुष्य का उत्तम सौन्दर्य होता है। यह मनुष्य का संचित धन है। भोग का उत्स स्वरूप है। यह यश और सुख के साधन में सहायक है। विद्या विद्वानों को भी उपदेश प्रदान करती है। विदेश गमन के समय विद्या ही मनुष्य की सहायता करती है। विद्या की अपेक्षा देवता श्रेष्ठ नहीं है। राजसभा जैसे उत्तम स्थान पर भी धन की पूजा नहीं होती है। परन्तु विद्या की तो सब जगह अवश्य ही पूजा होती है। इसलिए जिसके समीप विद्या नहीं है, वह पशु के समान ही है।

तात्पर्यार्थः- विद्या तो सभी शास्त्रों में ही पूजित है। प्रस्तुत इस श्लोक में भी विद्या की ही स्तुति है। विद्या मनुष्य का श्रेष्ठ सौन्दर्य होता है। अर्थात् विद्यावान पुरुष स्वभाविक रूप से ही सुन्दर दिखाई देता है। सौन्दर्य के लिए उसकी वेशभूषा इत्यादि का प्रयोजन नहीं रहता। विद्या पुरुष का अन्तः स्थित छिपा हुआ धन है अर्थात् विद्यावान पुरुष दिखे तो उसके भीतर जो विद्या रूपी धन है उसे बाहर सभी नहीं देख सकते हैं, परन्तु उसकी महिमा है, कार्यकाल में वह धन ही मनुष्य का सहायक होता है। विद्वान मनुष्य जिसका भोग करने की इच्छा करता है, विद्या उस भोग के साधन में सहायक होती है। विद्या है तो मनुष्य का यश भी बढता है। वह मनुष्य सब जगह ही पूजित होता है। विद्या से विनय प्राप्त होता है, विनय से योग्यता प्राप्त होती है और योग्यता से धन की प्राप्ति होती है। और धन से सुख को प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार से विद्या ही सब प्रकार के सुखों की साधनभूत है। महान विद्वान जो हैं वे भी इसी विद्या उपदेश को प्रदान करते हैं। अर्थात् विद्या ही सर्वोत्तम उपदेश देने वाली है। कोई मनुष्य जब अकेले विदेश जाता है, तब यह विद्या ही उसकी बन्धुस्वरूप होती है, कहीं उसके विदेशगमन का हेतु भी प्रायः यह विद्या ही होती है। विद्या के बल से वह विदेश में भी पूज्य स्थान को प्राप्त करता है। विद्या तो श्रेष्ठ देवता है। अतः हम सभी को ही विद्या देवी की पूजा करनी चाहिए। इसका हमें अभीष्ट लाभ अवश्य ही प्राप्त होगा। राजसभा जैसे महान स्थान पर धन की स्तुति नहीं होती, परन्तु विद्या और विद्यावान की स्तुति तो सब ही करते है। अतः धनलाभ की अपेक्षा विद्यालाभ के लिए हमें प्रयत्न करना चाहिए, विद्या प्राप्त है तो फिर धनलाभ अवश्य ही होगा। लेकिन जो विद्या विहीन मूर्ख है, वह सब जगह ही निन्दित है। विद्या के अभाव में उनमें पशुता आती है। अतः विद्यालाभ अति आवश्यक है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

1. प्रच्छन्नगुप्तम्- प्रच्छन्नं च तत् गुप्तं च प्रच्छन्नगुप्तम्, कर्मधारय समास
2. यशः सुखकरी- यशः च सुखं च यशःसुखे - द्वन्द्वसमास
3. विदेशगमने- षष्ठी तत्पुरुष
4. विद्याविहीनः- विद्यया विहीनः विद्याविहीनः - तृतीय तत्पुरुष समास

सन्धि युक्त शब्द

1. बन्धुजनों विदेशगमने - बन्धुजनः + विदेशगमने।

छन्द परिचय- इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडितम् छन्द है।

अजरामवत्प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिन्तयेत्।
गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्॥३॥

अन्वयः- प्राज्ञः अजराऽमरवत् विद्याम् अर्थं च चिन्तयेत्। मृत्युना केशेषु गृहीतः इव, धर्मम् आचरेत्।

सुभाषित-1

अन्वयार्थः- समझदार मनुष्य को अजर अमर के समान बुढ़ापे व मृत्यु से रहित के समान विद्या शास्त्र-कलादि का ज्ञान को धन सम्पत्ति के उपार्जन के लिए सोचना चाहिए। मृत्यु ने केशों को खींचकर पकड़ा हो जैसे ऐसा धारण कर धर्म का, पुण्य का आचरण करना चाहिए।

सरलार्थः- विद्वान व्यक्ति स्वयं को अजर अमर ऐसा मानकर विद्या और अर्थ का उपार्जन करता है, परन्तु मृत व्यक्ति के समान स्वयं को मानकर धर्म के अनुष्ठान को करता है।

तात्पर्यार्थः- जो स्वभावतः ज्ञानी है, वे तो मैं वृद्धावस्था मृत्यु से रहित हूँ ऐसा सोचकर शास्त्रज्ञान का और विभिन्न कलादि के ज्ञान का उपार्जन करना चाहिए। अर्थात् इन ज्ञानों के उपार्जन में कोई शीघ्रता नहीं है। बाल्यकाल से आरम्भ करके मृत्युपर्यनत सम्पूर्ण जीवन धीरे धीरे विद्या और धन प्राप्त कर सकते है। परन्तु धर्म को अर्जित करने के विषय में तो यह शैली भिन्न ही है। हमेशा मृत्यु को प्राप्त हुआ स्वयं को मानकर धर्म को अर्जित करना चाहिए। अर्थात् सदैव बाल्यकाल से आरम्भ करके ही धर्म अर्जित का प्रयत्न करें। साधारण मनुष्य तो बड़े होने पर धर्म का अर्जन करेंगे ऐसा सोचकर युवावस्था में दुष्ट आचरण करते है। परन्तु मृत्यु कब हो जाएगी यह कोई भी बता नहीं सकता। अतः बाल्यावस्था से ही हमेशा धर्मार्जन का प्रयत्न करना चाहिए।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

1. अजराऽमरवत्- अजरश्चासौ अमरश्चेति अजरामरः- कर्मधारय समास
2. चिन्तयेत्- चिन्त धातु विधिलिङ् प्रथम पुरुष एकवचन
3. गृहीतः- ग्रह धातु क्त प्रत्यय पु.

सन्धि युक्त शब्द

1. प्राज्ञो विद्याम् - प्राज्ञः + विद्याम्
2. गृहीत इव - गृहीतः + इव

छन्द परिचयः- इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

विद्या ददाति विनयं, विनयाद् याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद् धनमाप्नोति धनात् धर्मं ततः सुखम्॥4॥

अन्वयः- विद्या विनयं ददाति, विनयात् पात्रतां याति, पात्रत्वात् धनम् आप्नोति, धनात् धर्मं आप्नोति, ततः सुखम् आप्नोति।

अन्वयार्थः- विद्या विनय विनम्रता प्रदान करती है, विनय से, नम्रता से योग्यता आती है, योग्यता से दानादि समपर्ण योग्य सुवर्ण रजतादि धन प्राप्त करता है, धन से यज्ञ दानादि द्वारा धर्म पुण्य को प्राप्त करता है, फिर उस पुण्य से सुख को प्राप्त करता है।

सरलार्थः- विद्या से विनय उत्पन्न होता है। जो विनयी होता है वह सत्पात्रता को प्राप्त करता है। योग्यता से व्यक्ति धन को प्राप्त करता है। धन के समुचित विनियोग से धर्म को प्राप्त करता है। धर्म से ही सुख प्राप्त होता है।

तात्पर्यार्थः- प्रस्तुत इस श्लोक में विद्या का महत्व बताया गया है। कोई व्यक्ति जब विद्या प्राप्त करता है, तब उस विद्या के बल से वह स्वयं ही विनम्र होता है। वह विद्वान सभी का सम्मान करता है। ज्ञान में भी अहंकार प्रदर्शित नहीं करता है। और जो इस प्रकार विनम्र है, वह शीघ्र ही योग्यता को

ध्यान दें:

ध्यान दें:

प्राप्त करते हैं, अर्थात् इस संसार में प्रतिष्ठा को प्राप्त करते है। सभी उस व्यक्ति के ऊपर विश्वास करते हैं। वह विनयी व्यक्ति हर जगह पूजित होता है। जो जगत में प्रतिष्ठा को प्राप्त करता है वह बहुत धन को अर्जित करता है। वह विश्वास कार्य मे नियुक्त कार्य सम्पन्न करने से प्रसाद रूप में अधिक धन को प्राप्त करता है। और उस उपार्जित धन से वह यज्ञ दानादि कार्य करके पुण्य को अर्जित करता है। धन के बिना तो यज्ञादि रूप धर्म साधन कठिन ही होते है। अत: उसके लिए अवश्य ही धन का उपार्जन करना चाहिए। यज्ञ दानादि कर्मों से प्राप्त पुण्य से वह स्त्री, पुत्र, समृद्धि, प्रतिष्ठा, आरोग्यादि से युक्त हमेशा आनन्द से रहता है। इसलिए विद्या ही सभी प्रकार के सुख का साधन है ऐसा कह सकते है। विद्वान पुरुष तो इस दु:खी संसार में भी महान सुख का अनुभव करता है।

अन्य पक्ष से व्याख्या:- सुख का कारण धर्म (जिसमें जिम्मेदारियां भी शामिल हैं) ही है ऐसा सभी आस्तिक दर्शनों का सिद्धान्त है। धर्म पुण्य ही है। पुण्य अर्जन यज्ञ से, दान से, तप आचरण से ही अनुष्ठान होता है। धन प्राप्ति के लिए वृत्ति अथवा व्यापार उपाय है। जो योग्य है वह ही वृत्ति अथवा व्यापार करता है। और वह योग्यता विनय से उत्पन्न होती है। वृत्ति और व्यापार में नियोजित विनयी मनुष्य सब जगह सफल होता है। और विनय की प्राप्ति विद्या लाभ से होती है। एवम् यहाँ सुख के लाभ के लिए परम्परा सम्बन्ध है। व्यवहार में मनुष्य सुख की इच्छा करते हैं और दु:ख के परिहार की इच्छा करते हैं। परन्तु सुख का कारण जो धर्म है उसके लाभ में श्रद्धा नहीं होती हैं। वहाँ कारण केवल अज्ञान है। धर्म सुख कार्य कारण भाव नहीं जानते हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

1. ददाति-दा धातु लट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन
2. आप्नोति-आप् धातु लट् प्रथम पुरुष एकवचन

सन्धि युक्त शब्द

1. पात्रत्वात् धनम्-पात्रत्वात् + धनम्
2. धनाद्धर्मम् - धनात् + धर्मम्

छन्द परिचय:- इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन
दानेन पार्णिन तु कङ्कणेन।
विभाति काय: करुणापराणां
परोपकारै: र्न तु चन्दनेन॥5॥

अन्वय- श्रोत्रं श्रुतेन एव विभाति, कुण्डलेन न विभाति। पाणि: दानेन विभाति, कङ्कणेन तु न विभाति। करुणापराणां काय: परोपकारै: विभाति, चन्दनेन तु न विभाति।

अन्वयार्थ:- कान वेद-शास्त्र इत्यादि के श्रवण से ही शोभित होते हैं, न कि कानों में कुण्डल धारण करने से। हाथ दान कर्म से सुशोभित होते हैं, न कि कंगन से। दयापरायण मनुष्य का शरीर परोपकार से सुशोभित होता है। चन्दन की गन्ध से नहीं।

सरलार्थ:- विद्वानों के कान वेद शास्त्रादि के श्रवण से विभूषित होते हैं, न कि कुण्डल को धारण करने से। उनके हाथ दानादि सत्कर्मों से शोभित होते हैं, न कि कंगनादि आभूषण धारण करने से। जो करुणापरायण व्यक्ति हैं, उनके शरीर परोपकार से ही विभूषित होते हैं, न कि चन्दन के लेप से।

तात्पर्यार्थः- इस श्लोक में महात्माओं विद्वानों में निहित गुणों के माहात्म्य का वर्णन किया गया है। साधारण मनुष्य तो कानों के सौन्दर्य को बढ़ाने के लिए कानों में कुण्डल धारण करते हैं, परन्तु जो सदैव वेद शास्त्रादि का श्रवण करते हैं उनके कान तो उससे ही सुशोभित होते हैं। वहाँ कुण्डल धारण करने का प्रयोजन नहीं है और साधारण मनुष्य हाथ का सौन्दर्य बढ़ाने के लिए हाथ में कंगन धारण करते हैं, परन्तु जो सदैव हाथ से दानादि सत्कर्मों को सिद्ध करते हैं, उसके हाथ उससे ही सुशोभित होते हैं। उसका कंगन धारण से प्रयोजन नहीं होता है। ऐसे ही दरिद्रों पर दयापरायण, कृपालु, परोपकार में रत मनुष्यों के शरीर की शोभा के लिए स्वयं चन्दनादि भूषित नहीं हैं, उनका शरीर तो परोपकार से ही शोभित है। अतः शरीर की शोभा के लिए आभूषणादि को छोड़कर हमें भी सदैव वेदशास्त्र को सुनने, दानादि सत्कर्मों को करने और सदैव परोपकार के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

1. करुणापराणाम्- करुणा परा येषां ते करुणापराः - बहुव्रीहिसमास।
2. परोपकारैः- परेषाम् उपकाराः परोपकाराः - षष्ठीतत्पुरुष समास।

सन्धि युक्त शब्द

1. श्रुतेनैव- श्रुतेन + एव।

छन्द परिचय- इस श्लोक में उपजाति छन्द है।

वचो हि सत्यं परमं विभूषणं
लज्जाङ्गनायाः कृशता कटौ च।
द्विजस्य विद्यैव पुनस्तथा क्षमा
शीलं हि सर्वस्य नरस्य भूषणम्॥6॥

अन्वय- सत्यं वचः हि परमं विभूषणम्। अङ्गनायाः लज्जा कटौ च कृशता परमं विभूषणम्। द्विजस्य विद्या एव पुनः क्षमा तथा परमं विभूषणम्। सर्वस्य नरस्य शीलं हि भूषणम्।

अन्वयार्थः- वास्तव में सत्य वचन श्रेष्ठ विभूषण है। सुन्दर स्त्री का भूषण लज्जा और पतली कमर है। ब्राह्मणों का भूषण विद्या एवं क्षमा ही है। वास्तव में सभी मनुष्यों का अलंकार शील है।

सरलार्थः- सत्य वचन ही व्यक्ति का परम विभूषण है, लज्जा और कमर की क्षीणता ही नारी का श्रेष्ठ अलंकार है, विद्या और क्षमा ब्राह्मण का परम आभूषण है। और सत् चरित्र शील ही सभी मनुष्यों का उत्तम आभूषण होता है।

तात्पर्यार्थः- प्रस्तुत इस श्लोक में सत्य वचन सद्गुणों का माहात्म्य वर्णित है। सत्य वचन ही मनुष्य का अति उत्तम आभूषण होता है, अर्थात् जो सदैव सत्य बोलते हैं। वह सर्वत्र स्वयं ही शोभित और प्रशंसित है। अपनी शोभा को बढ़ाने के लिए उन्हें अन्य आभूषण का प्रयोजन नहीं होता है। विद्वानों की सभा में सत्य भाषण की बहुत प्रशंसा की जाती है। एवं लज्जा और कमर की क्षीणता वास्तव में नारी का श्रेष्ठ अलंकार है। लज्जाशील नारी की तो साहित्य में सदैव ही प्रशंसा की गई है। इसी प्रकार विद्या और क्षमा ब्राह्मण का परम आभूषण होता है। जिस ब्राह्मण के समीप विद्या और क्षमा है वह तो गुणियों की सभा में प्रशंसित होता है। समर्थों में क्षमा तो अनेक प्रकार से प्रशंसित है और इस प्रकार से ही सत्चरित्र सभी मनुष्यों का सबसे उत्तम आभूषण होता है। सत् चरित्रवान् पुरुष संसार में बिना प्रयास से प्रतिष्ठा को प्राप्त करता है। अतः हमें भी हमारे चरित्रों में सत्त्व का उत्पादन करना चाहिए।

ध्यान दें:

पाठ-1

सुभाषित-1

ध्यान दें:

सन्धि युक्त शब्द

1. वचो हि - वचः + हि।
2. लज्जाङ्गनाया - लज्जा + अङ्नायाः।
3. विद्यैव - विद्या + एव
4. पुनस्तथा - पुनः + तथा।

छन्द परिचय- प्रस्तुत इस श्लोक में वंशस्थ छन्द है।

केयूराणि न विभूषयन्ति पुरुषं हारा न चन्द्रोज्ज्वला
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालङ्कृता मूर्धजाः।
वाण्येका समलङ्करोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम्॥7॥

अन्वय- केयूराणि न चन्द्रोज्जवलाः हाराः न, स्नानं न, विलेपनं न, कुसुमं न, अलंकृताः मूर्धजाः न पुरुषं विभूषयन्ति। एका वाणी या संस्कृता धार्यते, सा पुरुषं समलङ्करोति। भूषणानि खलु क्षीयन्ते। वाग्भूषणं सततं भूषणम्।

अन्वयार्थः- व्यक्ति को न बाजुबन्द, न ही चन्द्रमा के समान कान्ति वाला मोतियों का हार, न स्नान, न चन्दनादि का लेप, न पुष्प, न ही केशों को अलंकृत करना ही विभूषित करता है। एक अद्वितीय सुसंस्कृत वाणी ही पुरुष को अलंकृत करती है। आभूषण निश्चय ही क्षीणता को प्राप्त करते हैं। वाणी रूपी अलंकार सदैव भूषित होता है।

सरलार्थः- भुजाओं के अलंकार धारण करने से, सौन्दर्य को बढ़ाने के लिए कान्तिविशिष्ट हारादि को धारण करने से, शरीर में चन्दनादि के लेप से, बालों में पुष्प धारण करने से कोई भी व्यक्ति भूषित नहीं होता है। सुसंस्कृत वाणी ही सबको भूषित करती है। वाणी रूपी आभूषण ही क्षय रहित आभूषण है।

तात्पर्यार्थः- प्रस्तुत इस श्लोक में सुसंस्कृत वाणी का महत्व बताया गया है। साधारण व्यक्ति शरीर की शोभा को बढ़ाने के लिए अनेकों प्रकार के अलंकारों को धारण करते हैं, जैसे भुजाओं में बाजुबन्द को धारण करते हैं, गले में चन्द्रमा के जैसे कान्ति वाले हार को धारण करते हैं, और जल से भी स्नान करते हैं। चन्दनादि सुगन्धित द्रव्यों का लेपन करते हैं। अनेक प्रकारों के आभूषणों से केशों को सजाते हैं। परन्तु ये सब प्रसाधनादि तो कुछ क्षण ही व्याप्त रहते हैं। फिर इन सब केयूरादि आभूषणों का नाश होता है इनके नाश से शरीर पुनः पहले जैसा अलंकारों से हीन असुन्दर होता है। परन्तु जिसके पास में सुसंस्कृत वाणी है, अर्थात् जो हमेशा आनन्द दायक मीठी वाणी बोलता है, उसको शरीर की शोभा को बढ़ाने के लिए अन्य अलंकारों का प्रयोजन नहीं होता है। वह सुसंस्कृत वाणी ही व्यक्ति का परम आभूषण है। और यह वाणी रूपी अंलकार नित्य ही है, अर्थात् इसका कभी भी नाश नहीं होता है। जिस व्यक्ति के समीप में यह अलंकार है वह सब जगह प्रशस्त होता है। हनुमान वाणी रूपी आभूषण से भूषित थे भगवान श्री राम से बहुत प्रशंसा को प्राप्त किया। इसलिए हमें वाणी को सुसंस्कृत और मधुर करना चाहिए।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

1. विभूषयन्ति- वि+भूष् धातु, लट् लकार, प्रथम पुरुष बहुवचन
2. चन्द्रोज्जवलाः - चन्द्रः इव उज्जवलाः, कर्मधारय समास
3. अलंकृता- अलम्+ कृ धातु+ क्त प्रत्यय

ध्यान दें:

सन्धि युक्त शब्द

1. केयूराणि न - केयूराः + णि
2. हारा न - हाराः + न
3. नालङ्कृता - न + अलङ्कृता

प्रयोग परिवर्तन- केयूरैः न, चन्द्रोज्ज्वलैः हारैः न, स्नानेन न, विलपनेन न, कुसुमेन न, अलंकृतैः मूर्धजैः न पुरुषः विभूष्यते। एकया वाण्या पुरुषः समलंक्रियते यां संस्कृतां धारयन्ति। भूषणानि खलु क्षीयन्ति। वाग्भूषणेन सततं भूषणेन भूयते।

छन्द परिचय- इस श्लोक में शार्दूलविक्रिडित छन्द है। व्यतिरेक अलंकार है।

नरस्याभरणं रूपं रूपस्याभरणं गुणः।
गुणस्याभरणं ज्ञानं ज्ञानस्याभरणं क्षमा॥ 8॥

अन्वय- नरस्य रूपम् आभरणम् अस्ति, रूपस्य गुणः आभरणम् अस्ति।, गुणस्य ज्ञानम् आभरणम् अस्ति, एवं ज्ञानस्य आभरणम् भवति क्षमा।

अन्वयार्थः- मनुष्य का आभूषण सौन्दर्य होता है, सौन्दर्य का आभूषण गुण होता है। और गुण का अलंकार बुद्धि होती है, उसी प्रकार बुद्धि का आभूषण क्षमा होती है।

सरलार्थः- मनुष्यों का सौन्दर्य ही उनका अलंकार होता है। और उसके सौन्दर्य का अंलकार उनके गुण होते है। एवं उनके गुणों का अलंकार ज्ञान होता है। उसी प्रकार उसके ज्ञान का आभूषण क्षमा होती है।

तात्पर्यार्थः- इस संसार में सौन्दर्य ही मनुष्यों का आभूषण होता है। जो स्वभाव से ही सुन्दर है, उन्हें शरीर की शोभा बढ़ाने के लिए अन्य अलंकारों का प्रयोजन नहीं होता है। इसलिए सौन्दर्य से व्यक्ति बढ़ता है। परन्तु अगर फूल गंधरहित होता है तो वह किसी को भी आनन्दित नहीं करता है। उसी प्रकार गुणों से रहित व्यक्ति का सौन्दर्य शोभा को प्राप्त नहीं करता है। अतः गुण ही रूप का आभूषण हैं। सुन्दर व्यक्ति गुणी होता है तभी उसकी शोभा बढ़ती है। एवं गुणवान मनुष्य को भी उसका ज्ञान मिलता है। ज्ञान को छोड़कर अनेक गुण भी हो फिर भी उस व्यक्ति की प्रशंसा नहीं होती है। इसलिए ज्ञान ही गुणों का आभूषण होता है। परन्तु हमारे संसार में ज्ञानियों में दर्प दिखाई देता है। ज्ञान में भी जो व्यक्ति विनम्र नहीं होता उसकी प्रशंसा नहीं होती है। इसलिए ज्ञान का आभूषण केवल क्षमा है। क्षमा रहती है तो ही ज्ञान शोभा को प्राप्त करता है। अन्यथा उस ज्ञान की भी निंदा होती है।

सन्धि युक्त शब्द

1. नरस्याभरणम् - नरस्य + आभरणम्
2. रूपस्याभरणम् - रूपस्य + आभरणम्
3. गुणस्याभरणम् - गुणस्य + आभरणम्
4. ज्ञानस्याभरणम् - ज्ञानस्य + आभरणम्

प्रयोग परिवर्तन- नरस्य रूपेण आभरणेन भूयते, रूपस्य गुणेन आभरणेन भूयते, गुणस्य ज्ञानेन आभरणेन भूयते, एवं ज्ञानस्य आभरणेन भूयते क्षमया।

ध्यान दें:

छन्द परिचय- इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

साहित्यसङ्गीतकलाविहीनः
साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः।
तृणं न खादन्नपि जीवमान-
स्तद्भगधेयं परमं पशुनाम्॥9॥

अन्वय- साहित्यसंगीतकलाविहीनः पुच्छविषाणहीनः साक्षात् पशुः एव। तृणं न खादन् अपि जीवमानः अस्ति इति यत् तत् पशुनाम् परमं भागधेयम्।

अन्वयार्थः- जिस व्यक्ति को साहित्यशास्त्र, संगीतशास्त्र, कलाशास्त्र आदि का ज्ञान नहीं है। ऐसा व्यक्ति पूँछ और सींगों से हीन साक्षात् पशु ही है। तिनका न खाते हुए भी वह व्यक्ति जीवित है। यह उन पशुओं का उत्तम भाग्य है।

सरलार्थः- जिस पुरुष को साहित्यशास्त्र, संगीत और कला का कोई भी ज्ञान नहीं है। वह तो पूँछ और सींग से हीन साक्षात् पशु समान ही होता है। वह पशुरूप व्यक्ति मनुष्यरूप धारण कर पशु के समान तिनका नहीं खाता है, इसलिए पशु भोजन के लिए अधिक तिनके प्राप्त करते हैं। यह तो पशुओं का महान भाग्य ही है।

तात्पर्यार्थ- इस श्लोक के द्वारा साहित्य आदि शास्त्र ज्ञान से विहीन व्यक्ति की निंदा की गई है। इस संसार में मनुष्य मनुष्यरूप में आते हैं, फिर भी सब मनुष्यत्व को प्राप्त नहीं करते। जगत में मनुष्य के वेश में बहुत से पशु भी हैं। उनके जन्म से संसार का कोई लाभ नहीं होता है। मांस पिण्ड के समान उनका जन्म व्यर्थ ही है। मनुष्यत्व के अर्जन के लिए साहित्य शास्त्रादि का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक होता है। हमारे जगत में चौंसठ कलाएँ हैं। अगर इन कलाओं का ज्ञान नहीं है तो वह व्यक्ति मनुष्यत्व को प्राप्त नहीं करता है। जिस व्यक्ति के पास इनका थोड़ा भी ज्ञान नहीं है, वह तो वास्तव में पशु समान ही होता है। केवल पूँछ सींगों से हीन वह मनुष्य वेशधारी पशु दूसरे पशुओं के जैसे तिनके को नहीं खाता है। इससे दूसरे पशुओं का बड़ा उपकार होता है। क्योंकि हमारे इस जगत में मनुष्य रूपधारी पशु अधिक हैं। वे सब मिलकर यदि तिनके को खाते हैं, तब तो बकरी आदि को भोजन के लिए तिनका नहीं बचेगा। इसीलिए मनुष्यत्व प्राप्ति के लिए हमें साहित्यादि के ज्ञान को प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

1. साहित्य संगीतकला विहीनः-साहित्यं च संगीतं च कला च साहित्यसंगीतकलाः - इतरेतरद्वन्द्वसमासः।
2. पुच्छविषाणहीनः - पुच्छं च विषाणं च - इतरेतरद्वन्द्वसमासः।
3. खादन्- खाद् धातु पु., शतृ प्रत्यय, विभक्ति प्रथमा एकवचन
4. जीवमानः - जीव धातु शानच् प्रत्यय

सन्धि युक्त शब्द

1. खादन्नपि- खादन् + अपि
2. जीवमान्स्तद्भागधेयम्- जीवमानः + तत् + भागधेयम्

प्रयोग परिवर्तन- साहित्य संगीतकला विहीनेन पुच्छविषाणहीनेन साक्षात् पशुना एव। तृणं न खादता अपि जीवमानेन भूयते इति यत् तत् पशूनां परमेण भागधेयेन भूयते।

ध्यान दें:

छन्द परिचय- प्रस्तुत इस श्लोक में उपजाति छन्द है।

यत्र विद्वज्जनो नास्ति श्लाघ्यस्तत्राल्पधीरपि।
निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते॥10॥

अन्वय- यत्र विद्वज्जनः नास्ति तत्र अल्पधीः अपि श्लाघ्यः भवति, निरस्तपादपे देशे एरण्डः अपि द्रुमायते।

अन्वय अर्थ- जिस देश में पण्डित नहीं है, उस देश में मन्द बुद्धि भी प्रशंसनीय होते हैं। वृक्ष से रहित स्थल में एरण्ड नाम का छोटा कण्टक वृक्ष भी बृहद् वृक्ष जैसे गणना किया जाता है।

सरल अर्थ- जिस देश में कोई भी विद्वान पुरुष नहीं है, वहाँ तो मन्द बुद्धि व्यक्ति भी सभी के द्वारा प्रशंसनीय होता है। जैसे रेगिस्तान में कोई भी बृहद् वृक्ष नहीं है। इसलिए वहाँ विद्यमान कण्टक वृक्ष भी बड़े वृक्ष जैसे गणना किया जाता है।

तात्पर्य अर्थ- साम्प्रतिक समय में जगत में देखना चाहिए कि अयोग्य व्यक्ति भी बहुत ऊँचे आसनों पर स्थित है। क्योंकि उस आसन के योग्य व्यक्ति उस स्थान पर नहीं है। जिस प्रदेश में सभी व्यक्ति मूर्ख हो, कोई विद्वान व्यक्ति न हो, वहाँ कोई अल्पज्ञ हो वह प्रदेश के निवासियों में मूर्खों में महान प्रशंसनीय होता है। सभी उसके वचनों के अनुसार कार्य को सम्पादित करते हैं। जैसे रेगिस्तान में कण्टक वृक्ष को छोड़कर प्रायः अन्य वृक्ष विद्यमान नहीं हैं। इसलिए उस कण्टक वृक्ष को ही मरूप्रदेश के व्यक्ति बृहद् वृक्ष जैसा मानते हैं। परन्तु वह कण्टक वृक्ष पीपल आदि बड़े वृक्षों के स्थान पर आ जाए तभी उसके स्वरूप का प्रकाशन होता है। सभी के द्वारा वह वृक्ष निन्दित होता है। उसी प्रकार अपने प्रदेश में विद्वान जैसे पूजित मूर्ख स्वभाव से विद्वान व्यक्ति के समीप जाता है तब उसकी स्वाभाविक मूर्खता प्रकाशित होती है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

1. विद्वज्जनः - विद्वान् च असौ जनः - कर्मधारय समास
2. अल्पधीः - अल्पा धीः यस्य स - बहुव्रीहि समास
3. निरस्तपादपे- निरस्ताः पादपाः यस्मिन् स निरस्तपादपः देशः बहुव्रीहि समास।
4. द्रुमायते- द्रुमः इव आचरति

सन्धि युक्त शब्द

1. विद्वज्जनों नास्ति- विद्वज्जनः + नास्ति।
2. नास्ति - न + अस्ति।
3. एरण्डोऽपि - एरण्डः + अपि

प्रयोग परिवर्तन- यत्र विद्वज्जनेन न भूयते तत्र अल्पधिया अपि श्लाघ्येन भूयते, निरस्तपादपे देशे एरण्डेन अपि द्रुमाय्यते।

छन्द परिचय- प्रस्तुत इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

पाठ-1

सुभाषित-1

ध्यान दें:

1.1 पाठगत प्रश्न

1. वित्त की कितनी गति है? और वे कौन-सी है?
2. जो न देता है न भोग करता है उसकी कौन-सी गति होती है?
3. विद्या रूपी मनुष्य का क्या स्वरूप है?
4. विदेशगमन में कौन बन्धुजन है?
5. कौन पशु होता है?
6. अजर अमर जैसे विद्वान व्यक्ति को और क्या-क्या सोचना चाहिए?
7. कर्ण (कान) किससे विभूषित होते हैं?
8. करुणापरायण शरीर किससे विभूषित होता है?
9. अंगों का आभूषण क्या है?
10. पुरुष को क्या अलंकृत करता है?
11. कौन-सा आभूषण क्षीण नहीं होता?
12. ''केयूराणि न विभूषयन्ति'' इस श्लोक में क्या छन्द है?
13. मनुष्य का आभरण क्या है?
14. गुण का आभरण क्या है?
15. कौन पूँछ सींगों से हीन पशु है?
16. ''साहित्यसंगीत कलाविहीनः'' श्लोक में क्या छन्द है?
17. एरण्ड कहाँ बड़ा है?
18. (क.)- स्तम्भ के साथ (ख.)- स्तम्भ को मिलाओ-

(क.)- स्तम्भ	**(ख.)- स्तम्भ**
1. वितस्य गतिः	(क.) बन्धुजनः
2. गुरुणां गुरुः	(ख.) पात्रत्वम्
3. विदेशगमने	(ग.) शीलम्
4. पशुः	(घ.) पाणिः
5. विनयात्	(ड.) दानम्
6. दानेन	(च.) शार्दूलविक्रिडितम्
7. छन्दः	(छ.) विद्या
8. भूषणम्	(ज.) विद्याविहीनः
9. अल्पधीः	(झ.) आभरणम्
10. क्षमा	(ञ.) श्लाघ्यः

ध्यान दें:

पाठ सार

धन का दान, भोग, नाश ये तीन प्रकार की गतियाँ हैं। जो मनुष्य धनी होने पर भी दूसरे द्ररिद्र के लिए उसका दान नहीं करता है, और स्वयं भी उसका भोग नहीं करता है। उसके धन का तो अवश्य ही नाश होता है। केवल विद्या ही मनुष्य का उत्तम सौन्दर्य है, यह व्यक्ति का संचित धन है, भोग का उत्स स्वरूप यह यश और सुख के साधन में सहायक है। विद्या महान विद्वानों को भी उपदेश प्रदान करती है। विदेश जाने के समय में विद्या ही व्यक्ति की सहायता करती है। विद्या की अपेक्षा उत्तम देवता नहीं है। राजसभा जैसे उत्तम स्थान में भी धन की पूजा नहीं की जाती है, परन्तु सब जगह विद्या की पूजा तो अवश्य ही होती है। इसलिए जिसके पास में विद्या नहीं है, वह पशु के समान है। विद्वान व्यक्ति स्वयं को अजर अमर मानकर विद्या और अर्थ का उपार्जन करता है, परन्तु मरे हुए के समान स्वयं को मानकर धर्म के अनुष्ठान को करता है। विद्या से विनय उत्पन्न होता है, जो विनयी होता है वह योग्यता को प्राप्त करता है। योग्य व्यक्ति धन को प्राप्त करता है। और धन से सुख प्राप्त होता है। विद्वानों के कान वेद शास्त्रादि के सुनने से विभूषित होते हैं, न कि कुण्डल धारण करने से। उनके हाथ दानादि सत्कर्मों से ही विभूषित होते हैं न कि कंगनादि आभूषण धारण करने से। जो दानपरायण व्यक्ति हैं, उनके शरीर परोपकार से ही विभूषित होते हैं, न कि चन्दन के लेप से।

सत्य वचन ही मनुष्य का उत्तम आभूषण है लज्जा और कमर क्षीणता नारी का उत्तम अलंकार है। विद्या और क्षमा ब्राह्मण का उत्तम आभूषण है। और सत् चरित्रता ही सभी मनुष्य का उत्तम आभूषण होता है। हाथ के अलंकार धारण करने से, सौन्दर्य बढ़ाने के लिए कान्ति विशिष्ट हारादि अंलकारों के धारण करने से, शरीर पर चन्दनादि का लेपन करने से, केशों में फूल धारण से कोई भी व्यक्ति भूषित नहीं होता है। सुन्दर सुसंस्कृत वाणी ही सबको भूषित करती है। वाणी रूप आभूषण ही क्षीण न होने वाला आभूषण है। व्यक्तियों का सौन्दर्य ही उनका अंलकार होता है। और उनके सौन्दर्य के अलंकार उनके गुण होते हैं। एवं उन गुणों का अंलकार ज्ञान होता है। उसी प्रकार उसके ज्ञान का अलंकार क्षमा होती है। जिस व्यक्ति को साहित्य शास्त्र, संगीत विषयक और कला विषयक कोई भी ज्ञान नहीं है, वह तो पूँछ और सींग से रहित साक्षात् पशु के समान ही होता है। वह पशु समान व्यक्ति मनुष्यरूप धारण करने से पशु के समान तिनका नहीं खाता है, इसलिए पशु भोजन के लिए अधिक तिनके प्राप्त करते हैं। यह तो पशुओं का महान भाग्य ही है। जिस प्रदेश में कोई भी विद्वान व्यक्ति नहीं है, वहाँ तो मन्दबुद्धि व्यक्ति भी सबका प्रशंसनीय होता है। जैसे रेगिस्तान आदि में कोई भी बड़ा वृक्ष नहीं है, इसलिए वहाँ उपस्थित कण्टक वृक्ष भी बडे वृक्ष जैसे गणना किया जाता है।

आपने क्या सीखा

- धन का अधिक संचय नहीं करना चाहिए।
- सबको ही मनुष्यत्व प्राप्ति के लिए विद्या का प्रयत्न करना चाहिए।
- विद्या ही सब प्रकार के सुखों का साधन होती है।
- शील ही सभी मनुष्यों का स्वाभाविक आभूषण है।
- वाणी से भूषित व्यक्ति नित्य ही भूषित होता है।
- साहित्य, संगीत कला विहीन व्यक्ति तो साक्षात् पूँछ सींग से हीन पशु जैसा होता है।
- विद्वानों से रहित देश में मूर्ख भी सबका प्रशंसनीय होता है।

पाठ-1

सुभाषित-1

ध्यान दें:

पाठान्त प्रश्न

1. धन की तीन गतियों के विषय में संक्षेप से आलोचना करें।
2. विद्या के महत्व का श्लोक के अनुसार वर्णन करें।
3. श्रोत्रं श्रुतेनैव इस श्लोक की व्याख्या करें।
4. वाणी भूषण का महत्व यथा ग्रन्थ के जैसे प्रतिपादित करें।
5. साहित्य शास्त्रादि ज्ञान से विहीन की कैसी दशा होती है- उस विषय में संक्षेप से आलोचना करें।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

1. तीन गतियाँ। दान, भोग और नाश।
2. तृतीय।
3. अधिक श्रेष्ठ रूप और छिपा हुआ धन।
4. विद्या।
5. विद्या से हीन
6. विद्या और अर्थ
7. सुनने से
8. परोपकार से
9. लज्जा और पतली कमर
10. संस्कृत वाणी
11. वाणीरूपी आभूषण
12. शार्दूलविक्रिडित
13. रूप
14. ज्ञान
15. साहित्य संगीत कला से हीन
16. उपजाति
17. वृक्ष से रहित देश में
18. 1-ड, 2-छ, 3-क, 4-ज, 5-ख, 6-घ, 7-च, 8-ग, 9-ट, 10-ञ

2

सुभाषित-2

ध्यान दें:

अतिथि सत्कार गृहस्थों में एक महान धर्म है। अत: सभी गृहस्थों को ही धर्म का पालन करना चाहिए। भाग्य ही सब प्रकार के कार्यों का नियामक है। परन्तु ऐसा विचार कर कार्य के लिए प्रयत्न को नहीं छोड़ना चाहिए। आलस्य ही मनुष्यों का एक महान शत्रु है। सभी मनुष्यों को आलस्य का त्याग करना चाहिए। इस प्रकार की नीतियों का ज्ञान हम इस पाठ के पढ़ने से प्राप्त करेंगे। और प्रकृत जन भी इसे पढ़ने से निर्णय ले सकते हैं। इस पाठ में नौ श्लोक है। इसके पढ़ने से हम महान ज्ञान को अर्जित करते है। इससे अवश्य ही हमें अत्यन्त आनन्द प्राप्त होगा।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- अतिथिसत्कार विषयक ज्ञान को प्राप्त कर पाने में;
- भाग्य ही बलवान है इसे समझ पाने में;
- दुर्जनों के साथ संगति से कैसी अवस्था होती है। इस विषय में ज्ञान प्राप्त कर पाने में;
- प्रकृति से बन्धु जनों के लक्षणों को जान पाने में;
- श्लोक में स्थित पदों का अन्वय कर पाने में;
- श्लोकों की व्याख्या कर पाने में;

2.1) मूलपाठ

अरावप्युचितं कार्यमातिथ्यं गृहमागते ।
छेत्तुः पार्श्वगतां छायां नोपसंहरते द्रुमः॥1॥

शशिदिवाकरयोर्ग्रहपीडनम्
गजभुजंगमयोरपि बन्धनम्

पाठ-2

सुभाषित-2

ध्यान दें:

मतिमतां च विलोक्य दरिद्रतां
विधिरहो बलवानिति मे मतिः॥2॥

षड् दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोधः आलस्यं दीर्घसूत्रता॥3॥

आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः।
नास्त्युद्यमसमो बन्धुः कृत्वा यं नावसीदति॥4॥

यदा किञ्चिज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवं
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः।
यदा किंचित् किंचिद् बुधजनसकाशादवगतं
तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः॥5॥

शक्यो वारयितुं जलेन हुतभुक् छत्रेण सूर्यातपो
नागेन्द्रो निशितांकुशेन समदो दण्डेन गोगर्दभौ।
व्याधिर्भेषजसंग्रहैश्च विविधैर्मन्त्रप्रयोगैर्विषं।
सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितं मूर्खस्य नास्त्यौषधम्॥6॥

दुर्जनेन समं सख्यं प्रीतिंचापि न कारयेत्।
उष्णो दहति चाङ्गारः शीतः कृष्णायते करम्॥7॥

उत्सवे व्यसने चौव दुर्भिक्षे राष्ट्रविप्लवे।
राजद्वारे श्मशाने च यतिष्ठति स बान्धवः॥8॥
उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः।
न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः॥9॥

2.2) मूल पाठ

शशिदिवाकरयोर्ग्रहपीडनम्
गजभुजंगमयोरपि बन्धनम्
मतिमतां च विलोक्य दरिद्रतां
विधिरहो बलवानिति मे मतिः॥1॥

अन्वय- शशिदिवाकरयोः ग्रहपीडनं गजभुजंगमयोः अपि बन्धनं, मतिमतां द्ररिद्रतां च विलोक्य में मतिः भवति अहो! विधिः बलवान् इति।

अन्वयार्थः- चन्द्रमा और सूर्य को राहु के ग्रहण की पीड़ा, हाथी और साँप का भी मन्त्रादि से बन्धन और बुद्धिमान व्यक्तियों को द्ररिद्रता में देखकर मेरी समझ अर्थात् बुद्धि होती है। ओह! भाग्य ही बलवान है।

सरलार्थः- चन्द्रमा और सूर्य जैसे दीप्तिमान् भी राहु का ग्रास होते हैं, हाथी और साँप जैसे शक्तिमान भी मन्त्रादि से बन्धन में होते हैं, सभी शास्त्रों को जानने वाला महा ज्ञानी भी दरिद्र होते है। यह सब देखकर मेरी समझ में यही आता है कि भाग्य ही बलवान है।

तात्पर्यार्थः- प्रस्तुत इस श्लोक में भाग्य की बलवत्ता वर्णित की गई है। समुद्रमन्थन से प्राप्त अमृत को पाने के लिए देवता वेश को धारण करके राहु नामक राक्षस वहाँ आ गया। परन्तु चन्द्र और सूर्य के

ध्यान दें:

द्वारा उसके स्वरूप का प्रकाशन किया गया। फिर विष्णु ने अपने चक्र से उसका सिर अलग कर दिया, परन्तु अमृत को पीने के कारण से वह नहीं मरा। इसलिए चन्द्रमा और सूर्य के ऊपर द्वेष से राहु उन दोनों का ग्रास करता है, ऐसी पौराणिक कथा है। यह महान नभ सुबह सूर्य की उज्ज्वल रश्मि से उद्भासित होता है। और रात्रि में सूर्यास्त होने से चन्द्रमा की ज्योत्सना प्रकाशित होती है। सीमा रहित महान आकाश को जो सूर्य और चन्द्रमा प्रकाशित करते हैं। वे चन्द्रसूर्य भी राहु का ग्रास होते हैं। इसी प्रकार बड़े शरीर वाले सबका नाश करने में समर्थ हाथी भी सामान्य शृंखला से बंधा होता है, और जिसके विष से मृत्यु निश्चित है, उसके जैसा महान विषवान साँप भी मन्त्रों के बल से बंधा होता है। सभी शास्त्रों को पढ़े हुए महाज्ञानी विद्वान भी कभी अर्थ का उपार्जन करने में असमर्थ होते हैं। उनका सारा जीवन दरिद्रता से पूर्ण होता है। यह सब कुछ भाग्य से ही होता है। पूर्वजन्म में किए गए कर्म ही भाग्य कहलाता है। भाग्य ही सब कर्मों का नियामक होता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

1. शशिदिवाकरयोः- शशिश्च दिवाकरश्च- इतरेतरद्वन्द्वसमास
2. ग्रहपीडनम्- ग्रहेण पीडनम् - तृतीया तत्पुरुष समास
3. गजभुजंङ्गमयोः - गजः च भुजङ्गम् च - इतरेतरद्वन्द्व समास
4. मतिमताम् - मतिः एषाम् अस्ति इति मतिमन्तः

सन्धि युक्त शब्द

1. शशिदिवाकरयोर्ग्रहपीडनम् - शशिदिवाकरयोः + ग्रहपीडनम्।
2. गजभुजंङ्गमयोपि - गजभुजंङ्गमयो + अपि।
3. विधिरहो - विधिः अहो।

प्रयोग परिवर्तन- शशिदिवाकरयोः ग्रहपीडनं गजभुजंगमयोः अपि बन्धनं च मतिमतां दरिद्रतां विलोक्य में मतिना भूयते अहो! विधिना बलवता भूयते इति।

छन्द परिचय- इस श्लोक में द्रुतविलम्बित छन्द है।

अरावप्युचितं कार्यमातिथ्यं गृहमागते।
छेत्तुः पार्श्वगतां छायां नोपसंहरते द्रुमः॥2॥

अन्वय- गृहम् आगते अरौ अपि उचितम् आतिथ्यं कार्यम्, द्रुमः पार्श्वगतात् छेत्तुः छायां न उपसंहरते।

अन्वयार्थः- घर आए हुए शत्रु का भी उचित रूप से आतिथ्य सत्कार करना चाहिए। वृक्ष पास आए हुए व्यक्ति को भी छाया देता है, शाखा को काटने से छाया का उपसंहरण नहीं करता है।

सरलार्थः- शत्रु यदि कभी भी अतिथि रूप में घर आता है। तब भी उचित रूप से उसका आतिथ्य सत्कार अवश्य ही करें। जैसे वृक्ष को काटने वाला वृक्ष को काटे जाने से थका हुआ उस विद्यमान वृक्ष की छाया का आश्रय प्राप्त करता है, तब वह वृक्ष अपनी छाया को नहीं समेटता है।

तात्पर्यार्थः- इस श्लोक में आतिथ्य रूपी गृहस्थ धर्म के विषय में बताया गया है। आतिथ्य के विषय में तो शास्त्रों में बहुत वर्णित है। अतिथि देवो भव इत्यादि श्रुतियाँ वहाँ प्रमाण है। आतिथ्य ही गृहस्थों

पाठ-2

सुभाषित-2

ध्यान दें:

का एक महान धर्म है। इस धर्म का पालन न करे तो बड़े पाप के भागी होते हैं। अतिथि यदि दु:खी होकर घर से जाता है, तो वह अतिथि अपने पापकर्मादि को घर के स्वामी को प्रदान करके, गृहस्वामी का पुण्य ग्रहण करता है। अत: अतिथि सत्कार के विषय में अवश्य ही सावधानी से रहना चाहिए। कोई शत्रु भी यदि अतिथि रूप में घर आता है तो उसे शत्रु मानकर अपमान नहीं करना चाहिए। अतिथि के समान उसका भी यथा रूप सत्कार करना चाहिए। यह ही गृहस्थ धर्म है। इसका उदाहरण जैसे- वृक्ष को काटने वाला जब वृक्ष काटने से सूर्य के ताप से थका होता है तब वे ताप से रक्षा के लिए उस वृक्ष की छाया का आश्रय लेता है। परन्तु वह वृक्ष उन्हें शत्रु मानकर उनसे अपनी छाया को नहीं समेटता है। उन्हें भी शरणागत मानकर आश्रय देता है। अत: शत्रु का भी अतिथि सत्कार अवश्य करें। अन्यथा घर का स्वामी पाप को प्राप्त करता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

1. कार्यम्- कृ धातु+ ण्य प्रत्यय
2. आतिथ्यम्- अतिथि + ष्यञ प्रत्यय
3. आगते- आ+गम् धातु+ क्त प्रत्यय पु. सप्तमी एकवचन।
4. छेत्तु: - छिद् धातु - तृच् प्रत्यय षष्ठी एकवचन।
5. उपसंहरते- उप+सम्+ हृ धातु लट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन।

सन्धि युक्त शब्द

1. अपावपि- अरौ+ अपि।
2. अप्युचितम् - अपि+ उचितम्। यण सन्धि।
3. पार्श्वगताच्छायाम् - पार्श्वगतात् + छायाम्। श्चुत्व सन्धि।
4. नोपसंहरते - न + उपसंहरते। गुण सन्धि।

प्रयोग परिवर्तन- गृहम् आगते अरौ अपि उचितम् आतिथ्यं कुर्यात्, द्रुमेन पार्श्वगतात् छेत्तु: छाया न उपसंह्रियते।

छन्द परिचय- इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

षड् दोषा: पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोध आलस्यं दीर्घसूत्रता॥3॥

अन्वय- इह भूतिम् इच्छता पुरुषेण षड् दोषा: हातव्या:, निद्रा तन्द्रा भयं क्रोध: आलस्यं दीर्घसूत्रता।

अन्वयार्थ:- इस संसार में सम्पन्न होने की इच्छा वाले व्यक्ति को छ: दोषों का त्याग करना चाहिए। निद्रा, जड़ता, भय, क्रोध, आलस और काम को टालने की प्रवृत्ति।

सरलार्थ:- इस जगत में जिसकी समृद्धि को प्राप्त करने की इच्छा है। उन्हें नींद, जड़ता, भय, क्रोध, आलस्य और उदासीनता - इन छ: दोषों का त्याग करना चाहिए। उनके त्याग से ही वृद्धि सम्भव होती है।

ध्यान दें:

तात्पर्यार्थः- प्रस्तुत इस श्लोक में निद्रादि छः दोषों के त्याग के विषय में कहा गया है। हमारे संसार में जिस पुरुष की उन्नति करने की इच्छा है, उन्हें तो इन दोषों का अवश्य ही त्याग करना चाहिए। वे दोष हैं- निद्रा, तन्द्रा, भय, क्रोध, आलस्य और उदासीनता। निद्रा अर्थात् अधिक सोना, रात्रि में उचित समय पर ही हमें सोना चाहिए। उसके अतिरिक्त तो कभी नहीं सोना चाहिए। तन्द्रा अर्थात् कार्य के समय निद्रा का भाव। तन्द्रा हो तो कार्य सिद्धि नहीं होता। एवं भय को भी हमें अवश्य ही त्यागना चाहिए। भय के कारण से बहुत से कार्य सिद्ध नहीं होते है। इसी प्रकार आलस तो मनुष्य का महान शत्रु होता है। आलसी व्यक्ति कभी भी अपने कार्य में सिद्ध नहीं होता है। एवं कार्य में दीर्घसूत्रता भी एक महान दोष है किसी छोटे से कार्य को भी बहुत समय तक टालने की प्रवृत्ति को दीर्घसूत्रता कहते है। इस दोष को भी अवश्य ही छोड़ना चाहिए। इन दोषों को त्यागने से हमें विजय की प्राप्ति होती है, सभी मनोरथ स्वयं ही सिद्ध होते हैं। परन्तु जो इनके वशीभूत होता है उसका तो अवश्य ही विनाश होता है। इन दोषों को त्यागने से ही समृद्धि सम्भव है, अन्यथा कभी भी समृद्धि सम्भव नहीं होती।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

1. हातव्याः - हा धातु+ तव्य प्रत्यय प्रथमा बहुवचन।
2. इच्छता - इष् धातु+ शतृ प्रत्यय तृतीय एकवचन।

सन्धि युक्त शब्द

1. पुरुषेणेह- पुरुषेण + इह।
2. हातव्या भूतिम् - हातव्याः + भूतिम्।
3. क्रोध आलस्यम्- क्रोधः + आलस्यम्।

प्रयोग परिवर्तन- इह भूतिम् इच्छन् पुरुषः षड् दोषान् जह्यात्। निद्रा तन्द्रा भयं क्रोधः आलस्यं दीर्घसूत्रता।

छन्द परिचय- इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान रिपुः।
नास्त्युद्यमसमो बन्धुः कृत्वा यं नावसीदति॥4॥

अन्वय- आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थः महान् रिपुः। उद्यमसमः बन्धुः नास्ति। कृत्वाऽयं: न अवसीदति।

अन्वयार्थः- आलस्य ही मनुष्य के शरीर का महान शत्रु है। उद्यम जैसा कोई मित्र नहीं है। कार्य करने वाला व्यक्ति दुःखी नहीं होता है।

सरलार्थः- आलस्य मनुष्य के शरीर का महान शत्रु है, जो अहितकर है। उद्यम के जैसा मनुष्यों का दूसरा मित्र नहीं हैं। जो उद्यमशील व्यक्ति है वह कभी भी दुःखी नहीं होता है।

तात्पर्यार्थः- प्रस्तुत श्लोक में आलस्यरूपी दोष की निंदा की गई है। इस जगत में अनेकों आलसी व्यक्ति हैं। परन्तु यह आलस एक महान शत्रु है। यह ही हमारे शरीर में रहकर हमारी हानि करता है। आलस्य हो तो किसी भी कार्य की सिद्धि नहीं होती है। यह कार्य की सिद्धि में बड़ी रूकावट उत्पन्न करता है। अतः जो कार्य सिद्धि की इच्छा करते हैं। उन्हें अवश्य ही आलस्य को त्यागना चाहिए। कार्य की सिद्धि के लिए प्रयत्न अति आवश्यक होता है। प्रयत्नशील व्यक्ति किसी भी कार्य को सिद्ध कर

ध्यान दें:

सकता है। यह प्रयत्न मित्र के समान कार्य की सिद्धि में सहायता करता है। सोये हुए सिंह के मुख में मृग स्वयं आकर प्रवेश नहीं करते हैं। मृग के शिकार के लिए तो सिंह को दौड़ना इत्यादि प्रयत्न अवश्य ही करना चाहिए। प्रयत्नशील व्यक्ति कभी भी दु:ख को प्राप्त नहीं करते हैं। इसलिए कार्य की सिद्धि और सुख प्राप्ति के लिए हमें भी आलस को त्यागकर प्रयत्न करना चाहिए।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

1. शरीरस्थ: - शरीरे तिष्ठति।
2. उद्यमसम:- उद्यमेन सम: तृतीय तत्पुरुष।
3. कुर्वाण: - कृ धातु + शानच् प्रत्यय, प्रथमा एकवचन।

सन्धि युक्त शब्द

1. नास्त्युद्यमसम: - नास्ति + उद्यमसम:।
2. कुर्वाणो न - कुर्वाण: + न।
3. नावसीदति- न + अवसीदति।

प्रयोग परिवर्तन- आलस्येन हि मनुष्याणां शरीरस्थेन महाता रिपुणा भूयते। उद्यमसमेन बन्धुना न भूयते, कुर्वाणेन न अवसीद्यते।

छन्द परिचय- इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

यदा किञ्चिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्ध: समभवं
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मन:।
यदा किंचित् किंचिद् बुधजनसकाशादवगतं
तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगत:॥5॥

अन्वय- यदा अहं किञ्चिज्ञ:, तदा अहं द्विप इव मदान्ध: समभवम्, तदा, 'सर्वज्ञ: अस्मि।' इति मम मन: अवलिप्तम् अभवत्। यदा बुधजनसकाशात् किञ्चित् किंचित् अवगतम्, तदा मूर्ख: अस्मि इति ज्वर: इव में मद व्यपगत:।

अन्वयार्थ:- जब मैं अल्पज्ञान वाला था। तब मैं हाथी के समान मदमस्त था। तब मैं सर्वज्ञ हूँ, मेरे मन में गर्व उत्पन्न हुआ। जब पण्डितों के पास से कुछ-कुछ ज्ञान प्राप्त किया, तब मैं मूर्ख हूँ ऐसा ज्वर के समान मेरा दर्प चला गया।

सरलार्थ:- जब मुझे कुछ ज्ञान हुआ तब मैं सर्वज्ञ हूँ। ऐसा मानकर मैं हाथी के समान मदमत्त हुआ। परन्तु पण्डितों के पास जाकर जब उनके ज्ञान को देखा। तब उनकी अपेक्षा मैं महा मूर्ख हूँ ऐसा समझा। उस समय में मेरा जो दर्प उत्पन्न हुआ था वह पल भर में ही चला गया।

तात्पर्यार्थ:- प्रस्तुत इस श्लोक में अल्प ज्ञान से ही मनुष्यों में जो दर्प देखा जाता है उसी विषय का वर्णन किया गया है। इस जगत में कोई भी मनुष्य जब कुछ ज्ञान को प्राप्त करता है। तब उसे महान अंहकार होता है। जैसे मदमस्त हाथी सामने आए हुए सब का अपनी सूंड अथवा पैरों से नाश करता है। उसी प्रकार वह व्यक्ति भी गुरुओं अथवा अन्य सम्मानीय जन का सम्मान नहीं करता है। सभी के साथ दुष्ट आचरण करता है। वह सोचता है कि वह सर्वज्ञ है। जगत में उसकी अपेक्षा कोई भी ज्ञानी नहीं है। इस प्रकार से उसका सम्पूर्ण मन अहंकार से पूर्ण होता है। परन्तु वह जब ज्ञानियों के पास जाता है। वहाँ

ध्यान दें:

उनके ज्ञान को देखता है, तब उसको अनुभव होता है कि इनकी अपेक्षा उसका ज्ञान बहुत कम है। उस समय में उसकी प्रकृति मूर्खता को प्रकाशित करती है। उचित औषधि के सेवन से रोगी का ज्वर जैसे थोड़े समय में चला जाता है। उसी प्रकार उस मदान्ध व्यक्ति का अंहकार सम्पूर्णरूप से नष्ट होता है। वस्तुतः थोड़े ज्ञान से मनुष्य में जो अहंकार उत्पन्न होता है, वह ही विनाश का प्रधान हेतु होता है। इसलिए ज्ञान प्राप्ति में कभी भी अहंकार का प्रकाशन नहीं करना चाहिए।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

1. किंञ्चिज्ज्ञः - कुछ जानता है।
2. मदान्धः - मद से अन्धा, तृतीया तत्पुरुष समास।
3. सर्वज्ञः- सब जानता है।
4. बुधजनसकाशात् - बुधजनानां सकाशः षष्ठी तत्पुरुष समास।
5. अवगतम् - अव+ गम् धातु, उपसर्ग क्त प्रत्यय।
6. व्यपगतः - वि+ अप्+गम् क्त प्रत्यय पु. ।

सन्धि युक्त शब्द

1. किंञ्चिज्ज्ञोऽहम् - किञ्चिद् + ज्ञः + अहम्
2. द्विप इव - द्विपः + इव।
3. सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तम्- सर्वज्ञः+ अस्मि+ इति+ अभवत्+ अवलिप्तम्।
4. मूर्खोऽस्मीति- मूर्खः + अस्मि + इति।
5. मदो में - मदः+ मे

प्रयोग परिवर्तन- यदा मया किञ्चिज्ज्ञेन, तदा मया द्विपेन इव मदान्धेन समभूयत, तदा सर्वज्ञेन भूयते इति मम मनसा अवलिप्तेन अभूयत। यदा बुधजनसकाशात् किंचित् किंचित् अवगतवान, तदा मूर्खेन भूयते इति ज्वरेण इव में मदेन व्यपगतेन अभूयत।

छन्द परिचय- इस श्लोक में शिखरिणी छन्द है।

शक्यो वारयितुं जलेन हुतभुक् छत्रेण सूर्यातपो
नागेन्द्रो निशितांकुशेन समदो दण्डेन गोगर्दभौ।
व्याधिर्भेषजसंग्रहैश्च विविधैर्मन्त्रप्रयोगैर्विषं।
सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितं मूर्खस्य नास्त्यौषधम्॥6॥

अन्वय- जलेन हुतभुक् वारयितुं शक्यः, छत्रेण सूर्यातपः, निशितांकुशेन समदः नागेन्द्रः दण्डेन गोगर्दभौ, भेषजसंग्रहैः व्याधिः, विविधैः मन्त्रप्रयोगैः च विषम्। सर्वस्य शास्त्रविहितम् औषधम् अस्ति, परन्तु मूर्खस्य औषधं नास्ति।

अन्वयार्थः- जल से अग्नि का, छत्र से धूप का, अंकुश से मदमत्त हाथी का, दण्ड से बैल और गधे का, औषधि से रोग का, मन्त्रप्रयोग के द्वारा विष का शमन कर सकते हैं। शास्त्रों में सभी की औषधि विद्यमान है, परन्तु मूर्ख की औषधि नहीं है।

पाठ-2

सुभाषित-2

ध्यान दें:

सरलार्थः- जल द्वारा अग्नि का शमन कर सकते हैं। छत्र धारण करने से सूर्य के तेज से रक्षा प्राप्त कर सकते हैं। तीक्ष्ण अंकुश से मदमस्त हाथी को भी बाँध सकते हैं। डण्डे के प्रहार से बैल और गधे को शांत कर सकते हैं। औषधि के सेवन से रोग का परिहार हो सकता है। मन्त्र के प्रयोग से सर्प के विष का भी शमन कर सकते हैं। इस प्रकार से सभी समस्याओं का समाधान शास्त्र में कहा गया है, परन्तु मूर्ख की मूर्खता के परिहार के लिए कोई उपाय नहीं है।

तात्पर्यार्थः- प्रस्तुत इस श्लोक में मूर्खों के मूर्खत्व की निंदा की गई है। मूर्ख व्यक्ति तो सब जगह निन्दित हैं। अगर पुत्र मूर्ख हो, तो उसका पिता जीवन के पद पर अपमान को सहता है। इसलिए कहा गया है कि पुत्र जन्म से मरा ही हो तो थोड़े समय को ही दुःख होता है। परन्तु मूर्ख पुत्र हो जाए तो सदैव ही वह पिता को दुःख देता है। इसलिए कोई भी पिता मूर्ख पुत्र की कामना नहीं करता है। अगर अग्नि अधिक हो तो वहाँ पानी के छिड़काव से अग्नि को शान्त कर सकते हैं। सूर्य के ताप से रक्षा के लिए छत्र को धारण कर रक्षा कर सकते हैं। अगर हथिनी उन्मत हो तो उसके सामने आए सबका ही वह अपने पैरों से नाश करती है। परन्तु उन्मत हथिनी को भी तीक्ष्ण अंकुश से बाँध सकते हैं। दण्ड का प्रहार करके तो बैल, गधे आदि पशु भी अपने वश में आ जाते हैं। उत्तम वैद्य की औषधि के सेवन करने से महान रोग का भी निवारण हो सकता है। विषधारी साँप के दंश से दंशित व्यक्ति प्रायः मरे हुए के समान होता है फिर भी मन्त्र प्रयोग से उसके विष का त्याग कर सकते हैं। इस प्रकार से जीवन में सभी समस्याओं का समाधान कर सकते हैं। शास्त्रों में तो सब प्रकार का समाधान कहा गया है। सब समस्याओं का समाधान कर सकते हैं फिर भी मूर्खत्व का निवारण सौ बार प्रयत्न करके भी नहीं कर सकते।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

1. सूर्यातपः- सूर्यस्य आतपः, षष्ठी तत्पुरुष समास।
2. नागेन्द्रः- नागानाम् इन्द्र, षष्ठी तत्पुरुष समास।
3. निशितांकुशेन - निशितः च असौ अंकुशः, कर्मधारय समास
4. गोगर्दभौ- गौः च गर्दभः च, इतरेतरद्वन्द्व समास।
5. भेषजसंग्रहैः- भेषजानां संग्रहाः, तृतीय तत्पुरुष समास
6. मन्त्रप्रयोगैः - मन्त्राणां प्रयोगः षष्ठी तत्पुरुष समास
7. शास्त्रविहितम्- शास्त्रेण विहितम् तृतीय तत्पुरुष समास।

सन्धि युक्त शब्द

1. शक्यो वारयितुम्- शक्यः+ वारयितुम्। विसर्ग+ सन्धि।
2. व्याधिर्भेषजसंगहैः - व्याधिः + भेषजसंग्रहैः। विसर्ग सन्धि।
3. भेषजसंग्रहैश्च - भेषजसंग्रहैः+ च। विसर्ग सन्धि, श्चुत्व सन्धि।
4. विविधैर्मन्त्रप्रयोगैः- विविधैः+ मन्त्रप्रयोगैः विषम्। विसर्ग सन्धि।
5. सर्वस्यौषधम् - सर्वस्य + औषधम्। वृद्धि सन्धि।
6. नास्त्यौषधम्- न + अस्ति + औषधम्। यण् सन्धि।

ध्यान दें:

प्रयोग परिवर्तन- जलेन हुतभुजं वारयितुं शक्नुयात्, छत्रेण सूर्यातपम्, निशितांकुशेन समदं नागेन्द्रं, दण्डेन गोगर्दभौ, भेषजसंग्रहै: व्याधिम्, विविधै: मन्त्रप्रयोगै: च विषम्। सर्वस्य शास्त्रविहितेन औषधेन भूयते, परन्तु मूर्खस्य औषधेन न भूयते।

छन्द परिचय- इस श्लोक में शार्दूलविक्रिडित छन्द है।

दुर्जनेन समं सख्यं प्रीतिंचापि न कारयेत्।
उष्णो दहति चाङ्गार: शीत: कृष्णायते करम्॥7॥

अन्वय- दुर्जनेन समं प्रतिं सख्यं चापि न कारयेत्। उष्ण: अंगार: करं दहति शीतश्च करं कृष्णायते।

अन्वयार्थ:- दुर्जनों से शत्रुता और मित्रता कभी नहीं करनी चाहिए। जलते हुए कोयले के स्पर्श से हाथ जल जाता है और ठण्डे कोयले का स्पर्श हाथ को काला करता है।

सरलार्थ:- दुर्जनों के साथ कभी भी मित्रता नहीं करनी चाहिए और शत्रुता भी नहीं करनी चाहिए। क्योंकि दोनों ही परिस्थिति में वह दुर्जन हानि ही करता है। जैसे जलता हुआ कोयला हाथ को जलाता है और वह ही कोयला यदि ठण्डा होता है तो हाथ को काला करता है।

तात्पर्यार्थ:- प्रस्तुत श्लोक में दुर्जनों की निन्दा की गई है। इस जगत में बहुत से दुष्ट व्यक्ति हैं। जीवन के प्राय: सभी समय में दुष्ट दिखाई देते हैं। अनेकों बार अज्ञानतावश वे हमारा नुकसान करते हैं। उनका स्वभाव ही ऐसा है कि प्रारम्भ में मित्रता करते हैं। फिर विश्वास को उत्पन्न कर मौका मिलते ही बड़ा अनिष्ट करते हैं। इसलिए दुर्जन व्यक्ति पास आकर सहायता आदि करके मित्रता करे फिर भी उनके साथ मित्रता कभी नहीं करनी चाहिए। दुर्जनों के साथ कोई दुष्ट आचरण करता है तो वे अवश्य ही उसे मन में रखकर भविष्य में हानि करते हैं। जैसे कोयला जब गर्म होता है तब उसका स्पर्श करते हैं तो अवश्य ही हाथ जलता है। वही कोयला जब ठण्डा होता है तब उसका स्पर्श करें तो हाथ काला होता है। इसलिए हाथ की रक्षा के लिए कोयले का स्पर्श न करें। उसी प्रकार दुर्जनों की उपेक्षा करें।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

1. सख्यम्- सख्यु: भाव:।
2. कारयेत् - कृ धातु + णिच् प्रत्यय + विधि लिङ् प्रथम पुरुष एकवचन
3. कृष्णायते- कृष्ण इव आचरयति।

सन्धि युक्त शब्द

1. वैरंचापि- वैरम् + चापि।
2. चापि- च + अपि।
3. उष्णो दहति- उष्ण: दहति।
4. चाङ्गार: - च + अंगार:।

प्रयोग परिवर्तन- दुर्जनेन समं वैरं सख्यं चापि न कार्येत। उष्णेन अंगारेण कर: दह्यते शीतेन च कर: कृष्णाय्यते।

छन्द परिचय- यह श्लोक अनुष्टुप् छन्द में है।

पाठ-2

सुभाषित-2

ध्यान दें:

उत्सवे व्यसने चौव दुर्भिक्षे राष्ट्रविप्लवे।
राजद्वारे श्मशाने च यतिष्ठति स बान्धवः॥४॥

अन्वय- यः उत्सवे व्यसने चौव दुर्भिक्षे राष्ट्रविप्लवे च राजद्वारे श्मशाने च तिष्ठति स बान्धवः भवति।

अन्वयार्थः- जो व्यक्ति विवाहादि उत्सव के समय में, विपत्तिकाल में, अन्न अभाव के समय में, अपने देश के और दूसरे राज्य के लिए आक्रमण के समय में, राजदरबार में, और शव दाह स्थान पर भी रहता है, वह ही सच्चा बन्धु होता है।

सरलार्थः- जो व्यक्ति विवाहादि उत्सव के समय में, विपत्ति के समय में, सूखे अन्न के अभाव के समय में, युद्ध समय में, विचारालय,न्यायालय अर्थात् राजदरबार में, और शव दाह स्थान पर सभी परिस्थिति में हित की इच्छा करता है, सहायता करता है, वह ही वास्तव में बन्धु होता है।

तात्पर्यार्थः- इस श्लोक में स्वभावकि बन्धु के लक्षण को कहा गया है। इस जगत में जीवन पथ पर चलते समय में अनेक बन्धुजन अर्थात् सम्बन्धी प्राप्त होते हैं। परन्तु उनमें सभी हितैषी नहीं होते हैं। प्रायः मनुष्य अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए मित्रता करते हैं। सम्पूर्ण संसार में कुछ ही स्वाभाविक सम्बन्धी प्राप्त करते हैं। व्यक्तियों के सुख के समय में बहुत से मित्र होते हैं, परन्तु जब उस व्यक्ति का बुरा समय होता है, तब सुख के समय में आए उन बन्धुओं में से कोई भी सहायता के लिए प्रयत्न नहीं करता। इसलिए शास्त्रों में स्वभावतः बन्धु का उपाय कहा गया है। जो विवाह उत्सव के समय पर सम्बन्धियों के साथ आनन्द करता है और बन्धुओं को विपत्तिकाल में भी उचित मार्ग का प्रदर्शन करके सहायता करता है। और किसी सम्बन्धी को जब अन्न सम्बन्धी कष्ट होता है तब अन्नदान आदि से उसकी सहायता करता है। और जब किसी दूसरे देश का राजा अपने देश पर आक्रमण करता है तब प्राणों की रक्षा के लिए वास स्थान दान से जो बन्धुओं की सहायता करता है। और इस प्रकार से प्रतिपक्ष से किसी सम्बन्धी के ऊपर झूठा अपवाद लगाता है उसके विचार के समय पर अच्छी युक्तियों से उसकी अपवाद से रक्षा करता है, और परिवार में कोई भी मर जाए तो श्मशान में दाह के समय पर उस कार्य के सम्पादन के लिए सहायता करता है। वह ही वास्तव में बन्धु होता है। परन्तु इस समय में तो बन्धु दुर्लभ ही है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

1. राष्ट्रविप्लवे- राष्ट्रस्य विप्लवः, षष्ठी तत्पुरुष समास।
2. राजद्वारे- राज्ञः द्वारं, षष्ठी तत्पुरुष समास।
3. तिष्ठति- स्था धातु, लट् लकार, प्रथम पुरुष एकवचन।

सन्धि युक्त शब्द

1. चौव - च + एव।
2. यस्तिष्ठति- यः तिष्ठति।
3. स बान्धवः- सः + बान्धवः।

प्रयोग परिवर्तन- येन उत्सवे व्यसने चौव दुर्भिक्षे राष्ट्रविप्लवे च राजद्वारे श्मशाने च स्थीयते तेन बान्धवेन भूयते।

छन्द परिचय- इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

ध्यान दें:

उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः।
न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः॥9॥

अन्वय- उद्यमेन कार्याणि सिद्धयन्ति, न तु मनोरथैः, सुप्तस्य सिंहस्य मुखे मृगाः न हि प्रविशन्ति।

अन्वयार्थः- उद्योग से अनुष्ठित कार्यों की सिद्धि होती है, न कि इच्छा मात्र से। सुप्त सिंह के मुख में मृग स्वयं प्रवेश नहीं करते हैं।

सरलार्थः- कार्य की सिद्धि के लिए केवल इच्छा करते हैं तो कार्य की सिद्धि नहीं होती। उसकी सिद्धि के लिए प्रयत्न अवश्य ही करना चाहिए। जैसे भोजन के लिए सिंह को दौड़ करके मृग का शिकार करना चाहिए, सोये हुए सिंह के मुख में मृग स्वयं प्रवेश नहीं करते हैं।

तात्पर्यार्थः- प्रस्तुत इस श्लोक में पौरुषता का वर्णन किया गया है। हमारे संसार में आलसी व्यक्ति तो कार्यों की सिद्धि के लिए इच्छा मात्र करते हैं। परन्तु आलस्य के कारण उसकी सिद्धि के लिए कोई प्रयत्न नहीं करते हैं। वे सोचते हैं कि भाग्य ही सभी कार्यों का साधक है। इसलिए कार्य की सिद्धि के लिए प्रयत्न करने से कोई लाभ नहीं होता। अतः आलसियों का मत है ईश्वर में विश्वास स्थापित करके कार्य की सिद्धि के विषय में चिन्ता न करें। परन्तु विद्वानों का मत भिन्न ही है। उनके मत में इच्छा मात्र से किसी भी कार्य की सिद्धि नहीं होती है। कार्य की सिद्धि के लिए अवश्य ही प्रयत्न करना चाहिए। पूर्व जन्म में जो कर्म किए वह ही भाग्य कहलाता है। इसलिए भाग्य में हस्तक्षेप नहीं कर सकते हैं। अतः भाग्य के विषय में विचार न करके सभी को प्रयत्न करना चाहिए। जैसे कोई शेर मृग को खाता है ऐसा सोचकर यदि सोता है, तब वह कभी भी मृग को नहीं खा सकता है। मृग को खाने के लिए वह दौड़ करके ही मृग का शिकार करे। उसके बाद ही वह मृग को खा सकता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

1. मनोरथैः - मनसः रथाः षष्ठी तत्पुरुष।
2. प्रविषन्ति- प्र + विष् लट् लकार प्रथम पुरुष बहुवचन।

प्रयोग परिवर्तन- उद्यमेन कार्यैः सिद्धयते, न तु मनोरथैः, सुप्तस्य सिंहस्य मुखे मृगैः न हि प्रविष्यते।

छन्द परिचय- यह श्लोक अनुष्टुप् छन्द में है।

पाठगत प्रश्न 2.1

1. घर आए शत्रु का क्या करें?
2. वृक्ष किससे छाया को नहीं समेटता है?
3. किन दोनों का ग्रहपीड़न होता है?
4. कौन बलवान है?
5. पुरुष को कितने दोषों को त्यागना चाहिए? और वे कौन-से हैं?
6. मनुष्यों का महान शत्रु कौन है?
7. कौन दुःखी नहीं होता है?

ध्यान दें:

8. थोड़ा जानने वाला व्यक्ति कैसा होता है?

9. 'यदा किंञ्चिज्ञोऽहम्' इस श्लोक में क्या छन्द है?

10. जल से किसको बुझाया जा सकता है?

11. किसकी औषधि नहीं है?

12. कैसा कोयला हाथ को जलाता है?

13. कौन वास्तविक बन्धु है?

14. कार्य किससे सिद्ध होते है?

15. किसके मुख में मृग प्रवेश नहीं करते हैं?

16. (क.)- स्तम्भ से (ख.)- स्तम्भ को मिलाओ-

(क.) स्तम्भ	(ख.) स्तम्भ
1. आतिथ्यम्	क. षट्
2. दरिद्रता	ख. रिपुः
3. दोषाः	ग. रिपुः
4. बन्धुः	घ. निशितांकुशेन
5. आलस्यम्	ङ. अरौ
6. नागेन्द्रः	च. शीतः अंगारः
7. करं कृष्णयते	छ. मतिमताम्
8. आलस्यं	ज. उद्यम

पाठ सार

चन्द्र सूर्य जैसे दीप्तिमान भी राहु का ग्रास होते है, हाथी सर्प के समान शक्तिमानों को भी शृंखला और मन्त्रादि का बन्धन होता है। सभी शास्त्रों को जानने वाले महाविद्वान भी दरिद्र होते हैं। यह सब देखकर के भाग्य ही सभी का नियामक है ऐसा ज्ञात होता है। अगर शत्रु कभी भी अतिथि रूप में घर आता है, तब उचित रूप से उसका भी आतिथ्य सत्कार अवश्य ही करें। जैसे वृक्ष को काटने वाला व्यक्ति वृक्ष को काटने से थक जाने पर उस काटे हुए वृक्ष की छाया का ही आश्रय लेता है। तब वह वृक्ष उससे अपनी छाया को नहीं समेटता है। इस जगत में जो व्यक्ति उन्नति की इच्छा करता है, उसे निद्रा, जड़ता, भय, क्रोध, आलस्य, और उदासीनता ये छः दोषों को त्यागना चाहिए। इनके त्याग से ही उन्नति सम्भव होती है। आलस्य मनुष्य के शरीर का महान शत्रु है, जो बड़ा अहित करता है। प्रयत्न के समान मनुष्य का दूसरा बन्धु नहीं है। जो प्रयत्नशील व्यक्ति है वह कभी भी दुःखी नहीं होते। जब व्यक्ति थोड़ा ज्ञान प्राप्त करता है, तब मै सर्वज्ञ हूँ ऐसा मानकर हाथी के समान मदमत्त होता है। परन्तु विद्वानों के पास जाकर वह जब उनके ज्ञान को देखता है, तब उनकी अपेक्षा मैं महा मूर्ख हूँ उसका ज्ञान होता है। उस समय

में जो उसका दर्प उत्पन्न हुआ था वह क्षण भर में ही नष्ट हो जाता है।

जल के द्वारा अग्नि का शमन कर सकते हैं, छाते को धारण करने से सूर्य के प्रचण्ड ताप से रक्षा कर सकते हैं। डण्डे के प्रहार से बैल और गधे को भी शान्त कर सकते हैं। औषधि के सेवन से रोग का प्रहार कर सकते हैं। मन्त्र के प्रयोग से साँप के विष का भी शमन कर सकते हैं। इस प्रकार से सभी समस्याओं का समाधान शास्त्रों में कहा गया है। परन्तु मूर्ख की मूर्खता के परिहार के लिए कोई उपाय नहीं है। दुर्जन के साथ कभी भी मित्रता नहीं करनी चाहिए। किन्तु शत्रुता भी न करें। क्योंकि दोनों ही परिस्थितियों में दुष्ट व्यक्ति हानि ही करता है। जैसे जलता हुआ कोयला हाथ को जलाता है। वह कोयला ही अगर ठण्डा हो तो हाथ को काला करता है। जो व्यक्ति विवाहादि उत्सव के समय में, बुरे वक्त में, दुर्भिक्ष में, युद्ध में, न्यायालय में और दाह संस्कार में सदैव सभी परिस्थितियों में हित की इच्छा करता है और सहायता करता है, वह ही वास्तविक बन्धु होता है। कार्य सिद्धि के लिए जो केवल इच्छा करते हैं, वह कार्य को सिद्ध नहीं करते हैं। उसकी सिद्धि के लिए अवश्य ही प्रयत्न करना चाहिए। जैसे भोजन के लिए सिंह को दौड़कर के ही मृग का शिकार करना चाहिए। सोये हुए सिंह के मुख में मृग स्वयं आकर प्रवेश नहीं करता है।

आपने क्या सीखा

- घर आए हुए शत्रु का भी उचित आतिथ्य सत्कार करना चाहिए।
- भाग्य ही सब कार्यों का नियामक है।
- निद्रा आदि छः दोषों के त्याग के बिना उन्नति सम्भव नहीं होती।
- प्रयत्नशील व्यक्ति कभी भी दुःखी नहीं होता है।
- दुर्जन व्यक्ति हमेशा ही निन्दनीय है।
- प्रयत्न से ही सभी कार्यों की सिद्धि होती है।

पाठान्त प्रश्न

1. अतिथि सत्कार के विषय में संक्षेप में लिखिए।
2. भाग्य की बलवत्ता को यथाग्रन्थ प्रतिपादित करें।
3. अल्पज्ञान वाले मनुष्य में उत्पन्न हुए मद का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
4. मूर्ख की स्थिति को यथा ग्रन्थानुसार प्रतिपादित कीजिए।
5. बन्धु के लक्षण को यथा ग्रन्थानुसार वर्णित कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

1. उचित आतिथ्य।
2. पास गए हुए काटने वाले व्यक्ति से।

ध्यान दें:

पाठ-2

सुभाषित-2

ध्यान दें:

3. सूर्य और चन्द्रमा
4. भाग्य
5. छः निद्रा, तन्द्रा, भय, क्रोध, आलस्य और दीर्घ सूत्रता।
6. आलस्य
7. कार्य करने वाला
8. हाथी के समान मद से अन्धा होता है
9. शिखरिणी
10. अग्नि को
11. मूर्ख की
12. गर्म
13. जो उत्सव में, विपत्ति में, दुर्भिक्ष में, युद्ध में, राजदरबार में, और श्मशान में रहता है।
14. प्रयत्न से
15. सोए हुए सिंह के
16. 1-ङ, 2-छ, 3-क, 4-ज, 5-ख, 6-घ, 7-च, 8-ग,

ध्यान दें:

3

प्रहेलिका और समस्या श्लोक

प्रिय छात्रों, आप इस पाठ में प्रहेलिका और समस्या श्लोक पढ़ रहे हैं। हमारी परम्परा में चौंसठ कलाएँ प्रसिद्ध हैं। उनमें समस्या पूर्ति और प्रहेलिका अन्तर्निहित हैं। अर्थयुक्त निरर्थक या असम्भवार्थयुक्त वाक्य श्लोक का प्रायः एक पाद रूप होता है। उसका नाम समस्या है। उस समस्या का परिहार अथवा साधुत्व उपपादन कवि अपने प्रतिभा सामर्थ्य से करता है। समस्यात्मक एक पाद को लेकर अवशिष्ट तीन पादों से समस्या का परिहार प्रदर्शित किया जाता है। यह प्राचीन कविता का विनोदात्मक प्रकार है। यह कवि की कल्पना सामर्थ्य के निकट होती है। क्लिष्ट एवं विचित्र अर्थयुक्त प्रश्नरूप वचन प्रायः प्रहेलिका होती है। उसका उत्तर श्लोक में नहीं रहता। उसे श्लोक पढ़ने वाले के द्वारा स्वयं ही बताना चाहिए। यहाँ सुभाषितरत्नकोश तथा भोजप्रबन्धादि ग्रन्थों से संकलित कुछ श्लोक प्रदर्शित किये जा रहे हैं।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- समस्या रूप काव्य के प्रकार का ज्ञान कविकल्पना सामर्थ्य का बोध आदि विषय को समझ पाने में;
- समस्याओं के परिहार से होने वाले बोध को समझ पाने में;
- संस्कृत साहित्य में प्रहेलिकाओं का परिचय प्राप्त कर पाने में;
- प्रहेलिका रूप श्लोकों की रचना में मार्गदर्शन प्राप्त कर उत्साहपूर्वक नव- प्रहेलिका-काव्य-रचना में समर्थ हो पाने में।

3.1) समस्या श्लोक

3.1.1) समस्या

आगे दिये समस्या वाक्य का कोई भी अर्थ नहीं जानता है। क्योंकि यहाँ प्रयुक्त शब्दों का शास्त्र में अथवा व्यवहार में अर्थ नहीं है। फिर भी यहाँ निरर्थक पदसमुदाय का किसी समुचित अर्थ में समन्वय

ध्यान दें:

कवि द्वारा सिद्ध किया जा रहा है। किसी कवि ने समस्या का परिहार किया। यथा

राजा के स्नान के समय कामपीडिता तरुणी के हाथों से स्वर्णकलश गिर गया। जिससे सोपान पंक्ति युक्त मार्ग को प्राप्त होकर वह ठठण्ठठण्ठं ठठठण्ठठण्ठः की ध्वनि उत्पन्न कर रहा है।

राज्याभिषेके मदविह्वलायाः हस्ताच्च्युतोऽ हेमघटो तरूण्याः।
सोपानमासाद्य करोति शब्दं ठठण्ठठण्ठं ठठठण्ठठण्ठः॥ (भोजप्रबन्धः-317)

अन्वयार्थ- राजाभिषेके=राज्ञः स्नानसमये मदविह्वलायाः=कामपीडितायाः, युवत्याः= तरुण्याः, हस्तात्= करात्, च्युतः = भ्रष्टः, हेमघटः= सुवर्णकलशः, सोपानम् = सोपानपङ्क्तियुक्तं मार्गम्, आसाद्य= प्राप्य, शब्दम् = ध्वनिं,करोति=जनयति, ठठंठठठं ठठठंठठठः इति।

भावार्थ- कोई युवती किसी राजा को स्नान करवा रही है। वह राजा के शारीरिक सौन्दर्य को देखकर कामपीडित होकर उद्विग्न मन वाली हो गई। उद्वेग के कारण उसके हाथ से स्नानोपयोगी स्वर्णकलश गिर गया। तब गिरा हुआ वह स्वर्ण कलश उसी की पास में स्थित सोपानपंक्ति पर जाकर वहीं लुढकता हुआ नीचे चला गया। उस समय सोपानपंक्ति मार्ग से जब वह गिरता हुआ जाता है तब वह ठठण्ठठण्ठं ठठठण्ठठण्ठः इस प्रकार ध्वनि करता है। इस प्रकार कवि ने किसी रमणीय प्रसङ्ग की कल्पना करके समस्या का मनोहर परिहार प्रदर्शित किया। यहाँ ठठण्ठठण्ठं ठठठण्ठठण्ठः इत्यादि पदसमुदाय सोपान मार्ग से गिरते हुए स्वर्ण कलश की ध्वनि है यही कवि का आशय है। निरर्थक वह पदसमुदाय कलशध्वनि की अनुकरण ध्वनिरूप है ऐसी कल्पना करके कवि समस्या का चमत्कारकारक परिहार प्रदर्शित करता है। अनुकरण रूप शब्द का विशिष्ट कोई अर्थ नहीं होता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

राजाभिषेके राज्ञः अभिषेकः राजाभिषेकः - षष्ठी तत्पुरुष समासः,। तस्मिन् राजाभिषेके

मदविह्वलायाः मदेन विह्वला मदविह्वला, तस्याः मदविह्वलायाः-तृतीया तत्पुरुष समासः।

हेमघटः- हेम्नः घटः - हेमघटः षष्ठी तत्पुरुष समासः।

आसाद्य- षदलृ- गतौ इति धातुः, अस्मात् स्वार्थिकणिजन्तात् आङ्गुपसर्गपूर्वकात् ल्यप्प्रत्ययः।

3.1.2) समस्या "शतचन्द्रं नभःस्थलम्'' (आकाश शतचन्द्रयुक्त है)

समस्या का अर्थ- आकाश शतचन्द्रयुक्त है। हम देखते हैं कि आकाश में एक ही चन्द्रमा सुशोभित होता है। शतचन्द्रात्मक आकाश कभी नहीं दिखाई देता है। इसलिए शतचन्द्रात्मक आकाश है यह वचन तो वास्तविकता के नितांत विपरीत है इसलिए यह कठिनाई ही समस्या है। फिर भी किसी कविश्रेष्ठ ने प्रतिभा बल से समीचीन परिहार प्रदर्शित किया है। जैसे

दामोदरकराघातविह्वलीकृतचेतसा।
दृष्टं चाणूरमल्लेन शतचन्द्रं नभःस्तलम्॥ (सुभा- र-भा- समस्या 10)

श्रीकृष्ण के हस्तप्रहार (मुष्टि) से भयभीत मन वाले चाणूर नामक मल्ल के द्वारा शतचन्द्रात्मक आकाश देखा गया।

अन्वयार्थ- दामोदरकराघातविह्वलीकृतचेतसा = श्रीकृष्ण के कर प्रहार से भयभीत मन वाले चाणूरमल्लेन = चाणूर नामक मल्ल से, शतचन्द्रं = शतचन्द्रयुक्त, नभःस्थलम् = आकाश को, दृष्टं= देखा।

ध्यान दें:

भावार्थ- द्वापरयुग में चाणूर नामक राक्षस था। श्रीकृष्ण ने मुष्टिप्रहार से उसे मार दिया, ऐसा पौराणिक कथाओं में सुना जाता है। उस कथा को आधार बनाकर कवि ने इस समस्या का परिहार प्रदर्शित किया है।

श्रीकृष्ण ने चाणूर पर कराघात किया जिससे नीचे गिरा हुआ चाणूर भय से कम्पित हो गया। उसके कम्पन्न से एक चंद्रयुक्त आकाश अनेक चंद्रयुक्त-सा दिखने लगा। भय से कम्पित चाणूर की समस्या का परिहार रमणीयता से प्रदर्शित किया है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

दामोदरस्य कर- दामोदरकरः- षष्ठी तत्पुरुष समासः। दामोदरकरस्य आघातः दामोदरकराघातः- षष्ठी तत्पुरुष समासः, दामोदरकराघातेन विह्वलीकृतं चेतः यस्य सः दामोदरकराघातविह्वलीकृतचेतसा बहुव्रीहिसमासः।

चाणूरमल्लः- चाणूरश्च असौ मल्लः - चाणूरमल्लः ख्र, कर्मधारयः समास।

शतचन्द्रम्- शतं चन्द्राः यस्मिन् तत् शतचन्द्रम्ख्र, बहुव्रीहिसमासः।

नभःस्थलम्- नभसः स्थलं नभःस्थलम्-, षष्ठी तत्पुरुष समासः, अथवा नभ एव स्थलं नभःस्थलम्-, कर्मधारयः समास।

3.1.3) समस्या- गगनं भ्रमरायते (भ्रमखत होता है)

समस्या का अर्थ- यहाँ इसका अर्थ है कि आकाश भ्रमरवत् होता है। हम देखते हैं कि आकाश अपरिमित होता है जिसके परिमाण का पार कोई भी नहीं जान सकता। अनंत लोक आकाश में अंतर्निहित हैं। वैसा महत् आकाश भ्रमर के समान होता है यही महती समस्या है। आकाश का परिमाण कहाँ, भ्रमण का परिमाण कहाँ। इस प्रकार अत्यंत विरुद्ध होने के कारण यह समस्या है। किसी कवि ने इसका परिहार चमत्कार रूप से किया है। जैसे

स्वस्ति क्षत्रियदेवाय जगद्देवाय भूभुजे।
यद्दशःपुण्डरीकान्तः गगनं भ्रमरायते॥ (सुभा.र.भा. समस्या 17)

क्षत्रिय श्रेष्ठ, जगत आराध्य, भूमिपालक राजा के लिए सब शुभ हो, जिनके कीर्ति-कमल में आकाश भ्रमरवत् व्यवहार करता है।

अन्वयार्थ- क्षत्रियदेवाय=क्षत्रियश्रेष्ठ के लिए, जगद्देवाय-जगत् के आराध्याय, भूभुजे = भूमिपालक राजा के लिए, स्वस्ति=शुभं हो, यद्दशःपुण्डरीकान्तः= जिनके कीर्ति-कमल में, गगनं = आकाश, भ्रमरायते=भ्रमर है।

भावार्थ- क्षत्रिय श्रेष्ठ कोई राजा था। वह अपने श्रेष्ठ चरित से जगत देव बन गया। जिसे प्रजा अपना आराध्य मानती थी। वह राजा प्रजापालनादि कर्तव्यों से सभी लोकों में प्रसिद्ध हो गया। उसकी कीर्ति सभी लोकों में फैल गयी थी। उसकी कीर्ति का अतिशय वर्णन करते हुए कवि ने कहा कि उस राजा की कीर्ति रूपी कमल में आकाश भी भ्रमरवत् अन्तर्निहित है।

यहाँ आकाश को भ्रमर बनाने के लिए कवि ने राजा की कीर्ति रूपी कमल यह औचित्यपूर्ण एवं मनोहर कल्पना की है। भ्रमरभूत आकाश कमल में अन्तर्निहित होता है, यह सिद्ध होता है।

ध्यान दें:

व्याकरणात्मक टिप्पणी

यद्दश:पुण्डरीकान्त:-यस्य यश: ख्र यद्दश: - षष्ठीतत्पुरुषसमास:, यद्दश: एव पुण्डरीकं ख्र यद्दश:पुण्डरीकम् ख्र कर्मधारयसमास:, यद्दश:पुण्डरीकस्य अन्त: यद्दश:पुण्डरीकान्त:- षष्ठीतत्पुरुष समास:।

3.1.4) समस्या- मृगात् सिंह: पलायते (हिरण के कारण सिंह मृगराज के रूप में प्रसिद्ध है)

समस्या का अर्थ- मृग अर्थात् हिरण के कारण सिंह मृगराज के रूप में प्रसिद्ध है। उसका शौर्य एवं क्रौर्य बहुत प्रसिद्ध है। उसके स्वप्न से भी डरकर मृग दूर भाग जाते हैं। सिंह मृग को खाकर सुख पूर्वक सोता है। बकरी को मारने वाला भी वीर सिंह है। वह मृग से पलायन करता है यह तो बिल्कुल विपरीत बात है।

अत: यह समस्या निश्चय ही जटिल है। कवि ने अपनी प्रतिभा के सामर्थ्य से इस समस्या का मनोहर परिहार प्रदर्शित किया है

हीनहत्यादधात्येव लाघवं महतामपि।
इति मत्वा द्विपद्वेषी मृगात् सिंह: पलायते॥ (सुभा.र.भा. समस्या-4)

हीनहत्या अर्थात् अपने से तुच्छ अथवा दुर्बलों को मारना श्रेष्ठ प्राणियों की लघुता को ही उत्पन्न करती है, यह सोचकर ही गज शत्रु सिंह मृग से पलायन कर जाता है।

अन्वयार्थ- हीनहत्या = सामर्थ्य की अपेक्षा से अपने से तुच्छ अथवा दुर्बलों को मारना, महतामपि = श्रेष्ठ प्राणियों की भी, लाघवम् = लघुता, तुच्छता का भाव, दधात्येव = निश्चय ही उत्पन्न करती है इति मत्वा = यह सोचकर द्विपद्वेषी = गज का शत्रु, सिंह: = केसरी, मृगात्-हिरण से, पलायते = पलायन कर जाता है।

भावार्थ- यहाँ कवि का आशय ऐसा है कि मेरे समान बलवान मृग नहीं होता है। इसलिए युद्धादि साहसिक कार्य तो दो समान बलिष्ठों के मध्य होना चाहिए, ऐसा नियम है। असमानों में युद्ध अधार्मिक होता है। बलहीनों के साथ बलिष्ठ युद्ध नहीं करते। अत: सिंह मृग को पाकर अपनी प्रतिष्ठा भङ्ग हो जाने के भय से मृग से दूर चला जाता है, ऐसा कवि का आशय है। इस प्रकार मृग से सिंह के पलायन में प्रतिष्ठा- निरूपण कारण को उपस्थापित करके कवि ने समस्या का समुचित परिहार प्रदर्शित किया है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

हीनहत्या- हीनस्य ख्रहत्या ख्र हीनहत्या- षष्ठी तत्पुरुष समास:।

दधाति + एव - दधात्येव -यण् सन्धि:।

3.1.5 समस्या- चींटी चन्द्रमण्डल को चूमती है

चींटी चन्द्रमण्डल को चूमती है,यह समस्या का तात्पर्य है। इस समस्या का रहस्य यह है कि भूमि पर स्थित चींटी अन्तरिक्ष में स्थित चन्द्रबिम्ब को चूमती है इस वचन से समस्या की कठिनता बढ़ गई। यह असम्भव रूप कथन निश्चय ही बडी समस्या है। कोई कवि इसका परिहार प्रस्तुत करता है। यथा

ध्यान दें:

सतीवियोगेन विषण्णचेतसः प्रभोः शयानस्य हिमालयगरौ।
शिवस्य चूडाकलितं सुधाशया पिपीलिका चुम्बति चन्द्रमण्डलम्॥

देवी सती के वियोग से चींटी हिमालय नामक पर्वत में शयन करते हुए खिन्न मनस्क जगत् के स्वामी शङ्कर के चूडा में स्थित चंद्र बिम्ब को अमृत की इच्छा से चुम्बन करती है।

अन्वयार्थ- सतीवियोगेन = सतीदेवी के वियोग से, पिपीलिका = चींटी नामक जन्तु, विषण्णचेतसः= खिन्नमन वाले का, हिमालये = हिमालय नामक, गिरौ = पर्वत पर, शयानस्य = शयन करते हुए का, प्रभोः = जगत्स्वामी के, शिवस्य= शङ्कर के, चूडाकलितम् = चूडा पर स्थित, चन्द्रमण्डलम् = चन्द्र बिम्ब को, सुधाशया = अमृत की इच्छा से, चुम्बति = चुम्बन करती है।

भावार्थ- दक्ष प्रजापति की पुत्री सती पहले शिव की पत्नी थीं। उसने यज्ञकुण्ड में देह त्याग कर दिया ऐसी पुराणकथा सुनी जाती है। तब पत्नी वियोग से शिव दुःखी हो गये। दुःखी होकर वे हिमालय पर्वत में ही शयन किए हुए थे। तब उनके सिर पर स्थित चंद्रबिम्ब भूमि से स्पर्श हो गया। चंद्र से अमृत का सर्वण होता है ऐसी प्रसिद्धि है। अमृतरस की उत्कण्ठा से अमृतरस को पीने के लिए पिपीलिका चंद्रबिम्ब को चूमती है। इस प्रकार यहाँ कवि पौराणिक वृत्तान्त का आश्रय लेकर अत्यन्त रमणीय रीति से समस्या का परिहार सिद्ध करते हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

सत्याः वियोगः सतीवियोगः - षष्ठी तत्पुरुष समासः। विषण्णचेतसः- विषण्णं चेतः यस्य सः विषण्णचेताः तस्य विषण्णचेतसः ख्रबहुव्रीहिसमासः। सुधाशया-, सुधायाः आशा सुधाशा तया सुधाशया- षष्ठी तत्पुरुष समासः।

3.1.6 समस्या- यह सती पति के सामने कामभाव से ससुर का आलिङ्गन करती है

समस्या का अर्थ- यह साध्वी पति के सामने कामभाव से ससुर का आलिङ्गन करती है, यह समस्या का अर्थ है।

समस्या का स्वरूप यह है कि सती स्त्री अपने पति को देवता मानते हुए कामविचार से पर पुरुष को स्वप्न में भी नहीं देखती है, ऐसा लोक में सुना जाता है। किन्तु यह साध्वी पतिदेव के सामने ही कामावेग से पति का आलिङ्गन नहीं करती है, अपितु ससुर का आलिङ्गन करती है। यह व्यवहार गणिका (सेक्स वर्कर) का हो सकता है। किन्तु साध्वी का ऐसा व्यवहार है। केसा यह समस्या का काठिन्य है। फिर भी किसी कवि की प्रतिभा यहाँ समस्या का परिहार करती है। यथा-

कदाचित्पाञ्चाली विपिनभुवि भीमेन बहुशः
कृशाङ्गि श्रान्तासि क्षणमिह निषीदेति गदिता।
शनैः शीतच्छायं तटविटपिनं प्राप्य मुदिता।
पुरः पत्युः कामात् श्वशुरमियमालिङ्गति सती॥ (सुभा.र.भा. समस्या-35)

अन्वयार्थ- कदाचित् = किसी दिन, विपिनभुवि = वनप्रदेश में, कृशाङ्गि = हे तन्वङ्गि, बहुशः = प्रायः, श्रान्तासि = थक गई हो, इह = यहाँ, क्षणम् = क्षणभर तक, निषीद = बैठो, इति = इस प्रकार, भीमेन = भीमसेन वृकोदर द्वारा, गदिता = कहा गया, इयम् = यह, सती = साध्वी, पाञ्चाली = द्रौपदी, शनैः = मन्द-मन्द, शीतच्छायं = शीतल छायायुक्त, तटविटपिनं = पास में स्थित वृक्ष, प्राप्य = पास जाकर,

ध्यान दें:

मुदिता = सन्तुष्ट, पत्युः = भीम के, पुरः = सामने, कामात् = काम भाव से, श्वशुरम् = वायु को, आलिङ्गति = गले लगाती है।

भावार्थ- महाभारत में पाण्डवों का वनवास वृत्तान्त है। उसका आश्रय लेकर कवि इस समस्या का परिहार करता है। पाण्डवों के वनवास प्रसङ्ग में ग्रीष्मकाल आया। एक दिन गर्मी से थकी द्रौपदी को देखकर भीम ने कहा कि हे द्रौपदी! तुम थक गयी हो। यहाँ कुछ समय तक बैठो। तब भीम के प्रेमवचन सुनकर वह वहीं शीतल छाया युक्त वृक्ष के पास जाकर बैठ गयी। उससे उसे बडा आनन्द मिला। वहाँ वायु भी अच्छी प्रकार से बह रही थी। तब द्रौपदी गर्मी से उत्पन्न थकान को दूर करने के लिए वायु का सेवन करती है। वायु भीम के पिता हैं। इसीलिए वह द्रौपदी के ससुर भी हो जाते हैं। इस प्रसङ्ग से सती पति के सामने ससुर का आलिङ्गन करती है यह सिद्ध हो जाता है। इस प्रकार समस्या का परिहार प्रदर्शित किया गया है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

विपिनभुवि- विपिनस्य भूः विपिनभूः- षष्ठी तत्पुरुष समासः, तस्यां विपिनभुवि।

तटविटपिनम्- तटस्य विटपी तटविटपी तं तटविटपिनम् - षष्ठी तत्पुरुष समासः।

पाठगत प्रश्न-3.1

1. स्वर्णकलश किसके हाथ से गिर गया?
2. कहाँ से स्वर्णकलश हाथ से गिर गया?
3. चाणूर कौन है?
4. आकाश कहाँ भ्रमित होता है?
5. जगद्देवः इसका विग्रह क्या है?
6. द्विपद्वेषी कौन है?
7. ठठठंठठः इत्यादि किसका अनुकरण शब्द है?
8. भीम किसका पुत्र है?
9. क्या पुण्डरीक रूप से कल्पित किया गया है?
10. हीन हत्या कौन करता है?

3.2) प्रहेलिका श्लोक

कृष्णमुखी न मार्जारी द्विजिह्वा न च सर्पिणी।
पञ्चभर्त्री न पाञ्चाली यो जानाति स पण्डितः॥ (सुभा.र.भा. प्रहेलिका-25)

अन्वयार्थ- कृष्णमुखी= श्यामलवर्णात्मकमुखी, न मार्जारी= बिडाली नहीं है, द्विजिह्वा= दो जीभ हैं जिसकी, न च सर्पिणी = सर्पिणी नहीं है, पञ्चभर्त्री= पाँच पतियों के साथ, न पाञ्चाली = द्रौपदी नहीं है, यः जानाति= जो जानता है, स= वह जन, पण्डितः= वह विद्वान है।

भावार्थ- कोई श्यामल वर्णात्मक मुखी है। परन्तु वह मार्जारी नहीं है। यद्यपि वह दो जीभ

ध्यान दें:

धारण करती है फिर भी वह सर्पिणी नहीं है। वही पाँच पतियों के साथ है। किंतु द्रौपदी नहीं है। ऐसी विलक्षणा को वह विद्वान है यही तात्पर्यार्थ है। प्रिय छात्रों, इसी प्रकार आप स्वयं सोचकर जानो और पण्डित बनो।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

कृष्णमुखी- कृष्णं मुखं यस्याः सा कृष्णमुखी, बहुव्रीहि समासः।
द्विजिह्वा ख्र द्वे जिह्वे यस्याः सा द्विजिह्वा- बहुव्रीहि समासः।
पञ्चभर्त्री- पञ्च भर्तारः यस्याः सा पञ्चभर्त्री- बहुव्रीहि समासः।
वने जाता वने त्यक्ता वने तिष्ठति नित्यशः।
पण्यस्त्री न तु सौ वेश्या यो जानाति स पण्डितः॥ (सुभा.र.भा. प्रहेलिका-2)

अन्वयार्थ- सा = वह, वने = वन में, जाता = उत्पन्न हुई, वने = जल में, त्यक्ता = त्यागी गई, नित्यहा = सर्वदा, तिष्ठति - रहती है, पण्यस्त्री = धन से खरीदने योग्य स्त्री, न तु वेश्या = वह वेश्या नहीं है, यः = जो व्यक्ति, जानाति - जानता है, स पण्डितः - वह कुशल पण्डित है।

भावार्थ- वह कोई वन में ही उत्पन्न हुई है। जल में ही त्यागी जाती है। वह जल में ही रहती है। उसी प्रकार वह धन से खरीदकर उपभोग की जा सकती है, किंतु वह वेश्या नहीं है। ऐसी विलक्षणता को जो सोचकर जान सकता है वह कुशल पण्डित है। प्रिय छात्रों, इसी प्रकार आप स्वयं सोचकर जानो और पण्डित बनो।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

पण्यस्त्रीः- पण्या च असौ स्त्री पण्यस्त्री - कर्मधारयसमासः
वनम् इति पदं अरण्यार्थे यथा वर्तते तथा जलार्थेऽपि वर्तते।
आपः स्त्रीभूम्नि वार्वारि सलिलं कमलं जलम्।
पयः कीलालममृतं जीवनं भुवनं वनम्॥ (इत्यमरः)
वृक्षाग्रवासी न च पक्षिराजः त्रिनेत्रधारी न च शूलपाणिः।
त्वग्वस्त्रधारी न च सिद्धयोगी जलं च बिभ्रत् न घटो न मेघः॥
(सुभा . र.भा.प्रहेलिका - 41)

अन्वयार्थ- वृक्षाग्रवासी= वृक्ष के ऊपर रहता है, न च पक्षिराजः= पक्षिश्रेष्ठ नहीं है, त्रिनेत्रधारी= तीन नेत्र हैं जिसके, न च शूलपाणिः= वह शिव नहीं है, त्वग्वस्त्रधारी= त्वग्रूप (छाल) वस्त्र धारण करता है, न च सिद्धयोगी = वह योगीपुरुष नहीं है, जलं= जल, बिभ्रत्= धारण करता हुआ, न घटः = घड़ा नहीं है, न मेघः = न मेघ है।

भावार्थ- कोई वैसा पदार्थ विशेष है जो वृक्ष के ऊपर रहता है। किन्तु वह पक्षी श्रेष्ठ नहीं है। तीन नेत्र धारण करता है। परन्तु वह शिव नहीं है। वह त्वग्रूप रूप वस्त्र धारण करता है किन्तु वह योगी पुरुष नहीं है जो वृक्ष की छाल से निर्मित वस्त्र धारण करे। वह जल भी धारण करता है। किन्तु यह घड़ा नहीं है, न ही मेघ है।

इस प्रकार अत्यन्त विचित्र पदार्थ विशेष क्या होना चाहिए ? ऐसा कवि पूछ रहा है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

पक्षीराजः- पक्षिणां राजा पक्षिराजः, षष्ठी तत्पुरुषसमासः।

ध्यान दें:

त्रिनेत्रधारी- त्रीणि नेत्राणि धारयितुं शीलम् अस्य अति

त्रिनेत्रधारी- उपपदसमासः।

शूलपाणिः- शूलः पाणौ यस्य सः शूलपाणी बहुव्रीहि समासः।

त्वग्वस्त्रवासी-त्वक् एव वस्त्रं त्वग्वस्त्रम् कर्मधारयसमासः, त्वग्वस्त्रं

वस्तुं शीलम् अस्येति त्वग्वस्त्रवासी - उपपदसमासः।

सिद्धयोगी- सिद्धश्च असौ योगी सिद्धयोगी कर्मधारयसमास।

पाठगत प्रश्न- 3.2

11. पण्यस्त्री के समान कौन कही गयी है?
12. लेखनी के पाँचपति कौन हैं?
13. द्विजिह्वा कौन है?
14. नारियल और योगी के वस्त्र कैसे हैं?
15. पत्र का स्फुट वक्तृत्व कैसे सिद्ध होता है?
16. पक्षिराजः का विग्रह क्या है?

वृक्षस्याग्रे च फलं दृष्टं फलाग्रे वृक्ष एव च।
अकारादिसकारान्तं यो जानाति स पण्डितः॥

अन्वय- वृक्षाग्रे फलं दृष्टम्,फलाग्रे वृक्षः एव च। अकारादि सकारान्तम्

यः जानाति स पण्डितः (अस्ति)।

अन्वयार्थ- वृक्षाग्रे= पादप के अग्रभाग में, फलं दृष्टम् = देखा गया, फलाग्रे = फल के अग्रभाग में, वृक्षः = पादप ही, अकारादि सकारान्तम् = आरम्भ में अकार विशिष्ट, अन्ते सकार विशिष्टम् च यः जानाति = जानता है, स = वह, पण्डितः = विद्वान् है।

भावार्थ- इस प्रहेलिका में एक प्रश्न है। उसके उत्तर प्राप्ति के लिए इस श्लोक में अनेक सूचनाएँ दी जा रही हैं। वह प्रश्न है- वह कौन-सा फल है जो वृक्ष के अग्र भाग में लगता है। क्या उस फल के अगले भाग में वृक्ष की भाँति पत्ते होते हैं। और उसके नाम का पहला अक्षर अकार है, अंतिम अक्षर सकार है। इस प्रकार यहाँ चौथी सूचना दी गयी है। इसके बाद जो व्यक्ति इसका उत्तर देने में समर्थ होता है वह महापण्डित है। इसका उत्तर अनानास फल है। अनानास फल वृक्ष के अग्र भाग में लगता है। अनानास फल के अगले भाग में वृक्ष की भाँति पत्ते होते हैं। अनानास का पहला अक्षर अकार है, अंतिम अक्षर सकार है। इस प्रकार इस प्रहेलिका का उत्तर अनानास फल है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- वृक्षाग्रे - वृक्षस्य अग्रः वृक्षाग्रः इति, षष्ठी तत्पुरुषसमासः, तस्मिन् वृक्षाग्रे
- दृष्टम् - दृश् - धातोः, क्तप्रत्यये, दृष्टम् इति रूपम्।
- अकारादिसकारान्तम्- अकारः आदिः यस्य तत् अकारादि इति बहुव्रीहि समासः। सकारः अन्ते

ध्यान दें:

यस्य तत् सकारान्तम् इत्यपि, बहुव्रीहि समासः। अकारादि च तत् सकारान्तम् अकारादिसकारान्तम् इति कर्मधारयसमासः।

सन्धि युक्त शब्द

- वृक्ष एव = वृक्षः + एव।
- यो जानाति = यः + जानाति।

नित्यं रथेन गच्छामि, अश्वाः मे रथं वहन्ति।
सम्राटऽस्मि नरो नास्मि नासुरोऽस्मि निशाचरः॥

अन्वय- नित्यं रथेन गच्छामि, अश्वाः में रथं वहन्ति। सम्राट् अस्मि नरः न अस्मि, असुरः अस्मि निशाचरः न।

अन्वयार्थ- नित्यं = सर्वदा रथेन =रथ से गच्छामि=जाता हूँ, अश्वाः = घोड़े, में = मेरे रथं = रथ को वहन्ति = वहन करते हैं, सम्राट् = राजा, अस्मि = हूँ, नरः = मनुष्य, न अस्मि = नहीं हूँ, असुरः प्राणदायकः= प्राणदाता, अस्मि = हूँ, निशाचरः = राक्षस।

भावार्थ- इस प्रहेलिका में एक प्रश्न है। उसके उत्तर प्राप्ति के लिए इस श्लोक में अनेक सूचनाएँ दी जा रही हैं। वह प्रश्न है वह कौन है जो राजा की तरह रथ से ही चलता है? अश्व उस रथ को ढोते हैं। वह सम्राट् अर्थात् सम्यक् शोभायुक्त है, परंतु स्वयं मनुष्य नहीं है। वह स्वयं सभी के लिए प्राण देता है, परंतु निशाचर नहीं है। इस प्रश्न का उत्तर है सूर्य। क्योंकि सूर्य नृपवत् आकाश में सारथि अरुण के द्वारा सञ्चालित रथ से चलता है। सात अश्व सूर्य के रथ को खींचते हैं। सूर्य आकाश में अत्यधिक प्रकाशित होता है। इस कारण वह सम्राट् है। परंतु सूर्य है न कि मनुष्य।वह प्राण देता है यह हम सब जानते हैं। वही जगत् का उत्पत्तिकर्ता है, अतः असुर है परंतु वह रात्रिचर है अर्थात् रात्रि में नहीं चलता है, वह तो दिन में चलता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- सम्राट् = सम्यक् राजते इति सम्राट्।
- निशाचरः = निशायां चरति इति निशाचरः। तस्य राक्षसः इत्यर्थः।

सन्धि युक्त शब्द

- अश्वा वहन्ति = अश्वाः + वहन्ति
- सम्राटऽस्मि = सम्राट् + अस्मि
- नासुरोऽस्मि = न + असुरः + अस्मि।

अनेकसुशिरं वाद्यं कान्तं च ऋषिसंज्ञितम्।
चक्रिणा च सदाराध्यं यो जानाति स पण्डितः॥

अन्वय- अनेक सुशिरं वाद्यं कान्तम् ऋषिसंज्ञितं चक्रिणा च सदा आराध्यं यः जानाति स पण्डितः।

अन्वयार्थ- अनेकसुशिरम् = अनेक सुंदर सिरों से विशिष्ट,वाद्यं = वादनसाधन, वकारादि वा, कान्तं = सुन्दर, ककारान्त, ऋषिसंज्ञितं = ऋषि सदृश विशिष्ट, चक्रिणा = विष्णु द्वारा सर्प द्वारा च, सदा = सर्वदा, आराध्यं = पूज्य, यः जानाति = जो जानता है, स पण्डितः = वह विद्वान् है।

पाठ-3

प्रहेलिका और समस्या श्लोक

ध्यान दें:

भावार्थ यह पहेली भ्रम उत्पन्न करने वाली है। जो इस पहेली को पहली बार पढ़ता है, वह इसका यह अर्थ ही समझता है कि वैसा कोई वाद्य है कि जो अनेक सुंदर सिरों से विशिष्ट सुंदर ऋषियों के सदृश विशिष्ट है, और विष्णु के द्वारा सदैव पूज्य है। इस प्रकार प्रहेलिका का अर्थ करने के लिए पाठक इसके उत्तर का निर्णय करने में कभी समर्थ नहीं हो सकते हैं। यह अर्थ तो भ्रमात्मक है। इसलिए यह अर्थ यहाँ विचारणीय नहीं है। यहाँ प्रकृत प्रश्न का स्वरूप है कि वैसी कोई वस्तु है जिसके बहुत से सिर हैं। जिसका आदि अक्षर वकार है और अंतिम अक्षर ककार है,किंतु जिसका नाम किसी ऋषि के नाम के समान है। और वह वस्तु सर्पों के लिए सर्वदा इच्छित है। जो इस प्रश्न का उत्तर देने में समर्थ है उसे महान् विद्वान् जानना चाहिए।वह उत्तर है- वाल्मीकि अर्थात् सर्पों का निवास स्थान। वाल्मीकि में बहुत से छिद्र होते हैं और वाल्मीकि का आदि अक्षर वकार है तथा अंतिम अक्षर ककार है। इसका नाम ऋषि वाल्मीकि के नाम के समान है। और वह वस्तु सर्पों का निवासस्थान होने से उन्हें अत्यंत प्रिय है। इस प्रकार इस प्रहेलिका का उत्तर वाल्मीकि है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

1. अनेकसुशिरम् शोभनानि शिरांसि सुशिरांसि इति, गतिसमासः।

   अनेकानि सुशिरांशि यस्य तत् अनेकसुशिरम् इति, बहुव्रीहिसमासः।

2. वाद्यम्- व् आद्यं यस्य तत् वाद्यम् इति, बहुव्रीहिसमासः।

3. कान्तम्- क् अन्ते यस्य तत् कान्तम् इति, बहुव्रीहिसमासः।

सन्धि युक्त शब्द

1. सदाराध्यम् - सदा + आराध्यम्।

2. स पण्डितः = सः + पण्डितः।

न तस्यादिर्न तस्यान्तो मध्ये यस्तस्य तिष्ठति।
तवाप्यस्ति ममाप्यस्ति यदि जानासि तद् वद॥

अन्वय- न तस्यादिः (अस्ति), न तस्य अन्तः (अस्ति), तस्य मध्ये यः तिष्ठति। तव अपि अस्ति, मम अपि अस्ति, यदि जानासि तद् वद्।

अन्वयार्थ- न = नकार, तस्यादिः = उसका आदि अक्षर, न = नकार, तस्य अन्तः = अन्तिमाक्षर, तस्य मध्ये = उसके मध्यभाग में, यः = यकार, तिष्ठति = रहता है, तव = तुम्हारा, अपि अस्ति = है, मम = मेरा अपि अस्ति है, यदि जानासि = जानते हो, तद् वद = बताओ।

भावार्थ- यह प्रहेलिका भी भ्रम उत्पन्न करने वाली है। जो इस प्रहेलिका को प्रथम बार पढता है वह इसका अर्थ समझता है कि ऐसी कोई वस्तु है,जिसके आरम्भ में नकार है तथा जिसकी समाप्ति भी न से ही होगी। अर्थात् वह वस्तु अनादि और अनंत है। किंतु वह सभी के पास है। प्रहेलिका के इस अर्थ के लिए पाठक कभी भी इसका उत्तर निर्धारण करने में समर्थ नहीं हो पाता है। यह अर्थ तो भ्रमात्मक ही है। इस कारण यह अर्थ यहाँ विचारणीय नहीं है। यहाँ प्रश्न है कि ऐसी कोई वस्तु है, जिसके आरम्भ में नकार है तथा अंत में भी नकार है किंतु उसका मध्य अक्षर य है और वह सभी के पास है।

वह उत्तर है नयन अर्थात् चक्षु। नयन का आदि अक्षर नकार है,अंतिम अक्षर भी नकार ही है। और मध्य में यकार है। और वह सभी प्राणियों का नयन है। इस प्रकार इस प्रहेलिका का उत्तर नयन निर्धारित होता है।

पाठ-3

प्रहेलिका और समस्या श्लोक

ध्यान दें:

सन्धि युक्त शब्द

1. तस्यादिर्न = तस्य + आदिः + न।
2. तस्यान्तः = तस्य +अन्तः।
3. यस्तस्य = यः + तस्य।

मुखे हस्तद्वयं धत्ते, सर्वथा जागरूका सा।
प्रतिक्षणं वदन्तीव, प्राणाश्च पिञ्जिताः सदा॥

अन्वय- सा मुखे हस्तद्वयं धत्ते, सर्वथा जागरूका, प्रतिक्षणं वदन्ति इव, (तस्याः) प्राणाः सदा पिञ्जिताः।

अन्वयार्थ- सा मुखे = मुख में, हस्तद्वयं = दो भुजाएँ धत्ते = धरति, सर्वथा = सर्वदा जागरूका = जागने वाली, प्रतिक्षणं = हर समय, वदन्ति = कहती- सी, (तस्याः) प्राणाः = प्राण, सदा = सर्वदा, पिञ्जिताः = बँधा हुआ।

भावार्थ- इस प्रहेलिका में एक प्रश्न है। उसके उत्तर प्राप्ति के लिए इस श्लोक में अनेक सूचनाएँ दी जा रही हैं। वह प्रश्न है- वैसा कौन व्यक्ति है, जिसके मुख में ही दो हाथ धारण करता है, अर्थात् उसके मुख में ही दो हाथ हैं। किन्तु वह कभी सोता नहीं है सदा जागता ही रहता है। और वह सभी मनुष्यों के लिये प्रत्येक क्षण का ज्ञान कराता है। परंतु उसके प्राण बँधे हुए हैं,अर्थात् वह स्वाधीन नहीं है। इस प्रकार इस प्रश्न समाधान के लिये चार सूचनाएँ दी गयी हैं।

इस प्रश्न का उत्तर है घटिका अर्थात् घडी। घटिका के मुखभाग में अर्थात् सम्मुख भाग में समय निर्धारण के लिये दो बडे दण्ड (सुइयाँ) होते हैं। उन दोनों में से एक मिनट की सुई कही जाती है तथा दूसरी घण्टे की सुई कही जाती है। और वे दोनों दण्ड घटिका के हस्त स्वरूप हैं। और घटिका सदा जागती रहती है। रात्रि में जब सभी लोग सोते रहते हैं तब भी वह अपने समय बोध के कार्य में संलग्न रहती है। कभी नहीं सोती है। इस प्रकार वह सभी मनुष्यों के लिये प्रत्येक क्षण का ज्ञान करवाती है। घटिका के माध्यम से ही लोगों का कार्य सम्यक्तया चलता है। समय ज्ञान के बिना कोई भी सम्यक् रूप से कार्य सम्पन्न नहीं कर सकता। अतः समय ज्ञापन द्वारा वह सभी का महान् उपकार करती है। परंतु वह स्वाधीन नहीं है। उसके प्राण बँधे हुए हैं। यदि विद्युत्कोश समाप्त हो जाता है तो वह बन्द हो जाती है, नया विद्युत्कोश प्राप्त होने पर वह पुनः चलने (जीवित) लगती है। इस प्रकार इस प्रहेलिका का उत्तर है घटिका।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

1. धत्ते- धा धातु आत्मनेपदी लट्लकार प्रथम पुरुष।

सन्धि युक्त शब्द

1. वदन्तीव = वदन्ति + इव।
2. प्राणाश्च = प्राणाः + च।

सदारिमद्ध्यापि न वैरियुक्ता
नितान्तरक्तापि सितैवनित्यम्।
यथोक्तवादिन्यपि नैव दूती

ध्यान दें:

का नाम कान्तेति निवेदयाशु॥

अन्वय- सदारिमध्या अपि वैरियुक्ता न, नितान्तरक्तापि नित्यं सिता एव। यथोक्तवादिनी अपि दूती न एव। का नाम कान्ता इति आशु निवेदय।

अन्वयार्थ- सदारिमध्या = सर्वदा शत्रुजन के मध्य में स्थित, मध्ये रि-रि इस अक्षरवाली, अपि वैरियुक्ता = शत्रुयुक्त, न, नितान्तरक्तापि = अत्यन्त लाल होने पर भी, नित्यं = सर्वदा, सिता एव= श्वेतवर्णा, यथोक्तवादिनी = स्पष्टवादिनी, अपि दूती न एव, का नाम कान्ता स्त्री = अन्त में ककारवती वा इति आशु = शीघ्र, निवेदय = बताओ।

भावार्थ- यह प्रहेलिका भ्रम उत्पन्न करने वाली है। जो इस प्रहेलिका को प्रथम बार पढ़ता है वह इसका अर्थ समझता है की ऐसी कोई स्त्री है जो सदा शत्रुजनों के मध्य रहती है, परंतु स्वयं का शत्रुओं के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। विषयों में अत्यंत आसक्ति है। परंतु वह सीता की भाँति अति पवित्र है। वह सदा अतिस्पष्ट बोलती है परंतु वह किसी की दूती नहीं है। प्रहेलिका को पूरी पढ़ने पर सर्वत्र विरोधाभास प्रतीत होता है। प्रहेलिका का इस प्रकार अर्थ करने पर पाठक इसका उत्तर निर्धारण करने में समर्थ नहीं हो सकता। यह अर्थ तो भ्रमात्मक ही है। इसलिए यह अर्थ यहाँ नहीं विचारना चाहिए। यहाँ प्रश्न है वैसी कौन है जो जिसके नाम के मध्य में रि है, अत्यंत लाल वर्ण होने पर भी श्वेत वर्ण से युक्त है। दूत के समान वह मनुष्य के मुख से सुनती है तथा बाद में वैसा ही बोलती है।क्या वह सारिका है। जिसके नाम का अंतिम अक्षर भी ककार ही है। अत: इस पहेली का उत्तर सारिका है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

1. वैरियुक्ता - वैरिभि: युक्ता वैरियुक्ता इति तृतीयातत्पुरुषसमास।
2. नितांतरक्ता- नितांतं रक्ता इति नितांतरक्ता।
3. कान्ता- क् अन्ते यस्या: सा कान्ता इति बहुव्रीहिसमास:।
4. निवेदय- नि पूर्वकात् विद् धातो: णिच्प्रत्यये लोटि मध्यमपुरुषैकवचने निवेअय इति रूपम्।

सन्धि युक्त शब्द

1. सदारिमध्यापि = सदा+अरिमध्या + अपि।
2. नितान्तरक्तापि = नितान्तरक्ता+अपि।
3. सितैव= सिता + एव।
4. निवेदयाशु = निवेदय + आशु।

आदौ भा शोभते नित्यं रतं पश्चाद् विराजते।
देवतानां प्रियं धाम तवाप्यस्ति ममापि च॥

अन्वय- आदौ नित्यं भा शोभते,पश्चात् रतं विराजते। देवतानां प्रियं धाम, तव अपि अस्ति मम अपि च।

अन्वयार्थ- आदौ = आदिभाग में, नित्यं = सर्वदा, भा = भा यह अक्षरं, शोभते = सुशोभित होता है, पश्चात् = पृष्ठभाग में, रतं = रत- यह शब्द, विराजते = सुशोभित होता है, देवतानां = अमरों का, प्रियं = इष्ट, धाम = स्थान, तव = आपका अपि अस्ति = है, मम अपि च = मेरा

ध्यान दें:

भावार्थ- इस पहेली में किसी स्थान के कुछ वैशिष्ट्य कहे गये हैं। पाठक के द्वारा श्लोक के पढने पर उन वैशिष्ट्यों को जानकर उस वैशिष्ट्य से युक्त स्थान क्या है यह निर्धारित करना चाहिए। वे वैशिष्ट्य हैं जैसे- उस स्थान के आदि में हमेंशा भा रहता है अर्थात् उसके नाम का आदि शब्द भा है, अथवा उस स्थान में हमेंशा दीप्ति (प्रकाश) है,यह भी कहा जा सकता है। किंतु उस स्थान के नाम के पश्चात् रत रहता है,अर्थात् उस नाम का अंतिम शब्दरत है। और वह स्थान देवताओं के लिए अति प्रिय है। और वह स्थान हम सबका है।

वह स्थान भारत है। भारत इस नाम का आदि शब्द भा है, किंतु श्रीरामचंद्र व्यास-वाल्मीकि-आदि महान् ज्ञानियों ने इस भारतवर्ष में जन्म लिया। इस कारण उनके ज्ञानप्रभाव से भारतदेश सदैव दीप्तिमान रहता है। और भारत इस नाम का अंतिम शब्द रत है। भारत देश सभी देवताओं का अति प्रिय है। देवता भारतवर्ष में बार-बार जन्म लेना चाहते हैं। यह भारत देश हमारे सभी संस्कृत प्रेमियों का अपना देश है। इस प्रकार इस प्रहेलिका का उत्तर है भारत।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

1. विराजते = वि उपसर्गपूर्वक राज् - धातु लट्लकार, प्रथमपुरुष एकवचन।

सन्धि युक्त शब्द

1. पश्चाद् विराजते = पश्चात् + विराजते।
2. तवाप्यस्ति = तव + अपि + अस्ति।
3. ममापि = मम + अपि।

अपदो दूरगामी च साक्षरो न च पण्डितः।
अमुखःस्फुटवक्ता च यो जानाति स पण्डितः॥

अन्वय- अपदः दूरगामी, साक्षरः (परंतु) न पण्डितः, अमुखः स्फुटवक्ता च, या (एतं), जानाति स पण्डितः।

अन्वयार्थ- अपदः = पादहीन, दूरगामी = दूरगमनकारी, साक्षरः = अक्षरयुक्त (परंतु), न पण्डितः = विद्वान् नहीं है, अमुखः = मुखहीन, स्फुटवक्ता = स्पष्टवक्ता, यः = जो जन (एतं) जानाति = जानता है, स पण्डितः = ज्ञानी।

भावार्थ- इस पहेली में किसी पदार्थ के परस्पर विरुद्ध कुछ वैशिष्ट्य कहे गये हैं। पाठक के द्वारा श्लोक के पढ़ने पर उन वैशिष्ट्यों को जानकर उस वैशिष्ट्य से युक्त पदार्थ क्या है यह निर्धारित करना चाहिए। इस पहेली के उत्तर निर्णय में पाठकों को भ्रम होता है, कि यहाँ पदार्थ के जो वैशिष्ट्य कहे गये हैं वे सभी परस्पर विरुद्ध हैं अर्थात् वे सभी वैशिष्ट्य एक ही पदार्थ में एक साथ नहीं हो सकते। अतः पाठक को यह श्लोक एकाग्रता से पढ़ना चाहिए। पदार्थ के वे वैशिष्ट्य हैं जैसे- उसके पैर नहीं हैं, परंतु पादहीन होने पर भी वह दूर तक जा सकता है। वह अक्षरों से युक्त है, पर वह विद्वान नहीं है। उसका मुख है, परंतु वह हमेशा निर्भय व स्पष्ट बोलता है। जो इसका उत्तर जानता है वह महाज्ञानी ही है।

वह उत्तर पत्र है। पत्र के दो पैर हैं परंतु वह पुस्तक रूप से अथवा अन्य रूप से एक स्थान से बहुत दूर दूसरे स्थान पर अनायास ही जाता है। इस प्रकार पैर नहीं होने पर भी पत्र एक स्थान से अन्य स्थान पर भी पहुँच जाता है। किंतु जब पुस्तक बनायी जाती है तब पुस्तकों के पत्रों में बहुत से अक्षर

ध्यान दें:

मुद्रित किये जाते हैं। बहुत ज्ञानपूर्ण वाक्य पत्रों में होते हैं। उन्हें पढने से मनुष्य ज्ञान अर्जित करते हैं। परंतु प्रचुर अक्षरों से विशेष होने पर भी पत्र स्वयं मूर्ख होते हैं। उसे स्वयं का ज्ञान कुछ भी नहीं होता। पत्र का मुख भी नहीं है। परंतु वह अपने शरीर में लिखित ज्ञानपूर्ण बहुत से वाक्यों को यथारूप में ही पाठकों के लिए सदैव प्रदर्शित करते हैं। इस प्रकार इस पहेली का उत्तर है पत्र।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

1. अपदः = अविद्यमानः पदं यस्य स अपदः इति बहुव्रीहिसमासः।
2. दूरगामी = दूरं गच्छतिइति दूरगामी।
3. अमुखः = अविद्यमानं मुखं यस्य तत् अमुखः इति बहुव्रीहिसमासः।

सन्धि युक्त शब्द

1. अपदोदूरगामी = अपदः + दूरगामी

पाठगत प्रश्न-3.3

17. किस फल के आगे वृक्ष की भाँति पत्ते होते हैं ?
18. सम्राट् का विग्रह क्या है ?
19. अनेक सुशिरम् इसका विग्रह क्या है और क्या समास है ?
20. साँपों के द्वारा क्या आराध्य है ?
21. कौन सदा जागता रहता है ?
22. कौन स्पष्टवादिनी है ?
23. देवताओं का प्रिय स्थान क्या है ?
24. अमुख परंतु स्पष्ट वक्ता कौन है ?

पाठ सार

इस पाठ में छह समस्याएँ और बहुत-सी प्रहेलिकाएँ पढी गई हैं। सभी समस्याओं व प्रहेलिकाओं का समाधान यहाँ सम्यक्तया ही है।

ठठण्ठठण्ठं ठठठण्ठठण्ठः इस समस्या का समाधान वह ध्वनि है जो हाथ से गिरकर कलश सोपानमार्ग से कलशध्वनि उत्पन्न होती है। शतचंद्रं नभस्थलं इस समस्या का समाधान है कि बलराम के कराघात से कम्पित चाणूर ने शतचंद्रात्मक आकाश देखा। गगनं भ्रमरायते इस समस्या का समाधान है कि राजा के कीर्ति रूपी कमल में आकाश भी भ्रमरवत् रहता है। मृगात् पलायते इस समस्या का समाधान है कि सिंह मृग को पाकर भी अपनी प्रतिष्ठाभङ्ग के भय से तुच्छमृग से पलायन कर जाता है। पिपीलिका चुम्बति चंद्रमण्डलम् इस समस्या का समाधान है कि हिमालय पर्वत में शयन करते हुए शिव के सिर में विद्यमान चंद्र से स्रवित अमृत को पिपीलिका चूमती है। पुरः पत्युः कामात् श्वशुरमियमालिङ्गति सती इस समस्या का समाधान है कि क्लांत द्रौपदी पति के सामने ही वायु रूप ससुर का स्पर्श करती है।

ध्यान दें:

अनानास फल वृक्ष के अग्र भाग में होता है, उसके अग्रभाग में वृक्षवत् पत्ते होते हैं। सूर्य नित्य रथ से चलता है उसके रथ को अश्व खींचते हैं, वह प्राणदायक है, निशाचर नहीं है। वाल्मीकि के अनेक छिद्र होते हैं और वह सर्पों के लिए अति प्रिय है। नयन का आदि अक्षर नकार है तथा अन्तिम अक्षर भी नकार है। घड़ी सदैव जागते हुए प्रतिक्षण जनों को समय बताती है। सारिका रक्तवर्णा होते हुए भी श्वेतवर्ण से भी युक्त है और दूतवत जैसा सुनती है वैसा ही बोलती है। भारतवर्ष का आदि अक्षर भा है। अन्तिम शब्द रत है, और वह देवों का प्रिय स्थान है। पत्र पादहीन होने पर भी बहुत दूर चला जाता है, मुखहीन होने पर भी स्पष्ट बोलता है।

आपने क्या सीखा

- समस्या रूप काव्य का ज्ञान।
- समस्या का परिहार बोध।
- प्रहेलिकाओं से प्राप्त शिक्षाएं
- प्रहेलिका काव्य-रचना

पाठान्त प्रश्न

1. ठठंठठंठम् इस ध्वनि के कारण का वर्णन कीजिए?
2. कवि की दृष्टि से शतचन्द्र नभस्थल किसे कहा गया है?
3. गगन को कवि ने कैसे भ्रमरी सिद्ध किया है?
4. सती के ससुर-आलिङ्गन की साधुता बताइए।?
5. लेखपत्र के विरुद्ध गुणों का वर्णन कीजिए?
6. कवि की वर्णन पद्धति से नारियल का वर्णन कीजिए?
7. कवि के अनुसार लेखनी का वर्णन कीजिए?
8. पिपीलिका द्वारा किए गए चन्द्र चुम्बन को कविवचन से सिद्ध कीजिए?
9. मृग से सिंह के पलायन को सकारण निरूपित कीजिए?
10. कवि के अनुसार नौका का वर्णन कीजिए?
11. सदारिमध्यापि न वैरियुक्ता इस पहेली के उत्तर की यथा ग्रन्थानुसार विवेचना कीजिए?
12. आदौ भा शोभते नित्यम् इस पहेली का उत्तर संक्षेप में लिखिए?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

उत्तर-1

1. युवती का।
2. कामोद्वेग से।

ध्यान दें:

3. कृष्ण के द्वारा राक्षस मारा गया।
4. यश रूपी कमल में।
5. जगत् का देव जगदेव - षष्ठी तत्पुरुष समास।
6. सिंह व
7. स्वर्ण कलश का।
8. वायु का।
9. राजा का, यश।
10. महान भी लघु हो जाते हैं।

उत्तर-2

11. नौका।
12. अङ्गुली का।
13. लेखनी।
14. त्वग्वस्त्र।
15. लिखित विषय का बोध कराने के कारण।
16. पक्षियों का राजा पक्षिराज।

उत्तर-3

17. अनानास फल का।
18. सुशोभित होता है।
19. शोभनानि शिरांसि सुशिरांसि इति गतिसमासः। अनेकानि सुशिरांसि यस्य तत् अनेकसुशिरम् इति बहुव्रीहिसमासः।
20. वाल्मीकि।
21. घटिका।
22. सारिका।
23. भारत।
24. पत्र।

4

कथा साहित्य
वेताल पच्चीसी-1

ध्यान दें:

संस्कृत वाङ्मय में कथा ग्रन्थों का बड़ा स्थान है। कथा ग्रन्थों को आख्यायिका इस शब्द से भी जाना जाता है। प्रवृत्ति के भेद से आख्यान साहित्य के दो भाग होते हैं। उपदेशात्मक कथा अथवा नीति कथा, लोक कथा अथवा मनोरंजन कथा। नीति कथाओं में उपदेश की प्रवृत्ति प्रधान होती है। लोक कथाओं में मनोरंजन की प्रवृत्ति। पुनः लोक कथाओं में प्रायः पात्र रूप में मनुष्य होते हैं। जैसे वेताल पंचविंशति। नीति कथाओं में पशु पक्षी जैसे पंचतन्त्र। वेताल पंचविंशति के कर्ता शिवदास कहलाते हैं। इन कथाओं को पढ़ने से हमें बोध होता है। कथा सरित्सागर, बृहत्कथामंजरी, भोजप्रबन्ध, पंचतन्त्र, कथा मुक्तावली, कथा मंजरी, जातक माला, वेताल पंचविंशति इत्यादि कथा ग्रन्थों में अग्रगण्य हैं। इस पाठ में वेताल पंचविंशति नामक ग्रन्थ से कथा को लिया गया है। इस कथा को पढ़कर आपको मनोरंजन, कर्तव्य और अकर्तव्य का भी बोध होगा।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- संस्कृत कथा के विषय में जान पाने में;
- विशेषणों के प्रयोग प्रकारों को जान पाने में;
- विविध प्रकार के तिङन्त पदों को जान पाने में;
- सन्धि समासादि के व्यवहार को जान पाने में;
- अनेक प्रकार की नीति और उपदेशों का अपने जीवन में पालन कर पाने में;
- सबसे महत्वपूर्ण कथा को पढ़कर आनन्द प्राप्त कर पाने में;

4.1) अनंगरति का पति कौन हो?

4.1.1) कथामुख

क्षान्तिशील कोई मूर्ख भिक्षु राजा विक्रमादित्य से वेताल को उपहार में मांगने और विद्याधर समृद्धि

ध्यान दें:

को प्राप्त करने के लिए राजा विक्रमादित्य को प्रत्येक दिन एक फल देता था। वस्तुत: वह फल रत्न ही था। राजा ने इस प्रकार के दानादि से सन्तुष्ट और मुग्ध होकर भिक्षु को पूछा किसलिए इतने मूल्यवान उपहार देते हो। तब आपकी सहायता की आवश्यकता है ऐसा कहकर उस भिक्षु ने राजा विक्रमादित्य को श्मशान की ओर वेताल को लाने के लिए भेजा। विक्रमादित्य ने श्मशान जाकर वेताल को शीशम के पेड़ पर देखा। वहाँ से बिना भयभीत हुए वह उस वेताल को लेकर भिक्षु के समीप आ रहा था। तब वेताल ने कहा- राजा तुम बिना उद्देश्य के ही इस कार्य में लगे हो। तुमको मार्ग में परेशानी का अनुभव न हो वैसी आनन्द देने वाली कथा को सुनाता हूँ। कथा के बाद एक प्रश्न को पूछूँगा। यदि उत्तर ज्ञात होते हुए भी तुमने नहीं दिया तो तुम्हारी मृत्यु होगी। यदि उचित उत्तर दिया तो मैं पुन: शीशम के वृक्ष पर चला जाऊँगा। इस प्रकार राजा उसके पूछे प्रश्न का उत्तर देता है। फिर वेताल पुन: शीशम के वृक्ष पर चला जाता है। राजा पुन: उसे लाने के लिए जाता है। आते समय पुन: कथा आरम्भ। पुन: प्रश्न-उत्तर और वेताल का जाना। अन्त में राजा वेताल के द्वारा मरने से ग्रन्थ की समाप्ति।

4.1.2) पूर्वपीठिका

कन्या दूसरें के धन के समान है। अर्थात् जैसे दूसरे का न्यासरूप में रखा गया धन वैसे ही पिता के पास कन्या भी पति के न्यासरूप में होती हैं। वहाँ कन्या को देने से पिता का उसके ऊपर अधिकार नहीं रहता। इसलिए भारतीय परम्परा में कन्यादान का बड़ा स्थान है। योग्य वर को खोजकर उसे पिता अपनी कन्या को देता है। जैसे पुत्री को सुख होता है वैसे ही पिता को भी पुण्य होता है। इस कथा में उसी प्रकार का ही कन्यादान वर्णित है। यहाँ कन्या को अपनी पत्नी के रूप में प्राप्त करने के लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आए। उनमें किसे पिता कन्या को दें ऐसा जानने के लिए ही वेताल ने इस कथा को विक्रमादित्य के लिए सुनाया।

4.2 मूलपाठ

4.2.1 विभाग-1

राजा शिंशपान्तिकं गत्वा तं वेतालं स्कन्धेनादाय प्रस्थितस्तेन वेतालेन प्राग्वदभ्यधायि - राजन्, कथस्मिन् श्मशाने निशि ते एतादृक् प्रयास:। भूतसंकुलं रात्रिभीषणं चिताधूमैरिव ध्वान्तैर्निरुद्धं पितृकाननं किं नेक्षसे। तस्य भिक्षोरनुरोधत: कथमीदृशा प्रयासेन आत्मानं खेदयसि। तदिमं में प्रश्नं मार्गविनोदकं श्रृणु-

अवन्तीषु देवनिर्मिता शैवी तनुरिव उद्दामभोगभूतिविभूषिता पद्मावती भोगवती हिरण्यवतीति च कृतादिषु त्रिषु युगेषु पुरी क्रमश: आसीत्। कलौ च उज्जयिनीति पुरी अस्ति, तस्यामासीद् वीरदेवो नाम नृपति:, तस्य पद्मारतिनाम्नी महादेवी आसीत्।

व्याख्या: वह राजा विक्रमादित्य शीशम के वृक्ष के पास गया, जाकर उस वेताल को कन्धे पर लेकर चला। उस वेताल के द्वारा पहले की तरह कहा गया- महाराज, क्यों रात के समय इस श्मशान में तुम्हारा इस प्रकार का प्रयास है। क्यों तुम प्रेतों से भरे हुए, चिता धुएँ की तरह अन्धकारों से भरे हुए, रात्रि के कारण भयंकर इस श्मशान को नहीं देखते हो। उस सन्यासी के अनुरोध से क्यों इस प्रकार के प्रयास से अपने को क्लेशित करते हो। इसलिए रास्ते का मनोरंजन करने वाला मेरा प्रश्न सुनो-

अवन्ती देश में देवता से बनायी हुई उद्धत सर्प शरीर तथा विभूति से विभूषित शंकर जी के शरीर के समान उद्धत भोगविलास तथा सम्पत्ति से विभूषित क्रमश: पद्मावती सत्युग में, भोगवती त्रेतायुग में तथा हिरण्यवती द्वापर युग में नगरी थीं। कलियुग में तो उज्जयिनी नगर है। उसमें वीरदेव नाम का राजा था,

उसकी पद्मारति नाम की महारानी थी।

सरलार्थः- राजा शीशम के वृक्ष से वेताल को लेकर भिक्षु के पास जाता था। तब उस वेताल ने राजा को पूछा कि कैसे वह राजा भूतपिशाच आदि से व्याप्त श्मशान को आकर इस प्रकार का प्रयास करता है। कैसे वह भिक्षु के अनुरोध से कार्य में व्यस्त है। वहाँ से उस वेताल ने कथा को सुनाया।

पहले उज्जयिनी नाम की नगरी थी। वह नगरी भगवान महादेव के शरीर के समान भोगविलास और सम्पत्ति से विभूषित थी। उसका सतयुग में पद्मावती नाम, त्रेतायुग में भोगवती नाम, द्वापरयुग में हिरण्यवती नाम था। और कलयुग में उसका उज्जयिनी नगरी नाम है। वहाँ वीरदेव नाम का राजा था। उसकी पत्नी का नाम पद्मारति था।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

1. शिंशपान्तिकम् - शिंशपायाः अन्तिकम्, षष्ठी समास।
2. चिताधूमैः - चितायाः धूमः, तैः षष्ठी समास।
3. ईक्षसे - ईक्ष दर्शने इति आत्मनेपदी धातु लट्लकार मध्यम पुरुष एकवचन।

4.2.2 विभाग-2

एकदा राजा तया साकं मन्दाकिनीतटे पुत्रकाम्यया तपसा हरमाराधयामास, चिरंच तपश्चरन् कदाचित् परितुष्टशंकरोदिताम् आकाशवाणीं शुश्राव- 'राजन्, उत्पत्स्यते ते पुत्रः शूरः कुलोद्वहः, कन्या चौका लावण्येन जिताप्सराः।' एतां नाभसीं वाणीं श्रुत्वा स भूपतिरभीष्टसिद्धिप्रहृष्टो महिष्या समं स्वनगरीमाययौ। तस्य प्रथमं पद्मारत्यां देव्यां शूरदेवो नाम पुत्रः, तदनु च अनंगरतिर्नाम अनंगमोहिनी कन्या समजायत। क्रमेण च तस्यां वृद्धिं गतायां स राजा सदृशं वरं प्रेप्सुः पृथिवीमण्डलस्थान् सर्वान् नृपतीन् पटलिखितानानाययत्। यदा तेषु एकोऽपि तस्याः सदृशो न प्रत्यभासत, तदा स राजा वात्सल्यात् तां सुतामभाषत- ''वत्से, अहं तावत् ते सदृशं वरं न पष्यामि, तत् सर्वान् नृपान् समानाय्य स्वयंवरं कुरुष्व।'' एतत् पितृवचनमाकर्ण्य सा राजपुत्री जगाद-''तात, स्वयंवरम् अतिह्रेपणं, तदहं नेच्छामि, यो हि युवा सुरूपः केवलं पूर्णं विज्ञानं वेत्ति, तस्मै त्वया अहं देया, न्यूनाधिकेन में नास्ति प्रयोजनम्।''

व्याख्याः एक बार राजा पद्मारति के साथ मन्दाकिनी नदी के तट पर पुत्र की कामना से तपस्या के द्वारा शंकर जी की अराधना करने लगा। चिरकाल तक तपस्या करते हुए किसी समय उससे सन्तुष्ट हुए शंकर जी के द्वारा कही हुई आकाशवाणी सुनी- राजा तुम्हारे पुत्र उत्पन्न होगा जो कि वीर होगा और कुल की मर्यादा को वहन करेगा। और एक कन्या अपने लावण्य से अप्सराओं को जीतने वाली होगी। इस आकाशवाणी को सुनकर मनोरथ पूर्ण होने से प्रसन्न होकर वह राजा महारानी के साथ अपने नगर को आया। पद्मारति देवी के गर्भ से पहले शूरदेव नाम का पुत्र और पश्चात् अनंगरति नाम की कामदेव को मोहित करने वाली कन्या उत्पन्न हुई। क्रमशः उसके यौवनावस्था प्राप्त करने पर उस राजा ने उसके सदृश वर प्राप्त करने की इच्छा से पृथ्वी पर रहने वाले सभी राजाओं के चित्र मंगवाये। जब उनमें से एक भी उसके सदृश न मालूम हुआ, तब उस राजा ने स्नेह से उस पुत्री को कहा- हे पुत्री मैं तो तुम्हारे सदृश वर नहीं देखता हूँ, इसलिए सभी राजाओं को बुलाकर स्वयंवर करो। इस प्रकार पितृ वचन को सुनकर उस राजकुमारी ने कहा, पिताजी स्वयंवर तो अत्यन्त लज्जाजनक कार्य है, वह मैं नहीं चाहती हूँ। जो युवक केवल एक विज्ञान को पूर्ण जानता हो आप के द्वारा मैं उसी को दी जाऊँ। कम या अधिक से मुझे कोई प्रयोजन नहीं है।

ध्यान दें:

ध्यान दें:

सरलार्थः - वह राजा अपुत्रक था। इसलिए उसने पत्नी के साथ पुत्र प्राप्ति के लिए मन्दाकिनी नदी के तट पर शिव की अराधना को किया। उसकी तपस्या से सन्तुष्ट होकर शिव ने वर रूप में कहा कि उसके एक शूर पुत्र और एक अतिसुन्दरी कन्या होगी। फिर उसके पद्मारति से एक पुत्र और एक अति रमणीय कन्या का जन्म हुआ। उसके पुत्र का नाम शूरदेव और कन्या अनंगरति थी। उसका इस प्रकार का रूप था जिससे कामदेव भी मोहित हो जाए। उसने क्रम से यौवनावस्था को प्राप्त किया। उसे योग्य वर को देने के लिए उसने राजाओं को बुलाया। परन्तु उसके सदृश एक भी नहीं था। पिता ने उस अनंगरति को कहा कि उसके सदृश वर नहीं दिखाई दिया। इसलिए स्वयंवर करना चाहिए। तब उसने कहा की स्वयंवर से बहुत धन व्यय होगा। इसलिए वह अपेक्षित नहीं है। उसने कहा कि- जो रूप सम्पन्न पुरुष हो और पूर्ण विज्ञान को जानता हो उससे ही उसका विवाह होगा।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- परितुष्टशंकरोदिताम् - तृतीयातत्पुरुष समास।
- आराधयामास - आ + राध् धातु, लिट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।
- उत्पत्स्यते - उत + पत् धातु, लृट्लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।
- अभीष्टसिद्धिप्रहृष्टः - तृतीया, तत्पुरुष समास।
- अनंगमोहिनी - अनंग कामदेवम् अपि मोहयति या सा इति विग्रहः।
- समजायत - सम् + जन् धातु, लङ्लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।
- जगाद - गद् धातु, लिट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।
- आययौ- आ + या धातु, लिट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

4.2.3 विभाग-3

इति दुहितुर्वचः समाकर्ण्य यावत् स भूपतिस्तादृशं वरम् अन्विष्यति, तावत् तत् लोकमुखात् विदित्वा चत्वारो वीरा विज्ञानिनो भव्याः पुरुषा दक्षिणपथात् तं राजानमाययुः। ते च राज्ञा सत्कृताः एकैकशः स्वं स्वं विज्ञानं राजसमक्षं शशंसुः। तेषामेको जगाद- ''अहं तावत् शूद्रः नाम्ना पंचफुट्टिकः, एकोऽहमन्वहं पंच अग्र्याणि वसनयुग्मानि करोमि, तेषामेकं देवाय प्रयच्छामि, एकं द्विजाय, एकमात्मनः कृते परिगृह्णामि, एकंच भार्यायै (या में भवति) ददामि, पंचमंच विक्रीय आहारादिकं विदधामि। तदेवं विज्ञानिने मह्यम् अनंगरतिस्ते दुहिता दीयताम् इति। द्वितीयोऽब्रवीत्-'अहं तावत् वैष्यः भाषाज्ञो नाम सर्वेषां मृगपक्षिणां रुतं वेद्मि, तदेषा राजपुत्री मह्यं दीयताम् इति। ततस्तृतीयोऽभाषत-'अहं खड्गधरो नाम भुजवीर्यशाली क्षत्रियः, खड्गविद्याविज्ञाने अस्यां क्षितौ में प्रतिमल्लो नास्ति, हे राजन्, तदेषा तनया ते मह्यं दीयताम् इति। ततश्चतुर्थोऽब्रवीत्-'राजन्, अहं तावत् जीवदत्तो नाम विप्रः, मम चैतादृशं विज्ञानमस्ति यत्, मृतानपि जन्तून् आनीय आशु जीवतो दर्शयामि, तद्वीरचर्य्यासिद्धं माम् एषा ते तनया पतिं प्रपद्यताम् इति। एवं ब्रुवतः तान् दिव्यावेशाकृतीन् पश्यन् राजा वीरदेवः सुतया दोलारूढः इवाभवत्।'

व्याख्याः पुत्री का यह वचन सुनकर जब वह राजा उस प्रकार के वर को खोजेगा, तब तक लोगों के मुख से जानकर वीर, विज्ञानी चार सुन्दर पुरुष दक्षिण देश से उस राजा के पास आए। वे लोग राजा के द्वारा सत्कार प्राप्त कर उनमें से एक एक क्रमशः अपना-अपना विज्ञान राजा के सामने बताने लगे। उनमें से एक ने कहा- मैं तो शूद्र हूँ मेरा नाम पंचफुट्टिक है। अकेला मैं प्रतिदिन पांच जोड़े वस्त्र बनाता हूँ। उनमें से एक देवता को देता हूँ। एक ब्राह्मण को, एक अपने लिए रख लेता हूँ। और एक पत्नी के

ध्यान दें:

लिए जो मेरी पत्नी होगी उसके लिए। पाचवें को बेचकर भोजनादि का प्रबन्ध करता हूँ। अतः तुम्हारी पुत्री अनंगरति इस प्रकार के मुझ विज्ञानी को दी जाए। दूसरे ने कहा- की मैं वैश्य हूँ भाषाज्ञ मेरा नाम है। सभी मृग, पशुओं तथा पक्षियों की ध्वनि को जानता हूँ। इसलिए यह राजकुमारी मुझे दी जाए। फिर तीसरे ने कहा मैं भुजाओं का बल रखने वाला खड्गधर नाम का क्षत्रिय हूँ। खड्गविद्या के विज्ञान में इस पृथ्वी पर मेरे तुल्य योद्धा कोई नहीं है। इसलिए हे राजन् तुम्हारी कन्या मुझे दी जाए। फिर चौथे ने कहा- हे महाराज मैं तो जीवदत्त नाम का ब्राह्मण हूँ। मेरा इस प्रकार का विज्ञान है की मरे हुए भी प्राणी को ला कर शीघ्र जीवित करके दिखा दूंगा। इसलिए मुझे वीरचर्या में सिद्ध पुरुष को तुम्हारी पुत्री पति रूप में स्वीकार करें। ऐसा कहते हुए उन सुन्दर वेश तथा आकार वालों को देखता हुआ राजा वीरदेव पुत्री के साथ दोला पर चढ़े हुए मन वाला हो गया।

सरलार्थः- तब उसके वचन को सुनकर पिता उसके वर की खोज में प्रवृत्त हुआ। तब एक दिन लोगों के मुख से वचन को सुनकर चार पुरुष राजा के समीप आए। उनके मध्य में एक शूद्र था। उसका नाम पंचफट्टिक था। वह प्रतिदिन पांच वस्त्र बनाता था। उनमें से एक को देवता के लिए देता था, एक ब्राह्मण के लिए, एक अपने लिए स्वीकार करता है, एक जो उसकी पत्नी होगी उसके लिए देगा और बचे हुए से भोजनादि खरीदता है। द्वितीय वैश्य था। उसका नाम भाषाज्ञ था। वह सभी मृगादि पशुओं और पक्षियों की भाषा को जानता था। तीसरा क्षत्रिय था। उसका नाम खड्गधर था। वह उचित प्रकार से तलवार चलाना जानता था। उसके जैसा खड्गधारी पृथ्वी पर दुर्लभ था। चतुर्थ एक ब्राह्मण था। उसका नाम जीवदत्त था। वह एक विशिष्ट विद्या को जानता था। वह मरे हुए प्राणियों में फिर से प्राण डाल सकत था।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

1. शशंसुः - शंसु स्तुतौ इति धातु, लिट्लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन।
2. आययुः - आ+या प्रापणे धातु, लिट्लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।
3. वेद्मि- विद् ज्ञाने इति, धातु लट् लकार, उत्तम पुरुष, एकवचन।
4. अब्रवीत् - ब्रुञ् व्यक्तायाम् वाचि इति धातु, लङ्लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।
5. अभाषत- भाष व्यक्तायाम् वाचि इति धातु, लङलकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।
6. प्रतिमल्लः - प्रति प्रतिरूपः मल्लः बलीयान् प्रतिमल्लः तुल्यबलवान् प्रतियोद्धा।
7. वीररचर्य्यासिद्धम् - वीरचर्य्या वीराचारेण सिद्धम् सफलताम् गतम् प्राप्तैष्वर्यम् इत्यर्थः वीरचर्य्यासिद्धम्।
8. दिव्यावेशाकृतीन् - दिव्याः रमणीयाः वेशाः नेपथ्यानि वसनभूषणानि आकृतयः रूपाणि च येषां तान् दिव्यावेशाकृतीन् सुपरिच्छदान् सुरूपाणि इत्यर्थः, इति बहुव्रीहिसमास।

4.2.4 विभाग-4

इति कथामाख्याय वेतालः राजानमप्राक्षीत्- 'राजन्, ब्रुहि, एतेषां कस्मै कन्यैषा देया, यदि जानन्नपि में तत्त्वं न वदिष्यसि, तदा ते मूर्द्धा निश्चितं शतधा स्फुटिष्यति, यदि च सदुत्तरं दास्यसि, तदाहं पुनस्तव स्कन्धात् तमेव शिंशपातरुम् आश्रयिष्ये इति। एतदाकर्ण्य राजा तं वेतालं प्रत्यवादीत्-'योगेष्वर, भवान् केवलं कालक्षेपाय मां मौनं त्याजयति, अन्यथा कोऽयं गहनः प्रश्नः। तदुच्यताम्, शूद्राय कुविन्दाय कथं क्षत्रिया दीयते, वैष्याय च। यच्च तद्गतं मृगादिभाषाविज्ञानं, तत् कस्मिन् कार्ये उपयुज्यते। विप्रेण तेन स्वकर्मप्रच्युतेन ऐन्द्रजालिकेन पतितेन वीरमानिना किम्। तस्मात् क्षत्रियायैव खड्गधराय विद्याशौर्यशालिने सा देया इति।

ध्यान दें:

एतत्तस्य वचो निशम्य स वेतालो योगबलात् स्कन्धदेशात् सहसा अलक्षित: क्वापि जगाम। राजाऽपि तथैव तमनुययौ, सोत्साहघने हि वीरहृदये न जातु खेदोऽन्तरं लभते।।

व्याख्या- इस प्रकार कथा को सुनाकर, वेताल ने राजा विक्रमादित्य को पूछा-राजन् पहले के कहे शाप को स्मरण करके कहो कि इनमें से किसे कन्या दी जाए। यह सुनकर राजा ने उस वेताल को जबाव दिया। आप तो केवल समय नष्ट करने के लिए मेरा मौन त्याग कराते हैं, नहीं तो कौन-सा यह कठिन प्रश्न है। तो कहिए, एक शूद्र जुलाहे को कैसे क्षत्रिय कुमारी दी जाए, और उस वैश्य को भी। जो कि उसमें मृगादि की भाषा का ज्ञान है वह किस कार्य में प्रयोग किया जाएगा। ब्राह्मण भी अपने कर्म से गिरे हुए ऐन्द्रजालिक के कार्य को करता है उससे भी क्या प्रयोजन। इसलिए शौर्य विद्या वाले क्षत्रिय खड्गधर को ही वह कन्या दी जाए। उसके वचन को सुनकर वह वेताल योगबल से उसके कन्धे से एकाएक अलक्षित होकर कहीं चला गया। राजा ने भी उसी प्रकार उसका अनुसरण किया। क्योंकि उत्साह से भरे हुए वीरों के हृदय में कष्ट कभी भी अवसर नहीं प्राप्त करता है।

सरलार्थ:- इस प्रकार कथा को सुनाकर उस वेताल ने विक्रमादित्य को पूछा कि उनमें से कौन उस अनंगरति को प्राप्त करेगा। तब उसके प्रश्न को सुनकर उस विक्रमादित्य ने उत्तर दिया कि यह सरल प्रश्न है। क्योंकि कन्या क्षत्रिय है वह उच्च कुल में उत्पन्न है। उसे शूद्र को नहीं दे सकते। और वैश्य मृगादि भाषा को जानता था। पत्नी के पाणिग्रहण में उसके ज्ञान की कोई भी आवश्यकता नहीं है। और ब्राह्मण का जप ध्यान पूजादि का कार्य है। वह अपने कर्म को त्यागकर किसी अन्य कर्म में नियुक्त है। इसलिए वह भी उसे प्राप्त नहीं कर सकता है। इसलिए जो क्षत्रिय खड्गधर था। वह ही उसकी रक्षा में समर्थ है इस कारण उसे ही कन्या को देनी चाहिए। इससे उसका सारा जीवन सुखमय होगा। इस प्रकार उपयुक्त उत्तर को प्राप्त कर वह वेताल पुन: शीशम के वृक्ष की ओर गया। राजा भी पुन: उसे लाने के लिए गया। क्योंकि उत्साहपूर्ण वीरों के हृदय में कष्ट कभी भी नहीं होता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

1. अप्राक्षीत् - प्रच्छ धातु, लुङलकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।
2. सोत्साहघने - बहुव्रीहिसमास।
3. निशम्य - नि + शम् धातु + ल्यप् प्रत्यय।
4. जगाम - गम् धातु, लिट्लकार, प्रथम पुरुष एकवचन।

4.2.5 प्रथम कथा का तात्पर्यार्थ-

यहाँ वेताल ने विक्रमादित्य के लिए एक कथा को सुनाया। यहाँ किसी कन्या के कन्यादान का प्रसंग है। उस कन्या को प्राप्त करने के लिए चार वर्णीय व्यक्ति आए। उनमें से एक शूद्र, एक वैश्य, एक क्षत्रिय और एक ब्राह्मण था। उन्होंने अपने-अपने कार्य को राजा से कहा। फिर राजा विचलित हुआ क्योंकि वह निश्चय नहीं कर सका कि किसको कन्या दी जाए। तब वेताल ने यह प्रश्न विक्रमादित्य को कहा। उन्होंने कहा कि क्षत्रिय से अलग सभी के अनुपयुक्त कार्य में लगे हुए थे। उनमें से कौन योग्य होगा इस प्रश्न के उत्तर में राजा ने कहा जो अपने धर्म का पालन करने वाला क्षत्रिय है उसे ही कन्या को दिया जाए। तब वेताल पुन: शीशम के वृक्ष पर गया राजा भी उसे लाने के लिए गया। इस प्रकार ही कथा समाप्त।

पाठगत प्रश्न

1. श्मशान किस प्रकार का था?
2. उज्जयिनी का राजा कौन है?
3. उज्जयिनी का सतयुग में क्या नाम था?
4. त्रेता युग में उज्जयिनी का क्या नाम था?
5. हिरण्यवती नाम किस युग में प्रसिद्ध था?
6. कलियुग में पद्मावती का नाम क्या है?
7. वीरदेव की पत्नी का नाम क्या है?
8. राजा ने पुत्र की प्राप्ति के लिए किसकी आराधना की?
9. राजा के पुत्र का क्या नाम है?
10. शिव के द्वारा दिए गए वर से उत्पन्न कन्या का क्या नाम है?
11. वह किस प्रकार का वर चाहती थी?
12. शूद्र का नाम क्या है?
13. शूद्र प्रतिदिन कितने वस्त्र बनाता था?
14. वैश्य का नाम क्या है?
15. वैश्य क्या जानता था?
16. क्षत्रिय का क्या नाम था?
17. ब्राह्मण का क्या नाम था?
18. जीवदत्त की क्या विशेषता थी?
19. विक्रमादित्य के मतानुसार किसे कन्या को दिया जाए?
20. किस प्रकार के हृदय क्लेश को प्राप्त नहीं होते?
21. वह राजा..... जाकर उस.....कन्धे पर लेकर चला।
22. क्यों इस.....रात के समय तुम्हारा इस प्रकार का प्रयास है।
23. कलियुग में .....नगरी है।
24. उज्जयिनी का था.....नाम का राजा।
25. राजा..... तट पर पुत्र की कामना से तपस्या करते हुए शंकर की आराधना करने लगे।
26. प्रथम पद्मारति के .....नाम का पुत्र हुआ।
27. वीरदेव ने कन्या..... के लिए वर को खोजा था।
28. स्वयंवर .....,वह मैं नहीं चाहती हूँ।

पाठ-4

वेताल पच्चीसी-1

ध्यान दें:

ध्यान दें:

29. परितुष्टशंकरोदिताम् इसका विग्रह लिखिए।

30. मैं तो शूद्र हूँ। मेरा नाम ..... है।

31. मैं वैश्य..... नाम वाला सभी पशु पक्षियों की भाषा को जानता हूँ।

32. मैं भुजाओं का बल रखने वाला.....क्षत्रिय हूँ।

33. मैं .....नाम का ब्राह्मण हूँ।

34. यदि जानते हुए भी नहीं बोलोगे तो तुम्हारे सिर के निश्चय ही .....टुकड़े होंगे।

35. महाराज, आप तो केवल.....मेरे मौन का त्याग करवाते हैं।

36. उत्साह से भरे हुए.....कष्ट कभी भी अवसर प्राप्त नहीं करता है।

37. स्तम्भ को मिलाओ-

	स्तम्भ-1	स्तम्भ-2
1.	श्मशान	वीरहृदय
2.	उज्जयिनी सतयुग में	खड्गधर
3.	वीरदेव की पत्नी	द्वापर युग में
4.	हिरण्यवती	भूतसंकुल
5.	क्षत्रिय	पद्मावती
6.	सोत्साहघनम्	पद्मारति

4.3 त्यागी कौन?

4.3.1 पूर्व पीठिका

जहाँ धर्म वहाँ विजय। अर्थात् जहाँ धर्म है वहाँ विजय निश्चित ही है। इस कथा में वह मदन सेना अपने वचन की सत्यता के पालन के लिए अपने पति से क्षमा और अनुमति माँगती है। और चौर दुर्जन है ऐसा जानकर भी वचन के पालन के लिए पुनः उसके समीप गई। इसलिए इस कथा के अध्ययन से सत्य का पालन सदैव और हमेशा करना चाहिए ऐसा विवेक प्राप्त होता है। और अपने वचनों से बंधी सती उस मदन सेना ने अपने पति से मन की इच्छा को कह दुःख को भी स्वीकार किया। इससे उसके पिता के कुल के प्रति और अपने कुल के प्रति भी श्रद्धा दिखाई देती है। और यहाँ चौर का त्याग भी मुख्य है।

4.3.2 विभाग-1

ततश्च स राजा पुनः शिंशपामूलं गत्वा तं वेतालं तथैव स्कन्धमारोप्य सत्वरं कृतमौनः समुच्चाल। प्रयानतंच तं स्कन्धवर्ती स वेतालोऽपृच्छत- राजन्, श्रान्तोऽसि, तदिमां श्रान्तिहारिणीं कथां श्रृणु-

आसीद् वीरबाहुर्नाम सकलभूपालषिरःसमभ्यर्चितषासनः पाकशासन इवापरो नृपतिः, तस्यानंगपुरं नाम नगरवरमभवत्। तत्रार्थदत्तो नाम महाधनः सार्थवाहः प्रतिवसति स्म, तस्य धनदत्तो नाम ज्येष्ठः पुत्रः कनीयसी

च कन्या मदनसेना नाम समजायत। एकदा धम्मदत्तो नाम कस्यचिद् वणिक्पतेस्तनयः तां लावण्यरसनिर्झरां कुचकुम्भाग्रबलित्रितयरंजितां यौवनद्विरदस्येवलीलामञ्जनवापिकां वीक्ष्य सद्यः स्मरबाणौघपातापहृतचेतनः समपद्यत,- अहो! मारेण धाराऽधिरूढेन अमुना रूपेण द्योतिता मल्ली में हृदयं भेत्तुमिव निर्मिता। इत्येवं प्रासादाग्रमारूढां तां दृष्टवा चिन्तयतः चक्राह्वस्येव तस्य वासरोऽतिचक्राम। ततः सा मदनसेना चितंच तस्य धर्मदत्तस्य तद्दर्शनजनितरागोऽपराम्बुधौ निपपात। तांच सुमुखीं नक्तम् अभ्यन्तरागतां दृष्टवा तन्मुखाब्जविनिर्जितश्चन्द्रः शनैरुदगात। धर्म्मदत्तश्च तावद् गृहं गत्वा तामनुचिन्तयन् शयने चन्द्रपादाहतो लुठन् निपत्य तस्थौः, यत्नेन सखिभिर्बन्धुभिश्च पृच्छयमानो न किंचित कथयामास। निशि च कृच्छ्रात् प्राप्तनिद्रः तथैव तां पष्यन् अनुनयंश्च समुत्सुकः किमिव नाकरात्, प्राप्तश्च प्रबुद्धो गत्वा रहसि स सखीं प्रतीक्षमाणम् उद्यानवर्त्तिनीं मदनसेनां ददर्श, उपेत्य च परिष्वंगलालसः प्रेमपेशलैर्वचोभिश्चरणानतः उपच्छन्दयामास।

व्याख्या- इसके बाद वह राजा फिर शीशम की जड़ में जाकर उस वेताल को उसी प्रकार कन्धे पर उठा कर मौन धारण किए हुए शीघ्रता से चल दिया। जाते हुए कन्धे पर स्थित उस वेताल ने पूछा राजा थक गए हो, तो परिश्रम दूर करने वाली यह कहानी सुनो।

सभी राजाओं के सिर से सम्मान किए हुए शासन वाला, द्वितीय इन्द्र के समान वीरबाहु नाम का राजा था। उनका अनंगपुर नाम का श्रेष्ठ नगर था। वहाँ बहुत बड़ा अर्थदत्त नाम का वणिक् रहता था। उसका धनदत्त नाम का ज्येष्ठ पुत्र, और मदनसेना नाम की छोटी पुत्री थी। एक बार धर्मदत्त नाम वाला किसी बड़े व्यापारी का पुत्र, उस रूप सौन्दर्य से परिपूर्ण, स्तन कलश के अग्रभाग और त्रिवली से सुशोभित, युवावस्था रूपी हाथी के विलास स्नान के सरोवर के सदृश उस कन्या को देखकर तत्काल ही कामदेव के बाणसमूह के लगने से हतज्ञान हो गया। महल के छत पर चढ़ी हुई उसे देखकर- अरे! कामदेव के द्वारा इस सौन्दर्य से चमकती हुई यह मल्लिका मेरे हृदय को बींधने के लिए ही बनायी गई है। इस प्रकार सोचते हुए उसका चक्रवाक के समान दिन बीत गया।

इसके बाद वह मदनसेना और उस धर्मदत्त का मदनसेना के दर्शन से उत्पन्न दुःखरूपी अग्नि से सन्तप्त मन भी घर के अन्दर प्रवेश किया। उसके दर्शन से ही मानो राग उत्पन्न होने से सूर्य भी पश्चिम समुद्र में गिर गया। उसके मुख कमल से पराजित हुआ चन्द्रमा रात में उस सुन्दरी को घर के अन्दर गई हुई देखकर धीरे-धीरे बाहर निकल आया। और धर्मदत्त भी तब अपने घर जाकर उसी का चिन्तन करते हुए चन्द्रमा के किरण रूपी चरणों से ताड़ित होकर लुढ़कते हुए बिस्तर पर गिर कर लेट गया। यत्न पूर्वक मित्रों के द्वारा तथा बन्धुओं के द्वारा पूछे जाने पर उसने कुछ भी नहीं कहा। फिर रात में बड़ी कठिनाई से निद्रा प्राप्त करने पर उसी प्रकार उसको सपने में देखते हुए उत्सुक होकर अनुनय विनय करते हुए क्या-क्या नहीं किया। प्रातः काल जागकर उसने जाकर एकान्त में सखी की प्रतीक्षा करती हुई वाटिका में स्थित मदनसेना को देखा और उसके पास पहुँच कर आलिंगन के अभिलाषी हो कर पैरों पर गिरकर प्रेम से कोमल वचनों के द्वारा प्रार्थना की।

सरलार्थः- राजा विक्रमादित्य पहले की तरह ही शीशम के वृक्ष पर जाकर उस वेताल को लाए। उस वेताल ने राजा के परिश्रम के नाश के लिए एक कथा को कहना आरम्भ किया। प्राचीनकाल में वीरबाहु नाम से प्रसिद्ध कोई राजा था। वह सुरलोक के इन्द्र के समान सभी राजाओं का पूजनीय था। वह अनंगपुर नाम के प्रसिद्ध नगर में रहता था। उस नगर में अर्थदत्त नामक महान धनी व्यापारी रहता था। उसके पुत्र का नाम धनदत्त तथा कन्या का नाम मदनसेना था। धनदत्त का सखा धर्मदत्त ने एक दिन उस मदनसेना को देखा। एक बार देखकर ही वह उसके प्रेम में पड़ गया। उसे प्राप्त करने के लिए उसके मन में आकांक्षा प्रबल हुई। रात्रि में उसके विरह की वेदना से वह सो नहीं सका। चन्द्रकिरणें भी उसे अपने समीप वेदनीय प्रतीत हो रही थी। दूसरे दिन सुबह उद्यान में उसे देखकर उसके समीप जाकर अपनी अभिलाषा को कहा।

पाठ-4

वेताल पच्चीसी-1

ध्यान दें:

ध्यान दें:

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- सकलभूपालशिर:समभ्यर्चितशासन: -बहुव्रीहि समास।
- पाकशासन: - पाक: असुरविशेष:, तस्य शासन: निहन्तापाकशासन: इन्द्र:।
- लावण्यनिर्झराम् - षष्ठी, तत्पुरुष समास।
- कुचकुम्भाग्रबलित्रितयरंजिताम् - तृतीया, तत्पुरुष समास।
- लीलामज्जनवापिकाम् - चतुर्थी, तत्पुरुष समास।
- स्मरबाणौघपातापहृतचेतन: - बहुव्रीहि समास।
- अतिचक्राम् - अति + क्रम धातुलिट् + तिप् + णल्।

4.3.3 विभाग-2

साब्रवीत् - अहं कन्या, साम्प्रतं ते परदाराश्च, यतोऽहं पित्रा समुद्रदत्ताय वणिजे वाचा दत्ता, कतिपयैरेव दिनैर्विवाहो में भविता, तत् तूष्णीं गच्छ, मा कश्चित् पश्येत्, ततो दोषो भवेत्। इत्युक्तस्तया त्यक्तश्च स धर्मदत्तस्तां जगाद - 'सुन्दरि! यदस्तु, त्वां विना नाहं जीवेयम्।' तदाकर्ण्य सा वणिकसुता कन्याभावदूषणभयाऽऽकुला तनुवाच, - तर्हि विवाहो में तावत् सम्पद्यतां, पिता में चिरकांक्षितं कन्यादानफलं लभतां, ततोऽहं त्वां निश्चितं प्रणयेन समुपेष्यामि'। तदाकर्ण्य सोऽब्रवीत्- 'अन्यपूर्वा मम प्रिया नेष्टा, परभुक्ते कमले विमलेऽपि किं रतिर्जायते? इति तेनाभिहिता साऽवादीत् - तर्हि कृतोद्वाहैव पूर्वं त्वामुपयास्यामि, तत: पतिम् इति। एवमुक्तवतीं तां वणिकपुत्रीं प्रत्ययार्थं शपथेन सत्येन स धर्मदत्त: सम्बन्ध। ततस्तेनोज्झिता सा समुद्विग्ना स्वं मन्दिरं विवेश।

व्याख्या- उस मदनसेना ने कहा, मैं कुमारी हूँ और इस समय तुम्हारे लिए परदारा हूँ, क्योंकि पिता के द्वारा मैं समुद्रदत्त नामक वणिक् को वचन के द्वारा दे दी गई हूँ। कुछ ही दिनों में मेरा विवाह होगा। इसलिए चुपचाप चले जाओ, कोई देखे न, नहीं तो दोष होगा। उसके द्वारा यह कहे गए और परित्याग किए हुए उस धर्मदत्त ने उसे कहा- हे सुन्दरी! जो कुछ हो, मैं तुम्हारे बिना नहीं जी सकता हूँ। यह सुनकर अपने कौमार व्रत के नष्ट होने के भय से व्याकुल हो कर उस वणिकपुत्री ने उसे कहा तो मेरा विवाह हो जाए, मेरे पिता बहुत दिन से वांछित फल को प्राप्त कर लें, तब मैं निश्चित ही प्रेम से तुम्हारे पास आऊँगी। यह सुनकर वह बोला पहले अन्य किसी के द्वारा स्वीकृत प्रिया की मुझे आकांक्षा नहीं है, स्वच्छ रहने पर भी दूसरे के उपभोग किए हुए कमल में आनन्द मिलता है क्या। उसके द्वारा ऐसा कहने पर उसने कहा तो विवाह होते ही पहले तुम्हारे पास आऊँगी तब पति के पास जाऊँगी। इस प्रकार कहने वाली उस वणिकपुत्री को विश्वास के लिए शपथ के द्वारा तथा सत्य के द्वारा उस धर्मदत्त ने अच्छी तरह बाँध लिया। तब उससे मुक्त हुई उसने उद्विग्न होकर अपने भवन में प्रवेश किया।

सरलार्थ:- तब उसने कहा कि वह कन्या है उसका विवाह नहीं हुआ। और समुद्रदत्त के साथ उसका विवाह भी निश्चित है। इसलिए यह सम्भव नहीं है। तब उसने कहा कि यदि उसे प्राप्त नहीं करता है तो वह जीवित नहीं रहेगा। तब उसका चरित्र दूषित होगा इससे व्याकुल होकर उसने कहा कि विवाह के बाद वह उसके समीप आयेगी। तब वह बोला कि किसी के भी द्वारा पूर्व स्वीकृत प्रिया को वह स्वीकार नहीं करेगा। फिर वह अन्य वचन देती है कि विवाह के बाद सबसे पहले धर्मदत्त के समीप आयेगी, फिर समुद्रदत्त के पास जाएगी।

ध्यान दें:

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- अन्यपूर्वा -बहुव्रीहिसमास।
- कृतोद्वाह - कृतः सम्पादितः उद्वाहः परिणयः यस्याः सा कृतोद्वाहा सम्पन्नविवाहव्यापारा।

4.3.4) विभाग-3

अथ प्राप्ते लग्नदिवसे निर्वृत्तोद्वाहमंगला सा गत्वा पतिगृहं, नीत्वा च उत्सवेन वासरं, निशि पत्या समं शयनीयगृहमध्यास्त, तत्र शय्यानिषण्णाऽपि असम्मुखी समुद्रदत्तस्य तस्य पत्युः परिष्वंगं न प्रत्यपद्यत। तेनानुनीयमानाऽपि सा यदा उदश्रुः बभूव, तदा स नाहमस्या अभिमतोऽस्मीति हृदाऽकरोत्, अवादींच-सुन्दरी! यदि तेऽहं नाभिमतः, तत्ते योऽभिमतः, तं सेवितुं गच्छ'। तदाकर्ण्य सा नतमुखी शनैरवादीत् - नाथ! त्वं मे प्राणाधिकः प्रेयान्, किन्तु मे विज्ञप्तिमेकां श्रृणु, सहर्षं मे अभयं प्रयच्छ, शपथंच कुरुष्व, आर्य्यपुत्र! अवक्तव्यमपि ते वदामि'। एवमुक्तवती सा 'तथा' इति कृच्छ्रात् प्रतिपद्यमानं तं सविषादं सलज्जं सभयंचावादीत्- नाथ! एकदा एकाकिनीं गृहोद्याने मां दृष्ट्वा धर्मदत्तो नाम मम भ्रातुः सखा युवा स्मराऽऽतुरः मामरुणत्। अहं परीवादं पितुः कन्यादानफलंच रक्षन्ती हठप्रवृत्तस्य तस्य वाचमयच्छं यत् - पूर्वं विवाहिता त्वामुपेष्यामि, ततः पतिम् इति। तत् प्रभो! मे सत्यं प्रतिपालय, अनुमन्यस्व मां तदन्तिकगमनाय, तन्निकटं गत्वा क्षणेनागमिष्यामि, न हि आबाल्यसेवितं सत्यमतिक्रमितुं शक्नोमि'। इति तस्याः वचोवज्रपातेन सहसा हतः समुद्रदत्तः सत्येन बद्धः क्षणमचिन्तयत्- अहो धिक्, इयमन्यरक्ता, एतया ध्रुवमेव गन्तव्यं, तत् कथं सत्यं हन्मि। यातु इयं, कोऽस्याः परिग्रहः। इत्यालोच्य तां यथेष्टगमनाय अनुमेने। सापि सहसा समुत्थाय तस्माद् वेश्मनो निरगात्।

व्याख्या- इसके बाद विवाह के लग्न के दिन मिलने पर और वैवाहिक मंगल कार्य हो जाने पर वह उत्सव के द्वारा दिन बिता कर रात्रि में पति के घर में जा कर पति के साथ शयन घर में चली गई। वहाँ शय्या पर रहते हुए भी विमुख होकर उसने अपने पति का आलिंगन नहीं किया। उसके द्वारा अनुनय किए जाने पर जब वह आंसू गिराने लगी तब उसने मन में सोचा मैं इसके मनोनुकूल नहीं हूँ। उसने कहा हे सुन्दरी यदि मैं तुम्हारे मनोनुकूल नहीं तो जो मनोनुकूल है उसके समीप चले जाओ। यह सुनकर सिर झुकाए हुए उसने धीरे से कहा हे नाथ तुम मेरे प्राणों से प्रिय हो, किन्तु मेरी एक प्रार्थना सुनो और प्रसन्नता के साथ मुझे अभय दान दो, और शपथ करो तब तुम्हे कहूंगी। उसने कहा कहो तब उसने लज्जा, विषाद तथा भय के साथ कहा नाथ, एक बार घर के बगीचे में मुझे देखकर धर्मदत्त नाम के मेरे भाई के मित्र ने काम पीड़ित होकर मुझे रोका। अपने अपवाद को तथा पिता के कन्यादान के फल को बचाती हुई मैंने उसको वचन दे दिया कि विवाह होने पर पहले तुम्हारे पास आऊँगी तब पति के पास जाऊँगी। तो हे प्रभु मेरे सत्य की रक्षा करो, इसके लिए अनुमति दो, उसके पास जाकर कुछ क्षण में वापिस आ जाऊँगी। बचपन से जिस सत्य की सेवा कर रहीं हूँ उसका उल्लंघन नहीं कर सकती। उसके वचन रूपी वज्रघात से आहत हो सत्य से बंधे हुए समुद्रदत्त ने क्षण भर सोचा, अरे धिक्कार है यह अन्य पर अनुरक्त है, यह तो अवश्य ही जाएगी। तो क्यों सत्य का उल्लंघन करूँ। यह जाए, इसके ग्रहण का क्या प्रयोजन हैं। ऐसी विवेचना करके उसे अपनी इच्छानुसार जाने की अनुमति दे दी। वह भी एकाएक उठकर उस घर से बाहर निकल गयी।

सरलार्थः- विवाह के बाद उसी रात्रि पति के पास जाकर उसने रोना आरम्भ किया। जब समुद्रदत्त ने कारण पूछा तब उसने अपने विवाह से पूर्व वृतान्त को उससे कहा। समुद्रदत्त ने देखा कि उसकी अन्य में प्रीति है। मेरे में नहीं। इसलिए इसका अवरोध नहीं करता। इस कारण उसे शीघ्र जाने की अनुमति दे दी। वह भी अनुमति को प्राप्त कर धनदत्त के समीप जाने के लिए घर से निकल गयी।

ध्यान दें:

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- लग्नदिवसे - तृतीया, तत्पुरुष समास।
- उदश्रुः - बहुव्रीहि समास।
- हठप्रवृत्तस्य - सप्तमी, तत्पुरुष समास।
- वचोवज्रपातेन - षष्ठी, तत्पुरुष समास।
- अन्यारक्ता - सप्तमी, तत्पुरुष समास।

4.3.5) विभाग-4

अथ सा यन्ती मदनसेना निशि मार्गे एकाकिनी केनापि चौरेण प्रधाव्य वसनांचलाद् रुरुधे, ऊचे च बिभ्यती सा,- का त्वं सुभ्रु। क्क यासि इति। साऽवादीत् - मुंच मां किं तवानेन प्रसंगेन कार्यमस्ति मे। ततश्चौरोऽब्रवीत् - सुन्दरि, चौरात् मत्तः कथं त्वं मुच्यसे। तदाकर्ण्य सावदत्गृहाण मे आभरणानि। ततश्चौरः अभ्यधाम् - शोभने, किमेभिरुत्पलैः। चन्द्रकान्तानना जगदाभरणभूतां भवतीं नैवाहं त्यजामि। इति तेनोक्ता विवशा सा वणिङ्नन्दिनी निजवृत्तान्तमाख्याय तमेवं प्रार्थयामास - भद्र, क्षणम् अपेक्षस्व, यावत् सत्यमनुपालयामि। एतदाकर्ण्य चौरस्तां सत्यसन्धां मत्वा मुमोच, तस्थौ च तत्र तदागमं प्रतीक्षमाणः। सापि तस्य धर्मदत्तस्य वणिजोऽन्तिकमाजगाम। स च धर्मदत्तस्ताम् अभीष्टां प्राप्तां दृष्टवा यथावृत्तं पृष्ट्वा विचिन्त्य च क्षणमब्रवीत्- सुन्दरि, सत्येनते पुष्टोऽस्मि, त्वया परस्त्रिया मे नास्ति प्रयोजनम्। यावत् त्वां कश्चिन्नेक्षते, तावत् यथागतं गम्यताम् इति तेन त्यक्ता सा तथेति तद्गेहात् प्रत्यागमत्। अथ पथि चौरस्य प्रतिपालयतो निकटं प्राप्य-ब्रूहि, कस्ते वृत्तान्तस्तत्र गतायाः। इति पृच्छते तस्मै सा तेन वणिजा यथोक्तं तत् सर्वमाख्यातवती। ततः चौरस्तामवादीत् - यद्येवं, तत् मयापि सत्यतुष्टेन विमुक्तासि, साम्प्रतं साभरणा गृहं व्रज इति। एवं तेनापि सन्त्यक्ता रक्षिता अनृणा अलुप्तशीलमुदिता पत्युरन्तिकमाययौ। तत्र गुप्तं प्रविष्टा प्रहृष्टैवागता पृष्टा तस्मै पत्ये तत् सर्वं यथावद् अवर्णयत्। सोऽपि अम्लानमुखकान्तिमसम्भोगलक्षणम् अनष्टचारित्रां सत्यपालनगताम् अदुष्टमानसां सम्भाव्य अभिनन्द्य च तया सह यथासुखं तस्थौ।

व्याख्या- इसके बाद रात के समय रास्ते में अकेली जाती हुई वह मदनसेना किसी चोर के द्वारा दौड़ कर वस्त्र के आंचल को पकड़कर रोक ली गई। डराते हुए उसने कहा तुम कौन हो, कहाँ जा रही हो। वह बोली मुझे छोड़ दो, इससे तुम्हारा क्या प्रयोजन, मुझे कार्य है। तब चोर ने कहा, सुन्दरी, मुझ चोर से तुम कैसे छोड़ी जाओगी। यह सुनकर उसने कहा मेरे सभी आभूषण ले लो। तब चोर ने कहा हे शोभने इन पत्थरों से क्या लाभ। चन्द्रमा के समान मुख वाली, संसार का आभूषण बनी हुई तुम को मैं नहीं छोड़ सकता। उसके द्वारा कही हुई वह वणिक पुत्री विवश होकर अपना समाचार कह कर उससे इस प्रकार प्रार्थना करने लगी, क्षण भर प्रतीक्षा करो, जब तक मैं सत्य का पालन करती हूँ। यहीं पर रहते हुए तुम्हारे पास शीघ्र ही आऊँगी, मैं इस वचन का उल्लंघन नहीं करूँगी। यह सुनकर चोर ने उसे सत्य प्रतिज्ञा वाली मानकर छोड़ दिया और उसके आगमन की प्रतीक्षा करने लगा। वह भी उस धर्मदत्त वणिक के पास आ गयी। उस धर्मदत्त ने उस प्रियतमा को आई हुई देखकर सब वृत्तान्त पूछ कर कुछ देर सोच कर कहा- हे सुन्दरी तुम्हारे सत्य से मैं सन्तुष्ट हूँ, तुझ परस्त्री से मेरा कोई प्रयोजन नहीं है, जब तक तुम्हें कोई नहीं देखता है, तब तक जैसे आयी हो उसी प्रकार चली जाओ। इस प्रकार उसके द्वारा त्याग की हुई वह वैसा ही करूंगी, यह कहकर उसके घर से वापिस लौट गयी।

इसके बाद रास्ते में प्रतीक्षा करने वाले चोर के पास पहुंच कर कहो, वहाँ जाने पर क्या वृत्तान्त हुआ यह पूछने वाले उस चोर को उसने बनिए के द्वारा जो कहा गया वह सब कह दिया। तब चोर ने

ध्यान दें:

कहा कि यदि ऐसा है तो सत्य से सन्तुष्ट होने वाले मेरे द्वारा भी तुम छोड़ दी गई हो, इस समय आभरण युक्त तुम अपने घर जाओ। इस प्रकार उसके द्वारा भी सन्त्यक्त और सुरक्षित होकर सत्य से उऋण तथा चरित्र नष्ट न होने से प्रसन्न होकर वह मदनसेना अपने पति के पास आ गयी। वहाँ गुप्त रूप से प्रवेश करके प्रसन्न होती हुई आयी और पूछी गयी तब उसने पति को सारा वृत्तान्त यथावत कह दिया। वह समुद्रदत्त भी उस मदनसेना को प्रसन्न मुख कान्तिवाली, बिना सम्भोग के चिह्नवाली, सुरक्षित चरित्र वाली, सत्यपालन के लिए गई हुई, पवित्र मन वाली होने की सम्भावना करके इस विषय की प्रशंसा करके उसके साथ सुख पूर्वक रहने लगा।

सरलार्थः- जब वह धर्मदत्त के पास आ रही थी तब रास्ते में एक चोर मिला। वह भी उसे जाने की अनुमति नहीं दे रहा था। तब धर्मदत्त के पास से लौटते हुए तुम्हारे पास आऊँगी ऐसा कहकर वह वहाँ से निकलकर धर्मदत्त के पास गयी। इतने दिन बीत जाने पर धर्मदत्त की कामपीड़ा शान्त हो गयी। और वह भी दूसरे की पत्नी है। इसलिए उसने उसे अपने पति के पास जाने के लिए कहा। तब उसके पास से आते समय चोर के पास गयी। चोर ने उसकी सत्य निष्ठा को देखकर प्रसन्न होकर उसे अपने घर जाने के लिए कहा। फिर जब वह पति के पास गयी तब समुद्रदत्त ने देखा कि उसके शरीर पर कहीं भी सम्भोग के चिह्न नहीं है। और उसने सत्य का पालन किया किन्तु अपने पिता की जैसे अवमानना न हो वैसे किया। इससे मदनसेना के ऊपर समुद्रदत्त की प्रीति बढ़ गयी। उसने उसे आदरपूर्वक स्वीकार किया।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- सुभ्रु - सु सुष्ठु शोभने भ्रवौ यस्याः सा सुभ्रूः।
- चन्द्रकान्ताननाम् - बहुव्रीहिसमास।
- जगदाभरणभूताम् - षष्ठी, तत्पुरुष समास।
- सत्यसन्धाम् - बहुव्रीहि समास।
- अनृणा- बहुव्रीहि समास।
- अलुप्तशीलमुदिता - कर्मधारय समास।
- अम्लानमुखकान्तिम् - बहुव्रीहि समास।
- असम्भोगलक्षणाम् - बहुव्रीहि समास।
- अनष्टचारित्राम् - बहुव्रीहिसमास।
- सत्यपालनगताम् - चतुर्थी तत्पुरुष समास।
- अदुष्टमानसाम् - बहुव्रीहिसमास।

4.3.6) विभाग-5

इति कथामुक्तवा स वेतालस्तं भूपं पृच्छति स्म- राजन्, पूर्वोक्तं शापमनुस्मृत्य ब्रूहि, एषां चौरवणिजां मध्ये कः त्यागी। इति। तदाकर्ण्य स राजा मौनं विहाय तं वेतालमाह स्म- एषां चोरस्त्यागी, न पुनरुभौ तौ वणिजौ। यो हि पतिस्ताम् अत्यज्यां विवाह्यापि अजहात्, स कुलजः सन् अन्यासक्तां भार्यां जानन् कथं वहति। योऽपि अपरः, स भयात्। अथवा कालेन जीर्णासक्तिवेगात् तामत्याक्षीत्। चोरस्तु गूढचारी निरपेक्षः पापी, प्राप्तं साभरणं स्त्रीरत्नं यदमुंचत्, तेन स एव त्यागी इति। एतदाकर्ण्यैव स वेतालः पूर्ववत् स्वं पदमगात्,

ध्यान दें:

राजापि पुनस्तमानेतुं सयत्नोऽभवत्।

व्याख्या- यह कथा कहकर उस वेताल ने राजा से पूछा, राजा पहले कहे गए शाप का स्मरण करके कहो कि इन चोर तथा दोनों बनियों में से कौन अधिक त्यागी है। यह सुनकर उस राजा ने मौन त्याग कर वेताल से कहा- चोर ही त्यागी है वे दोनों वणिक् नहीं। जो पति था उसने विवाह करके भी न त्यागने योग्य उस पत्नी को दूसरे के पास जाने के लिए छोड़ दिया। वह अच्छे कुल में उत्पन्न होकर दूसरे पर आसक्त पत्नी को जानते हुए भी कैसे ग्रहण करें। जो दूसरा था उसने भय से अथवा कुछ समय बीत जाने के कारण आसक्ति के वेग के क्षीण हो जाने से उसे छोड़ दिया। चोर तो गुप्त रूप से विचरण करने वाला, किसी की अपेक्षा नहीं रखने वाला पापी था, उसने जो मिले हुए आभरण सहित स्त्री रत्न को छोड़ दिया, इससे वही सबसे बड़ा त्यागी था। यह सुनते ही वेताल पहले की तरह अपने स्थान शीशम के वृक्ष पर चला गया। राजा भी फिर उसको लाने के लिए प्रयत्न करने चला गया।

सरलार्थः- इस प्रकार कथा को सुनाकर वेताल ने पूछा कि चोर, समुद्रदत्त, धर्मदत्त के बीच कौन त्यागी है। तब विक्रमादित्य ने उत्तर दिया कि चोर ही त्यागी है। क्योंकि समुद्रदत्त ने उसे दूसरे पुरुष पर अनुरक्त है जानते हुए भी जाने की अनुमति दे दी। धर्मदत्त ने दूसरे की पत्नी का उपभोग पाप होगा इस डर से उसे अपने पति के पास जाने के लिए कहा। चोर की वह पत्नी भी नहीं थी, न ही उसके मन में पाप का डर था। वह आभरण से युक्त, रूप यौवन से सम्पन्न सुन्दरी मदनसेना को प्राप्त करके भी उसे अपने घर जाने के लिए कहा। इसलिए वह ही त्यागी है। फिर वेताल विक्रमादित्य से उचित उत्तर को प्राप्त करके पुनः शीशम के वृक्ष पर चला गया।

4.3.7) द्वितीय कथा का तात्पर्य

यहाँ वेताल ने विक्रमादित्य को कथा कहकर सत्य मार्ग के अवलम्बन की महत्ता को वर्णित किया है। उसने कथा में कहा की अनंगपुर नामक नगर में अर्थदत्त नामक व्यापारी रहता था। उसकी पुत्री थी मदनसेना, पुत्र धनदत्त था। एक बार वह उद्यान में थी। तब उसके भाई के मित्र धर्मदत्त ने उसे देखा। उसे प्राप्त करने के लिए वह इच्छित हुआ। तब उसने कहा कि समुद्रदत्त के साथ उसका विवाह होना है। उसने उसके वाक्य को कैसे भी नहीं सुना। तब वह उसे वचन देती है कि विवाह के बाद पहले उसके पास आयेगी तब पति के पास जाएगी। इस प्रकार सुन सन्तुष्ट होकर वह घर को गया। फिर जब मदनसेना का विवाह हुआ तब विवाह के बाद वह पति की अनुमति स्वीकार कर धर्मदत्त के पास आती है तब रास्ते में एक चोर उसे पकड़ लेता है। तब उसे भी वह वचन देती है कि आते हुए उसके पास आयेगी और उसके वचन को सुनेगी। फिर जब वह धर्मदत्त के पास गयी तब उसने सोचा कि यह पर स्त्री है। इसलिए घर जाने के लिए उसे कहा। फिर जब चोर के पास आयी तब उसके सत्य पालन को देखकर उसने भी उसे घर जाने के लिए कहा। फिर उसके पति ने सारे वृत्तान्त को सुनकर और उसके सतीत्व को जानकर आनन्दित होकर उसे प्रसन्नता से स्वीकार किया। इस कथा को सुनाकर वेताल ने राजा को पूछा कि उनमें से त्यागी कौन है। तब राजा ने कहा कि धर्मदत्त ने पाप के भय से उसे घर जाने के लिए कहा। उसके पति ने अन्य में आसक्त है ऐसा मानकर उसे जाने के लिए अनुमति दी। परन्तु चोर ने उसकी सत्यता को देखकर उसे घर भेजा। इसलिए वह चोर ही स्वाभाविक त्यागी है। सम्यक् उत्तर को प्राप्त करके वेताल पुनः श्मशान की ओर चला गया।

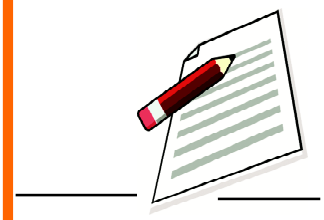

ध्यान दें:

पाठगत प्रश्न

1. वेताल कहाँ रहता था?
2. अनंगपुर के राजा का क्या नाम है?
3. वणिक का नाम क्या था?
4. वणिक के पुत्र का नाम क्या है?
5. धनदत्त की बहन का क्या नाम है?
6. कौन मदनसेना के प्रेम में पड़ गया?
7. मदनसेना के पति का क्या नाम है?
8. धर्मदत्त ने कहाँ से मदनसेना को अपने पति के पास जाने के लिए कहा?
9. क्या देखकर चोर ने उसे छोड़ दिया?
10. उनमें से कौन त्यागी है राजा के मत में?
11. स्तम्भ-1 को स्तम्भ-2 से मिलाओ-

स्तम्भ-1	**स्तम्भ-2**
अनंगपुरस्य नृप	धनदत्तः
वणिज पुत्रः	अनंगपुरम्
धनदत्तस्य भगिनी	धर्मदत्तः
धनदत्तस्य सखा	वीरबाहुः
त्यागी	मदनसेना
मदनसेनायाः गृहम्	चोरः

12. सभी राजाओं के सिर से सम्मान किए हुए शासन वाला, ... के समान वीरबाहु नाम का राजा था।
13. अर्थदत्त .....रहता था?
14. अर्थदत्त का .....नाम का ज्येष्ठ पुत्र था
15. राजन् थक गए हो तो.....कहानी सुनो
16. .....नाम का सभी राजाओं द्वारा सम्मानित इन्द्र के समान राजा था।
17. अनंगपुर नगर में .....नाम का महाधनी बनिया रहता था।
18. उसके धनदत्त नाम का ज्येष्ठ पुत्र और छोटी कन्या ..... उत्पन्न हुए।
19. मैं कुमारी हूँ और इस समय तुम्हारे लिए परदारा हूँ, क्योंकि मैं पिता के द्वारा .....नामक वणिक को वचन के द्वारा दे दी गई हूँ।

पाठ-4

वेताल पच्चीसी-1

ध्यान दें:

20. मेरे पिता बहुत दिनों से आकांक्षित.....प्राप्त कर लें।

21. दूसरे के उपभोग किए गए कमल में..... मिलता है क्या।

22. सुन्दरी, मुझ.....से तुम कैसे छोड़ी जाओगी।

23. मिले हुए आभरण सहित..... को छोड़ दिया, इससे वह ही त्यागी है।

पाठ सार

इस पाठ में वेताल पंचविंशति इस ग्रन्थ से दो कथाओं को लिया गया है। उन कथाओं को पढ़ने से साहित्य गुणों का परिचय होता है। और इसमें कन्यादान के विषय में, सत्य की रक्षा के विषय में और योग्यवर कौन है इस विषय का वर्णन विहित है। प्रथम कथा में अनंगरति को प्राप्त करने के लिए चार व्यक्ति आए- एक ब्राह्मण, एक क्षत्रिय, एक वैश्य, और एक शूद्र। उनमें से कौन उसे प्राप्त करेगा राजा से पूछा। तब राजा ने कहा कि क्षत्रिय ही उसे प्राप्त कर सकता है। यहाँ कन्यादान को किसके लिए किया जाए इस विषय में चर्चा विहित है।

द्वितीय कथा में मदनसेना ने धर्मदत्त को वचन दिया। इसलिए वचन की सत्यता के पालन के लिए अपने पति को भी क्षण भर रोक कर वचन पालन के लिए गयी। रास्ते में चोर मिल गया। उसे भी वचन दे दिया। धर्मदत्त और चोर ने उसकी सत्यता रक्षण को देखकर उसे घर को जाने के लिए कहा। पति ने भी उसके सतीत्व सत्यता रक्षण को देखकर उसे आनन्द से स्वीकार किया। यहाँ किसी को भी वचन दें तो कैसे भी उसकी रक्षा करनी चाहिए यह उपदेश प्राप्त होता है।

आपने क्या सीखा

1. उत्साह से भरे हुए वीरों के हृदय में कष्ट कभी भी अवसर प्राप्त नहीं करता है।

2. बचपन से सेवित सत्य का उल्लंघन नहीं कर सकते हैं।

योग्यता विस्तार

- सन्दर्भ ग्रन्थ का परिचय

विद्या चर्चा करने से बढ़ती है। इसलिए विद्या का जब तक अध्ययन करते हैं, तब तक वह विद्या सुदृढ़ होती है। इस पाठ में यदि पाठक को पढ़ने की अधिक इच्छा है तो- पण्डित दामोदर झा महोदय की व्याख्या सहित चौखम्बा विद्याभवन से प्रकाशित वेताल पंचविंशति ग्रन्थ को पढ़ें। उस ग्रन्थ में पच्चीस कथा वर्णित है। और उस ग्रन्थ में हिन्दी भाषा में इन कथाओं की व्याख्या भी मिलती हैं।

भाव विस्तार

1. इस पाठ में विक्रमादित्य की धीरता के विषय में ज्ञात होता है। सौ बार कार्य में सफलता न भी हो तो भी फिर एक बार प्रयत्न करना चाहिए, उस कार्य को नहीं छोड़ना चाहिए- यह बोध होता है।

2. इन कथा को नाटक के रूप में मंचादि पर मंचन कर सकते हैं। उससे भाषा का विस्तार भी होगा, सभी को ज्ञान भी होगा।

ध्यान दें:

3. एक पत्रिका मिलती है उसका नाम है चन्दा मामा। उस पत्रिका की प्रत्येक संख्या में वेताल पच्चीसी की कथा प्रकाशित करते हैं। वहाँ उसके जैसी कथा भी मिलती हैं। उससे छात्र अधिक कथा ग्रन्थों को पढ़ सकते हैं।
4. वेताल पंचविंशति की अनेक कथा युट्युब पर पिक्चर के रूप में अथवा नाटक के रूप में मिलती हैं। उसे भी छात्र देख सकते हैं।
5. अनेक दूरदर्शन चलाने वाली संस्था धारावाहिक के रूप में प्रत्येक रविवार को वेताल पंचविंशति की कथा दिखाते हैं। उसे भी सभी देख सकते हैं।
6. यहाँ जो कथा दी गई है उनमें कौन नायक है। और किस प्रकार के गुणों का प्रकाशक है। उसके गुण को यदि हम स्वीकार करेंगे, जैसा नायक व्यवहार करता है वैसा अनुसरण करेंगे तो हमें अवश्य ही लाभ होगा।

भाषा विस्तार

1. यहाँ बहुत से अल्पसमास युक्त शब्द हैं। उनकी तालिका बनानी चाहिए। उस तालिका को पढ़ने से नवीन शब्दों का ज्ञान समास बोध सरलता से होता है।
2. नए सुबन्त शब्दों के रूप को जानने में योग्यता विस्तार होगा।
3. नए तिङन्त शब्दों के लट्लकार में, लङ्लकार में, लृट्लकार में, विधिलिङ्लकार में, लुट्लकार में, और लुङ्लकार में रूप पत्र पर लिखकर अभ्यास करना आवश्यक है।
4. जो अव्यय शब्द दिखाई दे उनकी भी तालिका को प्रस्तुत करना चाहिए। स्वयं जब कोई भी उत्तर लिखें तब इनका प्रयोग करना चाहिए।

पाठान्त प्रश्न

1. राजा वीरदेव के सन्तान प्राप्ति वृत्तान्त को और उनके नाम लिखो?
2. चारों विज्ञानी के परिचय को दो?
3. विक्रमादित्य ने कैसे कहा कि खड्गधारी को कन्या दो, युक्ति सहित वर्णित कीजिए?
4. कैसे मदनसेना धर्मदत्त को वचन देने के लिए बाध्य हुई सवृत्तान्त वर्णित कीजिए?
5. उसके गमन वृत्तान्त को वर्णित कीजिए?
6. चोर ने क्या सोचकर और कहकर उसे अपने घर जाने के लिए कहा?
7. विक्रमादित्य के मत में चोर कैसे त्यागी है, वर्णित कीजिए?
8. सत्यपालन करते हुए मदनसेना के सतीत्व की कैसे रक्षा हुई, वर्णन कीजिए?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

उत्तर-1

1. भूत प्रेतों से भरे हुए।

पाठ-4

वेताल पच्चीसी-1

ध्यान दें:

2. वीरदेव
3. पद्मावती
4. भोगवती
5. द्वापर युग में
6. उज्जयिनी
7. पद्मारति
8. शिव के
9. शूरदेव
10. अनंगरति
11. सुन्दर और जो युवक पूर्ण विज्ञान को जानता हो उस जैसा।
12. पंचफुट्टिक
13. पांच
14. भाषाज्ञ
15. मृगादि पशुओं और पक्षियों
16. खड्गधर
17. जीवदत्त
18. वह मृत प्राणी को जीवित करता था
19. खड्गधारी क्षत्रिय को
20. उत्साह से भरे वीर हृदय को
21. शीशम के वृक्ष पर, वेताल को
22. श्मशान में
23. उज्जयिनी
24. वीरदेव
25. मन्दाकिनी को
26. शूरदेव
27. अनंगरति के
28. अत्यन्त लज्जा जनक
29. परितुष्टश्चासौ शंकरश्चेति परितुष्टशंकरः इति। कर्मधारय समास।
30. पंचफुट्टिक
31. भाषाज्ञ

32. खड्गधर

33. जीवदत्त

34. सौ बार

35. समय बर्बाद करने के लिए

36. वीर के हृदय में

37. स्तम्भ मेल

1. भूत से भरे हुए
2. पद्मावती
3. पद्मारति
4. द्वापर युग में
5. खड्गधर
6. वीर हृदय को

उत्तर-2

1. शीशम के वृक्ष पर
2. वीरबाहु
3. अर्थदत्त
4. धनदत्त
5. मदनसेना
6. धनदत्त का सखा धर्मदत्त
7. समुद्रदत्त
8. परस्त्री भोग के पाप को स्मरण करके।
9. सत्यता
10. चोर

11. स्तम्भमेलन

1. वीरबाहु
2. धनदत्त
3. मदनसेना
4. धर्मदत्त
5. चोर
6. अनंगपुर

ध्यान दें:

पाठ-4

वेताल पच्चीसी-1

ध्यान दें:

12. पाकशासन
13. अनंगपुरी में
14. धनदत्त
15. परिश्रम को दूर करने हेतु
16. वीरबाहु
17. अर्थदत्त
18. मदनसेना
19. समुद्रदत्त के लिए
20. कन्यादान के फल को
21. आनन्द
22. चोर से
23. स्त्री रत्न को

5

वेताल पच्चीसी-2

ध्यान दें:

संस्कृत वाङ्मय में कथा ग्रन्थों का बड़ा स्थान है। कथा ग्रन्थों को आख्यायिका इस शब्द से भी कहते हैं। प्रवृत्ति के भेद से आख्यान साहित्य के दो भाग होते हैं। उपदेशात्मक कथा अथवा नीति कथा, लोक कथा अथवा मनोरंजन कथा। नीति कथाओं में उपदेश की प्रवृत्ति प्रधान होती है। लोक कथाओं में मनोरंजन की प्रवृत्ति। पुनः लोक कथाओं में प्रायः पात्र रूप में मनुष्य होते हैं। जैसे वेताल पंचविंशति। नीति कथाओं में पशु पक्षी जैसे पंचतन्त्र। वेताल पंचविंशति के कर्ता शिवदास कहलाते हैं। इन कथाओं को पढ़ने से हमें बोध होता है। कथा सरित्सागर, बृहत्कथामंजरी, भोजप्रबन्ध, पंचतन्त्र, कथा मुक्तावली, कथा मंजरी, जातक माला वेताल पंचविंशति इत्यादि कथा ग्रन्थों में अग्रगण्य है। इस पाठ में वेताल पंचविंशति नामक ग्रन्थ से कथा को लिया गया है। उन कथा को पढ़कर आपको भी मनोरंजन और कर्तव्य और अकर्तव्य का भी बोध होगा।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- संस्कृत कथा के विषय में जान पाने में;
- विशेषणों के प्रयोग प्रकारों को जान पाने में;
- विविध प्रकार के तिङन्त पदों को जान पाने में;
- सन्धि समासादि के व्यवहार को जान पाने में;
- अनेक प्रकार की नीति और उपदेशों का अपने जीवन में पालन कर पाने में;
- सबसे महत्वपूर्ण कथा को पढ़कर आनन्द प्राप्त कर पाने में;

5.1) पति कौन हो?

5.1.1) पूर्वपीठिका

पाठ-5

वेताल पच्चीसी-2

ध्यान दें:

युवक केवल सुलक्षणों से युक्त नारी को ही अपनी पत्नी के रूप में प्राप्त करना चाहते हैं। सभी चाहते हैं कि मेरी पत्नी इस प्रकार गुणों से युक्त, मनोहर और सुन्दर हो। लेकिन केवल सुन्दर पत्नी को प्राप्त करे तो भी सभी प्राप्त न हो। प्रस्तुत कथा में हम देखते हैं कि चार युवक विवाह के लिए आए। उस युवती के मरने से भी उन युवकों में बहुत प्रेम था। किन्तु उनमें से कौन पति होगा इस प्रकार का वेताल के द्वारा पूछे प्रश्न का उत्तर भी राजा विक्रमादित्य बिना प्रयास से देते हैं।

5.1.2) विभाग-1

अथ स राजा त्रिविक्रमसेनः पुनस्तं वेतालम् आनेतुं शिंशपातरुमूलम् अगमत्। यावत्तत्र प्राप्तः समन्तात् वीक्षते स्म तावत् तं वेतालं भूमौ कूजन्तं ददर्श। ततश्च तस्मिन् नृपे तं मृतदेहस्थं वेतालं स्कन्धमारोप्य जवात् तूष्णीमानेतुं प्रवृत्ते स्कन्धस्थितः स वेतालस्तमब्रवीत् - राजन् महति अनुचिते क्लेशे पतितोऽसि तस्मात् तव विनोदाय पुनः कथामेकां कथयामि श्रूयताम्।

व्याख्या- इसके बाद वह राजा विक्रमादित्य फिर उस वेताल को लाने के लिए शीशम के पेड़ की जड़ में गया। वहाँ पहुँचकर जब चारों ओर देखते हैं तब उस वेताल को जमीन पर पड़े हुए तथा अस्पष्ट शब्द करते हुए देखा। तब मृत शरीर में स्थित उस वेताल को कन्धे पर चढ़ा कर उस राजा के चुपचाप वेग से लाना प्रारम्भ करने पर, कन्धे पर स्थित उस वेताल ने उसको कहा- 'महाराज'! बहुत बड़े अनुचित क्लेश में पड़ गए हो, इस कारण से तुम्हारे मनोरंजन के लिए फिर एक कथा कहता हूँ, सुनो

सरलार्थः- राजा विक्रमादित्य पुनः वेताल को लाने के लिए शीशम वृक्ष के नीचे गया। वहाँ वेताल को खोजा, किन्तु देखा की भूमि पर वेताल स्थित होकर शब्द को कर रहा था। तब वेताल को कन्धे पर चढ़ा करके जब राजा जा रहा था तब वेताल ने राजा को कहा कि अत्यन्त अनुचित कर्म में राजा नियुक्त हुए हो। इसलिए राजा के मनोरंजन के लिए वेताल ने एक कथा को सुनाना आरम्भ किया।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- अगमत् - गम् धातु, लुङ् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।
- ददर्ष - दृश धातु, लिट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

5.1.3) विभाग-2

अस्ति कालिन्दीतटे ब्रह्मस्थलाभिधः कश्चिदग्रहारः। तत्र अग्निस्वामिति समभवत् कश्चित् वेदपारगो विप्रः। तस्य अतिरुपवती मन्दारवती नाम कन्यका अजनि यां नवानर्घलावण्यां निर्माय विधिर्नियतं निजं स्वर्गनारीपूर्वनिर्माणकौशलं जुगुप्सते। तस्यां शैशवातिक्रान्तायां कान्यकुब्जात् समसर्वगुणोपेतोस्त्रयों ब्राह्मणदारकाः समाययुः। तेषामेकैकः आत्मार्थं तत्पितरं तामयाचत। तत्पिता प्राणव्ययेऽपि तामन्यस्मै दातुमनिच्छन् तन्मध्यादेकस्मै दातुं मतिमरोत्। सा तु कन्या अन्ययोर्बाधात् भीता कियन्तं कालं न पाणिमग्राहयत्। ते च त्रयोऽपि तस्याः मुखेन्दुनिक्षिप्तदृष्टयः चकोरव्रतमालम्ब्य दिवानिशं तत्रैव तस्थुः।

व्याख्या- यमुना नदी के तट पर ब्रह्मस्थल नाम का कोई गाँव है। वहाँ कोई अग्निस्वामी नाम का वेद में पारंगत ब्राह्मण था। उसकी अत्यन्त सुन्दर मन्दारवती नाम की कन्या हुई। नवीन तथा अपूर्व सौन्दर्य से युक्त उस कन्या को बनाकर विधाता ने अवश्य पूर्व में अपनी स्वर्गीय अप्सराओं के निर्माण करने की कला से घृणा की होगी। अर्थात् बहुत सुन्दर वह मन्दारवती थी ऐसा भाव है। उसका बचपन व्यतीत होने पर कान्यकुब्ज देश से समान रूप से सभी गुणों से युक्त तीन ब्राह्मण कुमार आये। उन में

ध्यान दें:

से प्रत्येक ने अपने लिए उसके पिता से उस मन्दारवती की याचना की। उसके पिता ने प्राणनाश होने पर भी उन तीनों से अन्य को कन्या देना न चाहते हुए उन्हीं तीनों में से एक को देने का विचार किया। उस कन्या ने अन्य दोनों को कष्ट पहुँचने के भय से भीत हो कर कुछ दिनों तक अपना पाणिग्रहण नहीं कराया। और वे तीनों उसके मुख रूपी चन्द्रमा पर आँख लगाये हुए, चकोर का व्रत धारण करके दिन रात वहीं रहने लगे।

सरलार्थः- यमुना नदी के तट पर ब्रह्मस्थल नामक एक गाँव था। वहाँ अग्निस्वामी नामक वेदों में निष्णात एक ब्राह्मण था। उसकी मन्दारवती नामक कोई पुत्री थी। उसका इस प्रकार का सौन्दर्य था कि उसके निर्माण के समय में ब्रह्मा ने अप्सराओं के निर्माण कौशल को भी उपकृत नहीं किया। वह जब यौवनावस्था को प्राप्त हुई तब उससे पाणिग्रहण के लिए कान्यकुब्ज से तीन ब्राह्मणपुत्र आए। पिता किसको कन्या को देगा इस प्रकार निश्चय करने में समर्थ नहीं हुआ। पुत्री की भी किसी को कष्ट देकर विवाह करने की इच्छा नहीं थी। वे उसके पिता के वचन से कुछ दिन उसके मुख पर दृष्टि किए रखे थे।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- ब्रह्मस्थलाभिधः- ब्रह्मस्थलम् इति अभिधा नाम यस्य तादृषः ग्रामः इति, बहुव्रीहिसमासः।
- वेदपारगः- वेदानाम् ऋग्यजुः सामाथर्वणाम् चतुर्णाम् पारम् अन्तम् गच्छति इति वेदपारगः, सांगवेदः अधीतः इत्यर्थः।
- अजनि- जनी प्रादुर्भावे इति धातु, लुङ् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन।
- नवानर्घलावण्याम् - बहुव्रीहिसमास।
- शैशवातिक्रान्तायाम् - बहुव्रीहिसमास।
- मुखेन्दुनिक्षिप्तदृष्टयः - बहुव्रीहिसमास।
- तस्थुः - स्था धातु, लिट् लकार, प्रथमपुरुष, बहुवचन।
- दिवानिशम् - दिवा च निशा च दिवानिशम्।

5.1.4) विभाग-3

अथाकस्मात् समुत्पन्नेन ज्वरदाहेन आर्ता सा मन्दारवती पंचतामाप। ततस्ते विप्रकुमारास्तां परासुं दृष्टां शोकार्ता कृतप्रसाधनां श्मशानं नीत्वा अग्निसादकुर्वन्। ततश्च तेषामेकस्तत्र मठं निमार्य तद्भस्मशय्यायां भैक्ष्येण जीवन्नतिष्ठत्। द्वितीयोऽस्थीनि तस्या उपादाय भागीरथ्यां निक्षेप्तुं जगाम। तृतीयस्तु तापसो भूत्वा देशान्तराणि भ्रमितुमगात्। स तु भ्राम्यन् तापसः वज्रालोकाभिधं ग्रामं प्राप्य कस्यापि विप्रस्य गृहे अतिथिरभूत्।

व्याख्या- इसके बाद एकाएक उत्पन्न ज्वर की जलन से पीड़ित होकर वह मन्दारवती मर गई। इसके बाद वे तीनों ब्राह्मणकुमार उसे मरी हुई देख कर शोक से पीड़ित होकर उसे आभूषणों से तथा पुष्पों से सजा कर श्मशान ले जाकर अग्नि संस्कार कर दिये। उनमें से एक श्मशान में मठ बनाकर भिक्षा के द्वारा जीवन निर्वाह करते हुए उसकी भस्म की शैय्या पर रहने लगा। भिक्षा के द्वारा अपने जीवन का निर्वाह करता हुआ रहता था।

दूसरा ब्राह्मण कुमार मन्दारवती की अस्थियों को लेकर गंगाजी में प्रवाह करने के लिए चला गया।

ध्यान दें:

तीसरा तपस्वी होकर अनेक देशों में भ्रमण करने के लिए गया। वह घूमने वाला तपस्वी वज्रालोक नामक गाँव में पहुँच कर किसी ब्राह्मण के घर में अतिथि हुआ।

सरलार्थः- एक दिन वह मन्दारवती ज्वर से पीडित हुई। ज्वर के कारण उसका निधन हुआ। तब सभी कुमार उसके मरण को देखकर अत्यन्त दु:खी हुए। उसकी अन्तिम क्रिया समाप्त करके एक वहीं श्मशान में मठ का निर्माण करके उसकी भस्म के ऊपर शैय्या बनाकर भिक्षा के द्वारा जीवन आरम्भ किया। एक गंगा में अस्थियों को समर्पित करने के लिए गया। तीसरा ने सन्यासी होकर विभिन्न देशों में भ्रमण करना आरम्भ किया। इस प्रकार भ्रमण के समय में एक बार वह वज्रालोक नामक गाँव को गया। वहाँ एक ब्राह्मण के घर अतिथि हुआ।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- ज्वरदाहेन - ज्वरेण सह दाह:
- कृतप्रसाधनाम् - बहुव्रीहिसमास।
- जगाम - गम् गतौ धातु प्रथम पुरुष एकवचन।
- वज्रालोकाभिधम् - बहुव्रीहिसमास।

5.1.5) विभाग-4

तेन च गृहपतिना पूजितो यावत् तत्र भोक्तुं प्रावर्त्तत तावत्तस्य एक: शिशु: रोदितुं प्रवृत्तोऽभवत्। स च शिशु: सान्त्व्यमानोऽपि यदा न व्यरंसीत् तदाऽस्य गृहिणी तं बाहावादाय ज्वलत्यग्नो क्रुद्धा प्राक्षिपत् क्षिप्त एव स कोमलांगस्तत्क्षणात् भस्मसादभूत्। तदवलोक्य स तापस: संजातरोमांच: प्राब्रवीत्- हा धिक्। कष्टम्। प्रविष्टोऽहं ब्रह्मराक्षसवेष्मनि तस्मात् मूर्तं किल्बिषमिदमन्नं नाधुना भक्षयामि। एवं वादिनं तमतिथिं स गृहस्थ: प्रत्यब्रवीत्- ब्रह्मन् पश्य मे पठितसिद्धस्य मृतसंजीवनीं शक्तिम् इत्युक्त्वा पुस्तकमुद्घाटय तां विद्यां बहिष्कृत्य अनुवाच्य च तस्मिन् भस्मानि जलमक्षिपत् क्षिप्तमात्रे च जले स पुत्रस्तथैव जीवन्नुदतिष्ठत्। तत: स तापस: सुनिर्वृतस्तत्र सहर्षं बुभुजे। गृहस्थोऽपि स नागदन्तके पुस्तकमवस्थाप्य भुक्त्वैव तेन तापसेन सह रात्रौ शयनमभजत।

व्याख्या- उस गृहस्वामी के द्वारा सम्मानित होकर वहाँ भोजन करने के लिए चला जब तक ब्राह्मण के एक शिशु ने रोना आरम्भ कर दिया। और वह बच्चा सान्तवना देने पर भी अनुकूल कार्य करने पर मधुर वचन आदि से भी जब चुप नहीं हुआ, तब उस गृहस्थ ब्राह्मण की पत्नी ने क्रोध से उसको भुजा से पकड़कर अग्नि में फेंक दिया। वह कोमल अंगों वाला बच्चा आग में गिरते ही उसी समय भस्म हो गया। वह देखकर उस तपस्वी ने रोमांचित होकर कहा- हा धिक्! अत्यन्त दु:ख है कि मैं न जानते हुए महापतिक के घर में हूँ। मैनें तो ब्रह्मराक्षस के घर में प्रवेश किया है, अत: यह अन्न तो प्रत्यक्ष पाप है मैं नहीं खाउँगा। इस प्रकार कहने वाले उस अतिथि से गृहस्थ ने कहा- 'हे ब्राह्मण! पढ़ने में मुझ सिद्ध पुरुष की संजीवनी शक्ति देखिये' यह कहकर पुस्तक खोल कर उस विद्या को बाहर निकाल कर और पढ़ कर उस भस्म के ऊपर जल छिड़क दिया। जल के छिड़कते ही वह पुत्र उसी प्रकार जीवित होकर उठ खड़ा हुआ। तब उस तपस्वी ने सन्तुष्ट होकर वहाँ प्रसन्नतापूर्वक भोजन किया। वह गृहस्थ भी खूंटी पर पुस्तक को रख कर भोजन करके उस तपस्वी के साथ रात में शय्या पर सो गया।

सरलार्थः- तीसरे ब्राह्मण ने घर जाकर सम्मानित होकर जब भोजन को करना आरम्भ किया तब गृहस्थ का पुत्र रोने लगा। उसका रोना चुप नहीं हुआ इससे क्रोधित हो ब्राह्मण की पत्नी ने उसे अग्नि

ध्यान दें:

में फेंक दिया। उसके इस प्रकार के कार्य को देखकर तीसरे ने सोचा कि वह ब्रह्मराक्षस के घर आ गया। इसलिए यहाँ भोजन नहीं करुँगा। तब अतिथि को कुछ भी खाकर न जाता हुआ देखकर ब्राह्मण ने उसकी पुस्तक को खोलकर मृत संजीवनी मन्त्र का उच्चारण करके उस बालक को जीवित कर दिया। यह देखकर वह तपस्वी शांत मन से वहाँ स्थित हुआ। ब्राह्मण ने भी पुस्तक को रख तपस्वी के साथ भोजन को करके शयन किया।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- कोमलांग - बहुव्रीहिसमास।
- संजातरोमांच - बहुव्रीहिसमास।
- ब्रह्मराक्षसनिवेशनि - षष्ठी तत्पुरुष समास।
- बुभुजे - भुजोऽनवने इति धातु, लिट्लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।
- नागदन्तके - अत्यन्तम् समीपे सकाशे निकटे वा इति तदर्थः।
- अभजत - भज सेवायाम् धातु लङ्लकार प्रथम पुरुष एकवचन।

5.1.6) विभाग-5

अथ सुप्ते गृहपतौ स तापसः स्वैरमुत्थाय शंकितः स्वप्रियाया मन्दारवत्या जीवनार्थं तां पुस्तिकामग्रहीत्। गृहीत्वैव तस्मात् निर्गत्य रात्रिन्दिवं व्रजन् शनैस्तत् श्मशानमासदत् अद्राक्षीच्च सहसा तं द्वितीयम् उपस्थितं यो हि गंगाम्भसि तदस्थि क्षेप्तुमगात्। अथ प्राप्य च तत्रस्थं तस्या भस्मानि षायिनं तृतीयं निबद्धमठं स तापसः प्रोवाच- मठिका त्यज्यतां भ्रातः। प्रियां तामहमुत्थापयामि इति। ततः ताभ्यां निर्बन्धतः परिपृष्टः पुस्तिकामुद्घाट्य मन्त्रमनुवाच्य मन्त्रपूतानि जलानि तस्मिन् भस्मनि प्राक्षिपत् क्षिप्तमात्रेषु जलेषु सा मन्दारवती जीवन्ती सहसा समुत्तस्थौ। तदा सा कन्या वह्निं प्रणम्य निष्क्रान्ता पूर्वाधिकद्युतिः कांचनेनेव निर्मितं वपुर्बभार। तादृषीं तां पुनर्जीवितां वीक्ष्य त्रयोऽपि ते स्मरातुराः तत्प्राप्त्यर्थमन्योऽन्यं कलहं चक्रुः। एकेनोक्तम् - इयं मन्मन्त्रबलात् जीविता तदेषा ममैव भार्या। अपरोऽब्रवीत्- मदीयेन तीर्थभ्रमपुण्येन इयं जीविता तदेषा ममैव भार्या। तृतीयेन अभिहितं मया भस्मानि रक्षितानि तत एवेयं जीविता तस्मात् ममैवेय प्रणयिनी इति।

व्याख्या- इसके बाद गृहस्वामी जब सो गया तब वह तपस्वी धीरे से उठा। चोरी के कारण शंकित अपनी प्रिया मन्दारवती के जीवन के लिए उसने उस पुस्तक को उठा लिया। ग्रहण करते ही वहाँ से निकलकर रात दिन चलते हुए क्रमशः उस श्मशान में पहुँचा, एकाएक उस द्वितीय ब्राह्मण को भी वहाँ उसने उपस्थित देखा जो गंगा जी के जल में उसकी अस्थि फेंकने के लिए गया था। तब वहाँ जाकर उसकी भस्म के ऊपर मठ बनाकर निवास करने वाले तृतीय ब्राह्मण कुमार को कहा- हे भाई! इस मठ को छोड़ दो, मैं मेरी प्रियतमा मन्दारवती को जीवित करूँगा। तब उन दोनों के द्वारा आग्रह के साथ पूछा गया। उसने पुस्तक को खोलकर मन्त्र पढ़ कर मन्त्र से पवित्र जल उस भस्म के ऊपर छिड़क दिया। जल के छिड़कते ही वह मन्दारवती एकाएक जीवित होकर उठ खड़ी हो गयी। तब वह कन्या अग्नि को प्रणाम कर के बाहर निकली। सोने से बनाए हुए की तरह उसका शरीर पहले से भी अधिक कान्तियुक्त हो गया। इस प्रकार से उसे जीवित देखकर वे तीनों ब्राह्मण कुमार काम पीड़ित होकर उसकी प्राप्ति के लिए परस्पर कलह करने लगे। प्रथम ने कहा- यह मेरे मन्त्र के बल से जीवित हुई है, इसलिए यह मेरी पत्नी होगी। दूसरे ने कहा- मेरे तीर्थ भ्रमण करने के पुण्य से यह जीवित हुई है, इसलिए यह मेरी पत्नी होगी। तीसरे ने कहा- मैनें इसकी भस्म सुरक्षित रखी, उसी से यह जीवित हुई है, इसलिए यह मेरी ही प्रियतमा होगी'।

ध्यान दें:

सरलार्थः- रात्रि में जब घर का स्वामी शयन करता है तब मन्दारवती के पुनर्जीवन के लिए वह तपस्वी धीरे से उठकर पुस्तक को लेकर श्मशान में उसकी भस्म के समीप आ गया। वहाँ उसने देखा कि द्वितीय भी तीर्थयात्रा को समाप्त करके आ गया। और गंगाजल में अस्थि को बहाने गया कुमार भी आ गया। फिर तपस्वी से अस्थि को लिया। उसके बाद मठ में रहने वाले तपस्वी को कहा कि इस प्रिया को जीवित करूँगा इसलिए तुम मठ को छोड़ दो। फिर अन्य तपस्वी ने अभिमन्त्रित किया जल उसकी भस्म के ऊपर छिड़क दिया। उसी क्षण से वह मन्दारवती पुनः जीवित हो गई। वह पहले की अपेक्षा अधिक सुन्दर थी। तब उसे देखकर तीनों ने ही उसे प्राप्त करने की इच्छा की। एक ने कहा कि उसने मन्त्र के बल से जीवन को दिया इसलिए वह उसकी है। दूसरे ने कहा कि उसने तीर्थादि का भ्रमण करके पुण्य को अर्जित किया इसलिए वह उससे जीवित हुई अतः वह उसकी होगी। तीसरे ने कहा कि यदि वह उसकी भस्म की सम्यक् रूप से रक्षा नहीं करता तो कहा से उसे जीवित करते इसलिए वह उसकी पत्नी होगी।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- कोमलांग - बहुव्रीहि समास।
- शंकित - शंका संजाता अस्य इति शंकितः।
- जीवनार्थम् - चतुर्थी तत्पुरुष समास।
- निबद्धमठम् - बहुव्रीहि समास।
- पूर्वाधिकद्युतिः - बहुव्रीहि समास।

5.1.7) विभाग-6

हे महीपते तेषां विवादनिर्णये त्वमेव शक्तः तद्ब्रूहि कन्याऽसौ कस्य एतेषां भार्या भवितुमर्हति। यदि जानन् मृषा वदिष्यसि तदा ते मूर्द्धा विदलिष्यति। इति वेतालादाकर्ण्य स राजा एवम् अभ्यधात् - यः क्लेशेन मन्त्रमानीय एनामजीवयत् स खलु पितृकार्यकरणात् न पतिः। यश्च तस्या अस्थीनि गंगायां क्षेप्तुं गतः स पुत्रकार्यकरणात् पतिर्भवितुमर्हति इति।

इत्थं नृपात् त्रिविक्रमसेनादाकर्ण्य स वेतालस्तस्य स्कन्धादतर्कितं स्वपदं प्रायात। राजा च भिक्षुकार्यार्थं पुनस्तं प्राप्तुं मनो बबन्ध प्राणात्ययेऽपि महासत्त्वाः प्रतिपन्नमर्थम् असाधयित्वा न निवर्तन्ते।

व्याख्या- हे महाराज! उनके विवाद का निर्णय करने में तुम ही समर्थ हो। फिर बताओ उस कन्या को इनमें से किस की पत्नी होनी चाहिए। यदि जानते हुए भी झूठ कहोगे तो तुम्हारा सिर टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा। वेताल से सुनकर उस राजा विक्रमादित्य ने कहा-'जिसने क्लेश से मन्त्र लाकर इस मन्दारवती को जीवित किया, वह तो पिता का कार्य करने अर्थात् जन्म देने से इसका पति नहीं हो सकता। और जो उसकी अस्थियों को गंगा में फेंकने के लिए गया वह भी पुत्र का कार्य करने से पति नहीं हो सकता है। जिसने उसी भस्म की शय्या का आलिंगन कर तपस्या को किया। श्मशान में भयानक निर्जन स्थान में जिसने प्रेम के कारण प्रिय के समान कार्य को किया वह ही इसका पति हो सकता है। इस प्रकार राजा विक्रमादित्य से सुनकर वह वेताल उसके कन्धे पर से अपने स्थान पर चला गया। राजा ने सन्यासी के कार्य के लिए फिर उसको प्राप्त करने का निश्चय किया। महासाहसी पुरुष प्राण के नष्ट होते रहने पर भी स्वीकार किए हुए कार्य को बिना पूरा किए हुए रुकते नहीं है।

सरलार्थः- कथा सुनाकर वेताल ने राजा को कहा कि उनके विवाद के समाधान में राजा ही

समर्थ है। उनमें से कौन उसका पति होगा। यदि उत्तर जानते हुए भी नहीं बताओगे तो आपके सिर के सौ टुकड़े होंगे। फिर राजा ने कहा कि जिसने मन्त्रादि से जीवन दिया उसने पिता का कार्य किया। जो गंगा में अस्थियों को प्रवाहित करने गया उसने पुत्र का कार्य किया। जिसने इस घोर श्मशान में उसकी भस्म के ऊपर ही सोकर समय व्यतीत किया उसने ही वास्तव में पति का कार्य किया। इसलिए वह ही उसे पत्नी के रूप में प्राप्त करेगा। इस प्रकार से उत्तर को प्राप्त कर वेताल पुन: अपने स्थान पर चला गया। राजा भी वहाँ गया, क्योंकि महात्मा एक बार जो कार्य स्वीकार करते है उसकी जब तक समाप्ति नहीं होती तब तक उसे छोड़ कर नहीं जाते हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- अतर्कितम् - न तर्कितम् तर्क: विचार: इत्यर्थ:।
- महासत्त्वा: - बहुव्रीहिसमास।

पाठ सार

राजा विक्रमादित्य सन्यासी के कार्य को सम्पन्न करने के लिए श्मशान जाकर वेताल को लाने के लिए जब आता है तब वेताल ने उसे एक कथा को सुनाना आरम्भ किया। यमुना नदी के तट पर ब्रह्मस्थल नामक गाँव था। वहाँ अग्निस्वामी नामक एक ब्राह्मण था। उसकी पुत्री मन्दारवती थी। उसने जब यौवनावस्था को प्राप्त किया तब कान्यकुब्ज से तीन ब्राह्मण आए। उन्होंने उसकी प्रार्थना की। तब किसे वह देंगे इसके निश्चय के लिए उसके पिता ने कुछ समय लिया।

एक दिन वह बुखार से ग्रस्त हुई, उस ज्वर से पीड़ित हो मृत्यु को प्राप्त हुई। तब उसकी अन्तिम क्रिया को करके एक उसकी भस्म के ऊपर शय्या बनाकर मठ का निर्माण कर वहाँ रहना आरम्भ किया। एक उसकी अस्थियों को गंगा में प्रवाहित करने गया। दूसरा तपस्वी होकर अन्य देश को गया। एक बार वह तपस्वी एक ब्राह्मण के घर अतिथि हुआ। वहाँ उसने देखा कि ब्राह्मणी ने अपने पुत्र को अग्नि कुण्ड में फेंक दिया उसके क्रन्दन को रोकने के लिए। वह जलकर राख हुआ। उसे देखकर तपस्वी ने कुछ न खाने की इच्छा की । तब ब्राह्मण ने एक पुस्तक को खोलकर मन्त्रोच्चारण से उसे पुन: जीवित किया। यह देखकर रात्रि में जब सब सो गए तब उस पुस्तक को लेकर वह श्मशान आ गया। तब दूसरा भी वहाँ आ गया। उसने मन्त्र पढ़े जल को उसके ऊपर छिड़क दिया। तब वह मन्दारवती पुन: जीवित हुई। तब कौन उसे प्राप्त करेगा इस विषय में उनके मध्य में द्वन्द्व आरम्भ हुआ। उसके समाधान के लिए वेताल ने राजा को कहा- तब राजा ने कहा कि जिसने मन्त्र से पुन: जीवन दिया उसने पिता का कार्य किया। जिसने अस्थियों को गंगा में प्रवाहित किया उसने पुत्र का कार्य किया। जो उसकी भस्म जहाँ घोर श्मशान में थी वहाँ ही था उसने ही पति के कार्य को किया। दु:ख में भी उसे छोड़कर नहीं गया। इसलिए वह ही उसका पति है। वेताल उत्तर को सुनकर पुन: अपने स्थान को गया। राजा ने भी उसका अनुसरण किया। क्योंकि महन्त व्यक्ति जब किसी भी कार्य को स्वीकार करते हैं तब उसे समाप्त करके ही रूकते हैं बिना पूरा किए कभी नहीं रूकते हैं।

पाठगत प्रश्न

1. कन्या के ग्राम का नाम क्या है?
2. ब्रह्मस्थलग्राम किस नदी के तीर पर था?

ध्यान दें:

ध्यान दें:

3. विप्र का नाम क्या है?
4. कथा की नायिका का नाम क्या है?
5. तीन कुमार कहाँ से आए?
6. तपस्वी किस गाँव में ब्राह्मण का अतिथि हुआ?
7. तपस्वी ने किसके कार्य को किया?
8. जो गंगा को गया उसने किसके कार्य को किया?
9. कौन मन्दारवती का पति है?
10. महाजन क्या बिना किए नहीं रूकते?
11. वहाँ जब चारों तरफ देखते हैं तब उस वेताल को भूमि पर.....देखा।
12. राजन्, बहुत ही अनुचित.....पड़ गए हो।
13. यमुना नदी के तीर पर.....कोई गाँव है।
14. अग्निस्वामी के अत्यन्त रूपवती.....नाम की कन्या हुई।
15. उनमें से एक ने वहाँ मठ का निर्माण कर उसकी भस्म की शय्या पर.....जीवन व्यतीत किया।
16. द्वितीय उसकी.....लेकर गंगा में बहाने चला गया।
17. वह घूमने वाला तपस्वी.....नामक गाँव को प्राप्त कर किसी विप्र के घर अतिथि हुआ।
18. जिसने क्लेश से मन्त्र को लाकर इसे जीवित किया वह निश्चित ही.....पति नहीं है।
19. ..... स्वीकार किए हुए कार्य को बिना पूरा किए नहीं रूकते है।
20. स्तम्भ- (क) को मिलाओ-

	स्तम्भ- (क)	**स्तम्भ- (ख)**
1.	ग्राम का नाम	मठवासी
2.	विप्र	महासत्त्वा
3.	तीन कुमार	अग्निस्वामी
4.	नदी	मन्दारवती
5.	अग्निस्वामी की कन्या	ब्रह्मस्थलम्
6.	तापसः	पितुः कार्यम्
7.	मन्दारवती का पति	कालिन्दी
8.	प्रतिपन्नमर्थं साधयन्ति	कान्यकुब्ज से

5.2) कथा उपसंहार

प्रस्तावना

शिष्टता का पालन और दुष्टता का नाश हमारे भारतीयों की परम्परा है। कैसे वेताल ने विक्रमादित्य के विलम्ब को उत्पन्न किया था, अथवा कैसे प्रश्नोत्तर से उसे बांधा था- इस विषय के अवलोकन के लिए ही यह भाग प्रारम्भ किया। यहाँ हम देखेंगे कैसे राजा दुष्ट का नाश करते हैं अथवा वेताल ने सत्कर्मी राजा की सहायता करी।

5.3) मूलपाठ

क्षान्तिशील की आज्ञा के अनुसार राजा विक्रमादित्य वेताल को लेकर जब तक भिक्षु के समीप आता तब तक मार्ग के बीच में वेताल ने उससे कथा को सुनाकर प्रश्न पूछा। तब नियम के अनुसार उस राजा के उपयुक्त उत्तर को सुनकर पुनः शीशम के वृक्ष पर चला जाता था। इस प्रकार चौबीस बार हुआ। फिर उस वेताल ने राजा को सत्य कहा।

वस्तुतः वह भिक्षु साधु सन्यासी नहीं अपितु मूर्ख और लोभी है। वह विद्याधर पद की प्राप्ति के लिए यज्ञ करता था। परन्तु उसके यज्ञ में वेताल के पूजन को किसी भी महान व्यक्ति अर्थात् जो सज्जन दया, दाक्षिण्य आदि सत्वगुणों से सम्पन्न इस प्रकार से किसी की बलि चाहिए। इस प्रकार के गुणों से सम्पन्न राजा विक्रमादित्य ही होगा ऐसा विचार कर उस मूर्ख भिक्षु ने राजा को छल कपट से वेताल को लाने के लिए भेजा। वह लोभी यदि विद्याधर पद को प्राप्त करेगा तो जगत का अकल्याण होगा। इसलिए वह रोकने योग्य है। इस प्रकार की व्याख्यायित कर वेताल ने राजा को कहा- मैं एक मृत शरीर का आश्रय लेता हूँ। तुम उस शव को ले जाओ। वह भिक्षु उस शव को आधार बनाकर मेरी पूजा करेगा। पूजा के बाद जब वह भिक्षु राजा को प्रणाम के लिए आह्वाहन करेगा तब- 'मैंने वैसे प्रणाम नहीं किया, पहले तुम दिखाओ, फिर मैं वैसा करुंगा' इस प्रकार कहना-जब भिक्षु वैसा सम्पादित करे राजा उसका सिर अलग कर दें।

इस प्रकार समझकर राजा वेताला धिष्ठित शव को कन्धे पर रखकर उस भिक्षु के पास गया। वहाँ जाकर राजा ने देखा कि श्मशान के चारों ओर अस्थिचूर्ण, कपाल और विस्तृत चिता की राख है। राजा ने जाकर उस शव को उचित स्थान पर रखा। फिर उस भिक्षु ने उस शव की पूजा आरम्भ की। पूजा के बाद राजा को कहा- राजा, यह मन्त्राधिराज है। यह आपकी सभी मनोकामना को पूरा करेगा। इसलिए साष्टांग प्रणाम करो। इस प्रकार सुनकर वेताल के उपदेशानुसार उसने भिक्षु को कहा- मैं तो राजा हूँ। इसलिए इस प्रकार के साष्टांग प्रणाम को नहीं जानता हूँ। फिर आप ही पहले दिखाएं। इस प्रकार सुनकर वह भिक्षु साष्टांग प्रणाम कैसे होता है इसे बताने के लिए जब भूमि पर लेटा तब विक्रमादित्य ने अपनी तलवार से उसके सिर को अलग कर दिया। फिर उसके हृदय को चीर के हृदय कमल और उसका सिर वेताल को दिया। तब धन्यवाद करते हुए वेताल ने शव से बाहर आकर कहा- राजा आप वीर हैं। यह भिक्षु जो विद्याधर को चाहता था वह आप प्राप्त करेंगे। फिर वेताल ने अभीष्ट वर के लाभ के लिए राजा से अनुरोध किया। तब राजा ने कहा- कि पच्चीस कथाएँ कही है वे चिरकाल तक संसार में प्रसिद्ध हो। तब वेताल ने कहा कि जो इन कथाओं को सुनेगा अथवा पाठ करेगा वह पाप से मुक्त होगा। और जहाँ यह कथा कही जाएगी वहाँ यक्ष, राक्षस आदि स्थित नहीं होंगे। इस प्रकार कह वेताल अन्तर्हित हो गया।

फिर साक्षात् महादेव सभी गणों के साथ वहाँ आए। उन्होंने राजा की प्रशंसा करते हुए उसे अपराजित नामक खड्ग को दिया। उसके बाद वह राजा प्रातः अपने भवन को गया। महादेव के प्रसाद से राज्य का शासन करते हुए मरने के बाद विद्याधरेन्द्र पद को प्राप्त कर अन्त में भगवान को प्राप्त किया। इस प्रकार ही यह कथा का उपसंहार है। कल्याण हो।

पाठगत प्रश्न-2

21. भिक्षु का नाम क्या है?

22. राजा कितनी बार वेताल को लेकर श्मशान की ओर लाया?

ध्यान दें:

ध्यान दें:

23. वेताल के वचनों के बाद कौन आविर्भूत हुए?

24. महादेव ने राजा को क्या दिया?

25. भिक्षु को कौन-सा पद अभीष्ट था?

पाठ सार

तृतीय कथा में मन्दारवती के मरने के बाद भी जिन तीन ब्राह्मणों की प्रीति उसके प्रति थी उनमें से एक श्मशान में रहा, एक अन्य देश को गया और गंगा में अस्थि विसर्जन के लिए के लिए गया। तपस्वी के मन्त्र से वह पुनः जीवित हुई। तब वह किसकी होगी इस प्रश्न पर राजा ने कहा कि जो श्मशान में था वह घोर, भयानक, निर्जन स्थान पर भी उसके पास ही था इस कारण वह ही योग्य वर है।

चतुर्थ में हमने देखा कि कैसे वेताल ने राजा को विलम्ब किया था। वस्तुतः वह भिक्षु क्षान्तिशील सज्जन नहीं मूर्ख था। वह अपने विद्याधर पद की प्राप्ति के लिए राजा की बलि चाहता था। इसलिए उसे अपने कार्य की सिद्धि के लिए चुना। परन्तु वेताल ने उससे सारा वृत्तान्त कहा। उसने राजा से कहा कि जब वह भिक्षु साष्टांग प्रणाम के लिए कहेगा तब पहले तुम दिखाओ फिर देखकर वैसा करूंगा ऐसा कहोगे। इस प्रकार जानकर राजा विक्रमादित्य वेतालाधिष्ठित शव को लेकर श्मशान को गया। वहाँ उस भिक्षु ने शव का पूजन किया। पूजा के बाद अनेक प्रकार के प्रशंसनीय वचनों के द्वारा राजा को प्रणाम के लिए कहा। तब वेताल के वचनों को स्मरण करके राजा ने पहले प्रणाम करके दिखाओ भिक्षु से कहा। जब तक वह भिक्षु प्रणाम कर रहा था तब तक वेताल के वचनानुसार अपनी तलवार से उसका सिर काट दिया। फिर उसका सिर और हृदयकमल वेताल को दिया। उससे प्रसन्न वेताल ने शव से आकर कहा कि राजा विक्रमादित्य भूमि पर राज्यशासन के बाद विद्याधरेन्द्र पद को प्राप्त करेगा। तब भगवान महादेव वहाँ आर्विभूत हुए उन्होंने राजा को एक अपराजित नामक तलवार दी। इस प्रकार के भगवान के अनुग्रह से विक्रमादित्य ने भूमि पर राज्य शासन कर फिर स्वर्गलोक में शासन किया।

आपने क्या सीखा

1. महान व्यक्ति स्वीकार किए गए कार्य को पूरा किए बिना नहीं रूकते हैं।
2. भारतीय संस्कृति में कन्यादान का विशेष महत्व है।
3. राजा विक्रमादित्य की बुद्धि तेज और विचारकुशल है।

योग्यता विस्तार

सन्दर्भग्रन्थ परिचय

इस ग्रन्थ में राजा विक्रमादित्य और वेताल की कथा वर्णित है। इस पाठ में एक कथा ग्रन्थ का उपसंहार दिया गया है। कोई और अधिक पढ़ना चाहता है तो इस ग्रन्थ को पढ़े

1. वेतालपंचविंशतिः - प्रकाश हिन्दी व्याख्या

   व्याख्याकार - पण्डित दामोदर झा

   प्रकाशकः - चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-1

भाव विस्तार

7. इस पाठ में विक्रमादित्य की सम्यक् बुद्धि, शिष्टता का पालन और दुष्टों के नाश के विषय में जानते हैं। सौ बार कार्य की सफलता न हो फिर भी पुनः एक बार प्रयत्न करना चाहिए, उस कार्य को छोड़ना नहीं चाहिए - यह बोध होता है।

8. इन कथा को नाटक के रूप में मंचादि पर मंचन कर सकते हैं। उससे भाषा का विस्तार भी होगा, सभी को ज्ञान भी होगा।

9. एक पत्रिका मिलती है उसका नाम है चन्दा मामा। उस पत्रिका की प्रत्येक संख्या में वेताल पंचविंशति की कथा प्रकाशित करते हैं। वहाँ उसके जैसी कथा भी मिलती हैं। उससे छात्र अधिक कथा ग्रन्थों को पढ़ सकते हैं।

10. वेताल पंचविंशति की अनेक कथा युट्यूब पर पिक्चर के रूप में अथवा नाटक के रूप में मिलती हैं। उसे भी छात्र देख सकते हैं।

11. अनेक दूरदर्शन चलाने वाली संस्था धारावाहिक के रूप में प्रत्येक रविवार को वेताल पंचविंशति की कथा दिखाते हैं। उसे भी सभी देख सकते हैं।

12. यहाँ जो कथा दी गई है उनमें कौन नायक है। और किस प्रकार के गुणों का प्रकाशक है। उसके गुण को यदि हम स्वीकार करेंगे, जैसा नायक व्यवहार करता है वैसा अनुसरण करेंगे तो हमें अवश्य ही लाभ होगा।

भाषा विस्तार

1. यहाँ बहुत से अल्पसमास युक्त शब्द है। उनकी तालिका को बनाना चाहिए। फिर उस तालिका को पढ़ने से नवीन शब्दों का ज्ञान और समास बोध भी सरलता से होता है।
2. नवीन सुबन्त शब्दों के रूप को लिखकर अभ्यास करना चाहिए।
3. नए तिङन्त शब्दों लट्लकार में, लङ्लकार में, लृट्लकार में, विधिलिङ्लकार में, लुट्लकार में, और लुङ्लकार में रूप पत्र पर लिखकर अभ्यास करना आवश्यक है।
4. जो अव्यय शब्द दिखाई दे उनकी भी तालिका को प्रस्तुत करना चाहिए। स्वयं जब कोई भी उत्तर लिखें तब इनका प्रयोग करना चाहिए।

पाठान्त प्रश्न

1. कैसे मन्दारवती के पिता ने कितने समय तक वहाँ रहने के लिए उससे कहा।
2. तपस्वी के वृतान्त को अपने वचनों में वर्णित कीजिए?
3. 'मन्दारवती का स्वामी कौन है' विक्रमादित्य के वचन को व्याख्यायित कीजिए?
4. कथा के सार को सरल शब्दों में प्रकट कीजिए।
5. वेताल के वचनानुसार विक्रमादित्य ने कैसे दुष्टों का दमन किया इस विषय को विस्तार से वर्णित कीजिए?
6. वेताल ने राजा को क्या आदेश दिया, व्याख्या कीजिए?

ध्यान दें:

पाठ-5

वेताल पच्चीसी-2

ध्यान दें:

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

उत्तर-1

1. ब्रह्मस्थल
2. यमुना नदी
3. अग्निस्वामी
4. नायिका का नाम मन्दारवती
5. कान्यकुब्ज से
6. वज्रालोक नामक गाँव में
7. पिता का
8. पुत्र का
9. जो श्मशान में मन्दारवती की भस्म के साथ था।
10. स्वीकार किए कार्य को बिना पूरे किए।
11. शब्द करते
12. क्लेश में
13. ब्रह्मस्थल नामक
14. मन्दारवती
15. भिक्षा के द्वारा
16. अस्थियों को
17. वज्रालोक नामक
18. पिता का कार्य करने से
19. महान व्यक्ति
20. स्तम्भ
    1. ब्रह्मस्थल
    2. अग्निस्वामी
    3. कान्यकुब्ज से
    4. कालिन्दी
    5. मन्दारवती
    6. पितुः कार्यम्
    7. मठवासी
    8. महासत्व

उत्तर-2

21. क्षान्तिशील
22. चौबीस बार
23. भगवान महादेव
24. अपराजित नामक तलवार
25. विद्याधरेन्द्र पद को

6

शुकसप्तति

ध्यान दें:

पुत्र यदि विपरीत रास्ते पर जाता है तो क्या पिता उसे छोड़ देता है। नहीं, किन्तु उसे समझाता है और सन्मार्ग पर प्रवृत्त करता है। इसी प्रकार शुकसप्तति में मदनविनोद जब व्यापार के लिए अन्यदेश को गया तब नीति उपदेशों के द्वारा काम का हनन और प्रभावती के चरित्र की रक्षा जैसे हो वैसी कथा को सुनाया। पंचतन्त्र में राजा का पुत्र आलसी, भोगों में आसक्त और मूर्ख था। विष्णु शर्मा नामक विद्वान ने कथा के द्वारा उसे उपदेश दिया और उससे वह ज्ञानी हुआ। इस पाठ में शुकसप्तति इस पुस्तक से कथा ली गई है। शुकसप्तति में शुक प्रभावती को अनैतिक कर्मों से रोकने के लिए कथा के माध्यम से नीति उपदेशों को देता था।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- कथा में वर्णित नीति वाक्यों का ज्ञान प्राप्त कर पाने में;
- संस्कृत वाङ्मय में कथा कैसे आनन्द को उत्पन्न करती हैं उसका बोध कर पाने में;
- नैतिक शिक्षा और व्यवहारिक शिक्षा को प्राप्त कर पाने में;
- संस्कृत में स्वयं कथा को लिख सकने में;

6.1) प्रथम कथा- सुदर्शन की बुद्धि

6.1.1) कथामुख

किसी नगर में प्रसिद्ध व्यापारी हरिदत्त के मदनविनोद नामक पुत्र था। और वह पुत्र दुष्ट था। ऐसे कुमार्गगामी पुत्र को देखकर पिता को दु:ख हुआ। दु:खी व्यापारी को देखकर उसका मित्र त्रिविक्रम नामक ब्राह्मण अपने घर को गया। और आकर नीति में निपुण शुक सारिका को लेकर पुन: उनके घर गया। और वहाँ जाकर कहा मित्र इस सपत्नीक शुक का तुम्हें पुत्र के समान पालन करना चाहिए। इसका संरक्षण करने से तुम्हारा दु:ख दूर हो जाएगा। हरिदत्त ने उसे अपने दुष्ट पुत्र को सौंप दिया। मदनविनोद उसका

ध्यान दें:

उचित रूप से पालन करता था। शुक के उपदेश से कुमार्गगामी दुष्ट पुत्र माता-पिता के प्रति अच्छा और विनीत हुआ। इसके बाद पिता को नमस्कार करके उनकी आज्ञा को लेकर और पत्नी को पूछकर व्यापार के लिए नौका से अन्य देश को गया। उसके जाने से पत्नी प्रभावती ने शोकाकुल होकर कुछ दिन व्यतीत किए। व्यभिचारिणी स्त्रियों द्वारा समझाया गया कि पति की अनुपस्थिति में परपुरुष गमन करें। उसकी भी इस विषय में अभिलाषा हुई। जब भी वह परपुरुष के पास जाने के लिए होती थी तब ही शुक कहता था मत जाओ। चतुर शुक कहता था तुम उस जैसा कुकर्म करने योग्य हो परन्तु प्रतिकूल अवस्था में अपनी रक्षा के लिए तुम्हें बुद्धि की आवश्यकता है। प्रतिकूल अवस्था में दुष्ट उपहास ही करते हैं। इस प्रकार सुनकर प्रभावती मदनविनोद की पत्नी की उत्सुकता चली गई। उस शुक ने परपुरुष संगम से रक्षा के लिए मनोरंजक कथा कही। कथा के मध्य में इस विपत्ति में किस प्रकार का आचरण करना चाहिए इत्यादि प्रश्न भी पूछता था। उन्हीं कथाओं का संग्रह शुकसप्तति है। इस प्रकार शुक ने उसके शील की रक्षा की। अन्त में मदनविनोद विदेश से आया। फिर उसने पत्नी के साथ सुख से समय व्यतीत किया इस प्रकार ग्रन्थ की समाप्ति होती है।

6.1.2) पूर्वपीठिका

अस्ति चन्द्रपुरं नाम नगरम्। वाणिज्यार्थं सारिकाप्रेषिते मदनविनोदनाम्नि वणिजि तत्पत्नी प्रभावती सम्प्राप्तमधुकाले अनलबाणाहता सती स्वैरिणीभिः सखीभिः प्रतिबोधिता यदा पुरुषान्तराभिलाषिणी संजाता तदा तत् क्षमयितुम् अपि च तस्याः पातिव्रत्यं रक्षितुं शुकः उक्तवान्-

6.1.3) प्रथम कथा-सुदर्शन की बुद्धि-मूलपाठ-विभाग-1

शुकः-

गच्छ देवि किमाश्चर्यं यत्र ते रमते मनः।

नृपवद्यदि जानासि परित्राणं त्वमात्मनः।।

प्रभावती पृच्छति-कथमेतत्।

शुक- कथयति-अस्ति विशाला नगरी। तत्र सुदर्शनो राजा। तत्र च विमलो नाम वणिक्। तस्य च पत्नीद्वयं सुभगं रूपसम्पन्नं दृष्टवा कुटिलनामा धूर्तस्तद्भार्याद्वयग्रहणेच्छया अम्बिकां देवीमाराध्य विमलरूपं ययाचे। लब्ध्वा च तत्प्रकृतिं विमले बहिर्गते तद्गृहं गत्वा प्रभुत्वं चकार। प्रसाधनदानैर्वशीकृतोऽखिलोऽपि परिजनवर्गः। तार्याद्वयं बहुमानदानादिना सन्तोष्य स्वेच्छया भुङ्क्ते। विमलोऽयं धनाद्यनित्यतां श्रुत्वा दाता बभूवेति परिजनोऽनवरतं चिन्तयति।

व्याख्या- चन्द्रपुर नाम का कोई नगर था। वहाँ सारिका द्वारा व्यापार के लिए गये मदनविनोद की पत्नी को जो व्यभिचारिणी सखियों द्वारा बताने पर परपुरुष के संगम के लिए अभिलाषी हुई रोका गया। तब प्रभावती के पातिव्रत्य और सतीत्व की रक्षा के लिए शुक ने कहा-

अन्वयः-देवि यदि त्वम् नृपवत् आत्मनः परित्राणम् जानासि यत्र ते मनः रमते गच्छ। किम् आर्य्यम्।

अन्वयार्थः- हे देवी प्रभावती यदि तुम राजा के समान अपने परित्राण की रक्षा करनी जानती हो जिस पुरुष में तुम्हारा मन रमता है उसके पास जाओ। इस विषय में क्या आश्चर्य है। कोई आश्चर्य नहीं हैं, जिसका मन जहाँ रमता है वह वहाँ ही जाए।

तात्पर्यार्थः- शुक के द्वारा प्रभावती को रोकने पर भी परपुरुष के पास जाती हुई उस प्रभावती

ध्यान दें:

को कहता है कि परपुरुष के लिए जाती हो तो कोई भी आश्चर्य नहीं होता क्योंकि जो जिसकी इच्छा करता है वह वहाँ जाता है, इसलिए हे देवी तुम भी जा सकती हो किन्तु देवी तुम विपत्ति में राजा के समान रक्षा करना जानती हो तो जाओ, नहीं तो बड़ा क्लेश उत्पन्न होगा।

प्रभावती ने पूछा कैसे कहो अर्थात् राजा ने कैसे अपनी रक्षा की- विशाला नगरी है। वहाँ सुदर्शन नाम का कोई राजा था। और उस नगरी में विमल नामक कोई बनिया था। और उस व्यापारी की दो रूप सम्पन्न पत्नियों को देखकर कुटिल नामक एक मूर्ख ने उसकी दोनों पत्नियों को प्राप्त करने की इच्छा से अम्बिका देवी की आराधना कर विमल का रूप मांगा। उसका आकार प्रकार प्राप्त करके विमल के बाहर जाने पर उसके घर जाकर अपना आधिपत्य जमा लिया। उसने पुरस्कार रूप में धन प्रदान कर समस्त भृत्य वर्ग को अपने अधीन कर लिया। उसकी दोनों पत्नियों को अत्यन्त सम्मान दान आदि से सन्तुष्ट कर उनका सम्भोग करता है। भृत्यवर्ग यह विमल धनादि की अनित्यता सुनकर दानी हो गया-ऐसा निरन्तर सोचता है।

सरलार्थः- चन्द्रपुर नगर का व्यापारी मदनविनोद व्यापार के लिए विदेश गया उसकी पत्नी प्रभावती कामातुर हुई। फिर उसकी सखियों के द्वारा समझाने पर उसकी परपुरुष के साथ रमण की इच्छा हुई। किन्तु शुक ने उसे रोका और कहता है कि-

यदि वह राजा के समान अपनी रक्षा कर सकती है, तब वह परपुरुष के लिए जाने योग्य है। तब उस प्रभावती ने राजा ने कैसे रक्षा की ऐसा पूछा। तब शुक ने कहा कि विशाला एक नगरी थी। वहाँ सुदर्शन नाम का राजा था। वहाँ एक बनिया रहता था, जिसका नाम विमल था। उसके दो भार्या थी-रुक्मिणी और सुन्दरी। वहाँ ही नगर में एक धूर्त था। उसका नाम कुटिल था। देवी अम्बिका की अराधना करके उसे विमल के समान आकृति प्राप्त हुई। फिर जब विमल बाहर गया तब वह धूर्त घर के अन्दर आया। उसने धन देकर सेवकों को अपने अधीन किया। दोनों भार्या ने उसे अपने पति के रूप में स्वीकार किया। उसने सभी को धनादि से सन्तुष्ट किया।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- पुरषान्तराभिलाषिणी - पुरुषान्तरस्य पतिभिन्नस्य अभिलाषिणी अभिलाषवती इति, षष्ठी तत्पुरुष समास।
- प्रसादधनदानैः - प्रसादेन अनुग्रहेण धनस्य दानैः पुरस्काररूपेण धनं दत्त्वा।
- परिजनवर्गः - भृत्यसमुदायः।
- ययाचे - याचृ याच्ञायाम् धातु, लिट् लकार, प्रथमपुरुष एकवचन।
- चकार - डुकृञ् करणे इति, धातु लिट् लकार, प्रथमपुरुष एकवचन।

6.1.4) प्रथमकथा-सुदर्शन की बुद्धि-मूलपाठ-विभाग-2

अथ सत्यविमलोऽपि द्वारमागतः कुटिलाज्ञया द्वारपालेन निषिद्धः। ततो बहिस्थः फूत्करोति ''वंचितोऽहं धूर्तराजेन''। तस्य चौवं क्रन्दतो गोत्रजा जनाः कौतुकाच्च मिलिताः। तत्क्षणात् हट्टानि मुक्त्वा वणिक्सार्थो मिलित्वा आरक्षकमन्त्रिमुख्यानां पुरतः फूच्चक्रे। 'राजन् वंचितोऽस्मि धूर्तराजेन'। ततो राजा तदवलोकनाय प्रहिताः पुरुषाः। तेनापि ते द्रव्यादिदानेन सानुकूलाः कृताः। तं धनमायकं गृहे दृष्ट्वा जनो वदति-'स्वामिन् विमलो गृहे विद्यते। अयंच धूर्तराट् द्वारस्थः'। ततो नृपेण द्वावप्येकत्र कृतौ। ततो द्वयोर्मध्यान्न कोऽपि धूर्तेतरयोर्व्यक्तिं जानाति। जातः कोलाहलोऽखिललोकव्यवहार-नाशकरो राज्ञष्चापवादः। यतो राज्ञां दुष्टनिग्रहः

ध्यान दें:

शिष्टपालनंच स्वर्गाय।

व्याख्या- इसके बाद वास्तविक विमल भी अर्थात् जो वस्तुतः विमल है वह भी घर के द्वार पर आया तो कुटिल की आज्ञा से द्वारपाल ने उसे रोक दिया। फिर वह बाहर खड़ा चिल्लाता है। और उसके इस प्रकार चिल्लाते हुए उसके कुल गोत्र वाले कौतुक वश मिले। उसी समय बाजार छोड़कर व्यापारी वर्ग मिलकर नगरपालों तथा मुख्यमन्त्री के सामने चिल्लाने लगे- राजा, धूर्त कुटिल के द्वारा मैं ठगा गया हूँ।

तब राजा ने उसे देखने के लिए आदमी भेजे। उस धूर्त ने उन्हें भी धन देकर अपने अनुकूल कर लिया। उस धन देने वाले को घर में देखकर राजपुरुष ने कहा- स्वामी विमल तो घर में है। यह द्वार पर स्थित व्यक्ति धूर्त है।

तब राजा ने दोनों को एकत्र किया। दोनों में से कौन धूर्त है और कौन वास्तविक विमल कोई नहीं जानता। ऐसा कोलाहल हुआ कि सबका कार्य रूका ओर राजा की लोकनिन्दा हुई। क्योंकि दुष्टों का दमन करना तथा शिष्टता का पालन करना राजा का धर्म है। अर्थात् शिष्टता के पालन से और दुष्टों के दमन से राजा को स्वर्ग प्राप्त होता है।

सरलार्थः- फिर जब वास्तविक विमल आया तब सभी ने उसे ठग के रूप में स्वीकार किया। वह विमल कुल गोत्र वालों को लेकर राजा के पास गया। तब राजा ने राजपुरुष को वृत्तान्त जानने के लिए भेजा परन्तु वह भी धूर्त के धन से मोहित हुए। और राजा को कहा सत्य विमल धूर्त है। तब राजा ने दोनों को बुलाया। परन्तु दोनों की समान आकृति है इस कारण कौन वास्तविक है राजा नहीं जान सका। इस प्रकार क्रम से लोक व्यवहार नाशक कोलाहल हुआ। और राजा की हर जगह ही निंदा सुनते थे। क्योंकि राजा का कार्य दुष्टों का दमन और शिष्टता का पालन है। वैसा करने से राजा को स्वर्ग प्राप्त होता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- फूत्करोति- चीत्कारं करोति।
- गोत्रजाः - समाने गोत्रे जायन्ते इति गोत्रजाः कुलोत्पन्नाः।
- वणिक्सार्थः- वणिजां सार्थः समुदायः वणिक्सार्थः।
- धूर्ततरयोः- इतरेतरद्वन्द्वसमास।
- अखिललोकव्यवहारनाशकरः - षष्ठी तत्पुरुष समास।
- दुष्टदमनम्- षष्ठी तत्पुरुषसमास।
- शिष्टपालनम् - षष्ठी तत्पुरुषसमास।

6.1.5) प्रथमकथा-सुदर्शन की बुद्धि-मूलपाठ-विभाग-3

उक्तंच-

प्रजापीडनसन्तापात्समुत्तो हुताशनः।
राज्ञः कुलं श्रियं प्राणान्नादग्ध्वा विनिवर्त्तते॥
ततो राजा एकान्ते तयोर्निर्णयमचिन्तयत् तत्कथय कथं निश्चयः स्यादिति प्रश्नः।

व्याख्या

ध्यान दें:

फिर राजा स्वय इसके समाधान में प्रवृत्त हुए। कहते भी है-

अन्वय:

प्रजापीड़नसन्तापात्समुद्भूत: हुताशन:
राज्ञ: कुलम् श्रियम् प्राणान् अदग्ध्वा विनिवर्तते।

अन्वयार्थ:- प्रजापीड़नरूप उष्णता से जो अग्नि उत्पन्न होती है वह राजा के कुल, सम्पत्ति और प्राणों को बिना भस्म किए शान्त नहीं होती है।

सरलार्थ:- श्लोक का यह भाव है- राज के द्वारा प्रजा का यदि उत्पीड़न होता है तो उससे प्रजा क्रोधित होती है। उस क्रोधाग्नि में राजा का कुल, धन तथा उसके प्राणों का भी नाश होता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- प्रजापीड़नसन्तापात् - प्रजानाम् पीड़नम् तद्रूपसन्ताप: उष्णता तस्मात्।

6.1.6) प्रथम कथा-सुदर्शन की बुद्धि-मूलपाठ-विभाग-4

शुक:- स राजा लब्धोपायस्तद्विमलभार्याद्वयं पृथक्पृथक्संस्थाप्य पृष्टवान्- किं युवयो: पाणिग्रहणे भर्त्रा विभूषणं प्रदत्तं धनंच। पश्चात्किं जल्पितं प्रथमसंगे च का वार्त्ता भर्त्रा सहाभूत्। का माता कश्च पिता। किं कुलम्, का जाति:। इत्येवं पृष्टाभ्यां यथालब्धं यथावृत्तं यथाप्रोक्तं यथासुप्तं सर्वं ताभ्यां कथितम्। पश्चात्तु तौ पुरुषौ पृष्टौ परस्परं विसंवदन्तौ। ततो भार्याद्वयस्य रुक्मिणीसुन्दरीनामधेयस्य य: संवादं वदति स सत्य:। इतरस्तु धूर्तो राज्ञा निर्वासित:। सत्यस्तु राज्ञा सभार्य: संस्कृत: स्वगृहं गत:। इति महाराजबुद्धि:।

व्याख्या- शुक कहता है- उस राजा को उपाय सूझा उसने विमल की दोनों पत्नियों से अलग अलग पूछा-तुम दोनों को विवाह के समय पति ने क्या आभूषण और धन दिया। विवाह के पश्चात् पति के साथ क्या बातचीत हुई। कौन माता और कौन पिता है। कुल वंश क्या है। जाति क्या है। इस प्रकार पूछने पर उन दोनों को जो प्राप्त हुआ वैसा, जैसा भी घटित हुआ वैसा कह दिया। जिस प्रकार सोए सब बता दिया। इसके बाद राजा ने वही बातें परस्पर विवाद करते हुए उन दोनों पुरुषों से पूछी। तब दोनों पत्नियों के संवाद को जिसने कहा वही सच्चा है। दूसरे धूर्त विमल को राजा ने बाहर निकाल दिया। सच्चा विमल पत्नी के साथ सत्कृत हो अपने घर गया।

सरलार्थ:- उसने क्या किया शुक उत्तर देता है- तब राजा ने उसकी दोनों पत्नी को अलग-अलग बैठाकर पूछा कि तुम्हें विवाह के समय पति ने क्या आभूषण दिया, विवाह के बाद प्रथम दिन क्या बात हुई। माता-पिता का नाम क्या है। कुल, जाति इत्यादि का नाम क्या है। फिर वही राजा ने उन दोनों पुरुषों से पूछा। भार्या के समान जिसके उत्तर थे वह ही वास्तविक विमल है ऐसा निश्चय हुआ। जो उत्तर नहीं दे पाया वह धूर्त विमल है। इसके बाद वास्तविक विमल अपनी पत्नियों के साथ राजा के द्वारा सत्कृत हो अपने घर को गया। और धूर्त विमल को राजा ने निर्वासित किया।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- लब्धोपाय: - लब्ध: प्राप्त: उपाय: येन स:।
- महाराजबुद्धि:- षष्ठीतत्पुरुष समास।

ध्यान दें:

पाठगत प्रश्न-1

1. अनंग की गति किस प्रकार की है?
2. शुक ने किसके प्रति कथा को कहा?
3. नगर का क्या नाम है?
4. विशाला नगरी के राजा का नाम क्या है?
5. बनिए का नाम क्या है?
6. बनिए की पत्नियों का नाम क्या है?
7. धूर्त का नाम क्या है?
8. धूर्त ने किस देवी की पूजा करके वर को प्राप्त किया?
9. किस प्रकार की अग्नि राजा के कुल को जलाती है?
10. राजा दुष्टता का नाश और शिष्टता का पालन किसके निमित्त करता है?
11. सुदर्शन नामक राजा की राजधानी.....।
12. विमल की दो पत्नी..... .....है?
13. .....नामक धूर्त ने अम्बिका देवी की आराधना कर विमल रूप की याचना की?
14. धूर्त ने दोनों भार्याओं को किस प्रकार से सन्तुष्ट किया।

    1. भय से
    2. प्रेम से
    3. बहुत मान दानादि से
    4. क्रूर स्वर से

15. .....उत्पन्न अग्नि राजा के कुल को जला देती है?
16. राजा का शिष्ट पालन किसलिए है?

6.2) द्वितीय कथा- विषकन्या की कथा

भूमिका

जगत में जो गुरुजनों के उपदेश को नहीं सुनते हैं, वे अपने मत का अवलम्बन कर दूसरे के मत का अनादर करके अपने जीवन का निर्वाह करते हैं। उससे उनकी बड़ी दुर्गति होती है। शुकसप्तति में एक कथा में ब्राह्मण ने गुरु की आज्ञा का उल्लंघन कर विषकन्या के साथ विवाह किया। उससे उसको बहुत दु:ख हुआ। वह कथा ही यहाँ प्रस्तुत की गई है।

6.2.1 द्वितीय कथा- विषकन्या की कथा-मूलपाठ-विभाग-1

शुक:- मां कृतावज्ञं कृत्वा मा गच्छ। यतो बालकादपि हितं वाक्यं ग्राह्यम्।

कृतावज्ञ: पुरा देवि वृद्धवाक्यपराङ्मुख:।

ध्यान दें:

पतितो ब्राह्मणोऽनर्थे विषकन्याविवाहने॥1॥

प्रभावती पृच्छति- कथमेतत्।

शुकः- अस्ति सोमप्रभं नाम द्विजस्थानम्। तत्र विद्वान्धार्मिकः सोमशर्मा नाम विप्रः। तत्पुत्री रूपौदार्यगुणोपेता विषकन्येति विज्ञाताभूत्। तेन तां भयेन कोऽपि न विवाहयति। ततः सोमशर्मा वरार्थं भुवं पर्यटन् सम्प्राप्तो द्विजस्थानं जनस्थानं नाम। तत्र गोविन्दनामा ब्राह्मणों जड़ो निर्धनश्च। तस्मै कन्या प्रदत्ता। तेन सुहृदां निवारयतामपि कृतावज्ञेनोढ़। सर्वरूपलावण्यगुणोपेता मोहिनी विषकन्या। सा विदग्धा गोविन्दस्तु मूर्खो लघुवयाश्च। ततश्च सा आत्मनो रूपलावण्ययौवनं शुशोच।

अविदग्धः पतिः स्त्रीणां, प्रौढ़ानां नायकोऽगुणी।
गुणिनां त्यागिनां स्तोको विभवश्चेति दुःखकृत्॥2॥

प्रावृट्समयप्रवासो यौवनदिवसे तथा च दारिद्र्यम्।
प्रथमस्नेहवियोगस्त्रीण्यपि गुरुकाणि दुःखानि॥3॥

अप्रस्तावे पठितं कण्ठविहीनंच गायनं गीतम्।
मा मा भणन्त्यां सुरतं त्रीण्यपि गुरुकाणि दुःखानि॥4॥

व्याख्या- शुक कहता है- मेरे वचनों को तिरस्कृत कर मत जाओ। क्योंकि बालक से भी हितवाक्य ग्रहण करना चाहिए।

अन्वय- देवि पुरा ब्राह्मणः विषकन्याविवाहने वृद्धवाक्यपराङ्मुखः कृतावज्ञः अनर्थे पतितः॥

अन्वयार्थः- हे देवी! प्राचीनकाल में ब्राह्मण विषकन्या के साथ, वृद्धों के वचनों का तिरस्कार कर, उनकी अवज्ञा कर विवाह करके घोर संकट में पड़ गया।

तात्पर्यार्थः- देवी सुनो प्राचीन काल में विषकन्या के विवाह के प्रसंग में वृद्धों के वाक्य को न सुनकर और उनकी अवज्ञा करके ब्राह्मण बड़े संकट में पड़ गया।

व्याख्या- प्रभावती ने पूछा यह आख्यान कैसे है।

शुक कहता है- सोमप्रभ नामक ब्राह्मणों का स्थान है। वहाँ सोमप्रभ नामक स्थान में सोमशर्मा नामक एक विद्वान धार्मिक ब्राह्मण था। उसकी पुत्री रूप औदार्य से युक्त विषकन्या विख्यात थी। उससे भय के कारण कोई भी उससे विवाह नहीं करता था। तब सोमशर्मा वर की तलाश में पृथ्वी पर घूमते हुए जनस्थान नामक ब्राह्मणों की बस्ती में पहुँचा। वहाँ गोविन्द नामक मूर्ख और निर्धन ब्राह्मण था। उसे उसने कन्या दे दी। उसने रोकते हुए सुहृदजनों की भी अवज्ञा कर रूप लावण्यवती मोहिनी विषकन्या से विवाह कर लिया। वह कामकलाप्रवीण थी और गोविन्द मूर्ख एवं अल्पव्यस्क था। तब वह अपने रूप, लावण्य एवं यौवन पर शोक करने लगी।

अन्वय-

स्त्रीणाम् पतिः अविदग्धः प्रौढानाम् नायकः अगुणी।
त्यागिनाम् गुणिनाम् स्तोकः विभवः च इति दुःखकृत्॥

अन्वयार्थः- कामकला में निपुण पत्नी का मूर्ख पति अर्थात् काम कला से अनभिज्ञ, प्रौढ़ स्त्री का (अर्थात् काम कला के अभ्यास में पूर्णतः निपुण स्त्री का) मूर्ख नायक, त्यागी, दानशील गुणीजनों का अल्पधन ये तीनों दुःखदायी होते हैं।

तात्पर्यार्थः- कामकला में निपुण स्त्रियों का मूर्ख पति, कामकला अभ्यास में प्रौढ़ स्त्री का मूर्ख

पाठ-6

शुकसप्तति

ध्यान दें:

नायक, दानशील गुणीजन का अल्पधन ये तीनों दु:ख देते हैं।

अन्वय- प्रावृट्समयप्रवास: यौवनदिवसे दारिद्र्यम्, तथा च प्रथमस्नेनहवियोग: इति त्रीण्यपि गुरुकाणि दु:खानि।।

अन्वयार्थ:- वर्षाकाल में परदेश में रहना अर्थात् प्रिया से वियुक्त रहना, यौवनावस्था में दारिद्र्य धनाभाव के कारण मन की अभिलाषाएँ पूरी न हो पाये। प्रथम स्नेह करते ही प्रिय का वियोग ये तीनों अत्यन्त दु:खदायी हैं।

तात्पर्यार्थ:- वर्षाकाल में विदेश गमन, यौवन में धनाभाव, प्रथम स्नेह में प्रिया का वियोग ये तीन अत्यन्त दु:खकारी है।

अन्वय- अप्रस्तावे पठितम् कण्ठविहीनं गीतं गायनम् मा मा इति भणन्त्याम् सुरतम् इति त्रीण्यपि गुरुकाणि दु:खानि।।

अन्वयार्थ:- अवसर के विपरीत काव्य पढ़ना, स्वरमाधुर्यरहित गाया गीत, नहीं-नहीं कहती स्त्री का सम्भोग, ये तीनों महान दु:ख है।

तात्पर्यार्थ:- अनवसर पर काव्य पढ़ना, स्वर माधुर्य से रहित गीत का गायन, नहीं-नहीं स्त्री का सम्भोग ये तीनों भी महान दु:खकारी है।

सरलार्थ:- यहाँ आदि में शुक कहता है कि किसी की भी अवज्ञा नहीं करनी चाहिए। बालक यदि हित वाक्य को कहता है, तो उसका भी वाक्य स्वीकार्य होता है। कथामुख के द्वारा उसे आशय को कहना ही आरम्भ किया। शुक ने कहा कि पहले सोमप्रभ नामक प्रसिद्ध ब्राह्मणों का स्थान था। वहाँ कोई ब्राह्मण था। उसका नाम था सोमशर्मा। उसकी कन्या रूपलावण्यवती थी। वह विषकन्या नाम से विख्यात हुई। इसलिए कोई भी उससे विवाह की इच्छा नहीं करता था। उस सोमशर्मा ने बहुत खोज करके जनस्थान नामक द्विजस्थान को प्राप्त किया। वहाँ कोई मूर्ख और निर्धन ब्राह्मण था। उसका नाम गोविन्द था। उसके सभी बन्धुओं ने विवाह के लिए अनुमति नहीं दी, परन्तु उसके रूप से मोहित होकर उस गोविन्द ने उससे विवाह किया। वह मोहिनी नाम की विषकन्या रूपसम्पन्न कामकला में निपुण थी। गोविन्द तो मूर्ख और कनिष्ठ था। इसलिए उसको दु:ख हुआ। यह प्रसिद्ध है कि किसी भी मूर्ख की पत्नी यदि कामकला में निपुण होती है तो उसको दु:ख होता है। पुन: यदि कोई भी नायिका रूपगुणसम्पन्न और गुणवती होगी तब नायक यदि गुणहीन होगा तो उसको बहुत दु:ख होगा। और यदि किसी भी दानशील के पास में अल्प धन होता है तो उसका दानशीलत्व उसको दु:ख देता है। जब काव्य पठन का समय नहीं होता तब काव्यपठन पुन: स्वर माधुर्यादि के बिना ही गीतगायन और सम्भोग करने के लिए जिस नारी की इच्छा नहीं है उसके साथ सम्भोग दु:खकारी होता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- द्विजस्थानम् - षष्ठी तत्पुरुष समास।
- रूपौदार्यगुणोपेता - रूपेण औदार्यादिगुणैश्च उपेता युक्ता।
- विज्ञाता - विख्याता
- विदग्धा - कामकलानिपुणा।
- निर्धन: - नास्ति धनम् यस्य स: निर्धन: इति बहुव्रीहिसमास।
- कृतावज्ञेन- बहुव्रीहिसमास।

ध्यान दें:

6.2.2) द्वितीय कथा- विषकन्या की कथा-मूलपाठ-विभाग-2

सान्यदा गोविन्दं पतिमित्यब्रवीत् -''मम पितुर्गेहात्समागताया बहूनि दिनानि संजातानि। ततोऽहं त्वयैव सह गमिष्ये नान्यथा।'' ततः शकटं मार्गयित्वा सभार्यकः स चलितः। यावत्प्रयाति तावत्पथि एको युवा वाग्मी सुरुपः शूरश्च विष्णुनामा ब्राह्मणो मिलितः। तस्य ब्राह्मणस्य तस्याश्चान्योन्यमनुरागः संजातः। उक्तंच-

प्रीतिः स्याद्दर्शनाद्यैः प्रथममथ मनः संगसंकल्पभावो।
निद्राछेदस्तनूत्वं वपुषि कलुषता चेन्द्रियाणां निवृत्तिः॥
ह्रीनाशोन्मादमूर्च्छामरणमिति जगद्यात्यवस्था दशैताः।
लग्नैर्यत्पुष्पबाणैः स जयति मदनः सन्निरस्तान्यधन्वी॥५॥

व्याख्या- वह किसी दिन अपने पति गोविन्द से बोली- मुझे पिता के घर से आए बहुत दिन हो गए हैं। अतः मैं तुम्हारे साथ ही पिता के घर जाऊँगी अन्यथा नहीं।

फिर गोविन्द बैलगाड़ी तलाश कर भार्या के साथ चल दिया। जाते-जाते मार्ग में एक युवक, वक्ता, रूपवान और बलवान विष्णु नामक एक ब्राह्मण मिला। उस ब्राह्मण और विषकन्या का परस्पर अनुराग हो गया। कहा गया है-

अन्वय- सम्यक् निरस्तान्यधन्वी सन् सः मदनः कामदेवः जयति यत्पुष्पबाणैः प्रथमं दर्शनाद् यैः प्रीतिः स्यात् अथ अनन्तरम् मनः संकल्पभावः, निद्राच्छेदः, वपुषि तनुत्वं, इन्द्रियाणां च कलुषता, निवृत्तिः, ह्रीनाशोन्मादमूर्च्छामरणम् इति एताः दश अवस्थाः जगत् याति इति।

अन्वयार्थः- अन्य धनुर्धारियों को अपने सामने न ठहरने देने वाला वीर कामदेव सर्वोत्कृष्ट है जिसके पुष्पशरों के लगने से, प्रथम प्रिय के दर्शन आदि से अनुराग उत्पन्न होता है, तदनन्तर क्रमशः प्रिय से मिलने का मनोऽभिलाष, निद्रा भंग, शारीरिक दुर्बलता, अपने-अपने व्यापार में इन्द्रियों का आलस्य, प्रिय के अतिरिक्त अन्य विषयों में मन की विरक्ति, लज्जा का छूट जाना, उन्माद, मूर्छा और मरण इन दस दशाओं को सारा जगत प्राप्त होता है। अर्थात् सभी पूर्वोक्त दस अवस्थाओं को प्राप्त करते हैं।

सरलार्थः- उस सर्वगुणों से सम्पन्न उस निर्धन महामूर्ख पति गोविन्द को कहा कि बहुत दिनों पहले पिता के घर से आई हूँ। इसलिए वह उसके साथ ही पिता के घर जाना चाहती है। तब पत्नी के वाक्य को सुनकर उस गोविन्द ने एक बैलगाड़ी लेकर उसके पिता के घर की ओर चलना आरम्भ किया। वहाँ रास्ते में एक ब्राह्मण से मिला। वह विद्वान, रूप सम्पन्न और वीर था। उसका नाम विष्णु था। रास्ते में विष्णु के साथ उस विषकन्या का अनुराग हो गया। यहाँ श्लोक में काम की दस दशाएँ वर्णित है। जब कोई किसी के दर्शन से काम बाण के आघात को प्राप्त करता है तब उसकी ये दस दशा होती हैं। यहाँ कहते हैं कि कामदेव धनुर्धारि के मध्य में श्रेष्ठ है, क्योंकि उसके समक्ष कोई भी अपने काम को अपने वश में नहीं कर सकता और उसके पुष्पबाणों के द्वारा प्रिय दर्शनादि में अनुराग उत्पन्न होता है, दूसरी प्रिया के साथ मिलने की अभिलाषा, निद्राभंग, शारीरिक दुर्बलता, इन्द्रियों में कलुषता अर्थात् अपने-अपने व्यापारों में आलस्य, प्रिय के अतिरिक्त विषयों में मन की विरक्ति, लज्जा का अभाव, उन्मत्ता, मूर्छा और मरण ये काम की दस दशा है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- अन्यदा - अन्यस्मिन् कस्मिंश्चित् दिने
- शकटम् - वाहनविशेषः
- वाग्मी- प्रशस्ता वाक् अस्य इति वक्ता, वाक्पटुः।

ध्यान दें:

6.2.3) द्वितीय कथा- विषकन्या की कथा-मूलपाठ-विभाग-3

स पथिको दम्पत्योः पूगपत्रोच्चयं ददाति। इत्येवं ग्राम्यब्राह्मण विष्णोर्विश्वस्तः आत्मनो निरोध संगभयादुत्तीर्य तं गन्त्रीवाहमारोहयति। विष्णुना च पत्यौ वृक्षान्तरगते सा मोहिनी भुक्ता आत्मवशीकृता। तया चात्मीयं नाम गोत्रं कुलक्रमं चाज्ञापितः। पत्युश्च समागतस्य 'त्वं चोरोऽसीति' गन्त्रारोहमं कुर्वतो निषेधः कृतः। विष्णुरपि तां गृहीत्वा गोविन्दं धर्षितवान। ततस्तयोः केशाकेशि संवृत्तम्। गोविन्दस्तु विष्णुना विषकन्याप्रभावेण निर्जितः। ततस्तां गृहीत्वा विष्णुः स्वगृहं प्रतिचलितः। गोविन्दः पृष्ठस्थो मार्गासन्ने ग्रामे गत्वा फूत्कृतवान्- 'अनेन चौरेण मम भार्या गृहीता। त्रायतां ताम्। मम शरणं भो जनाः'।

अथ ग्रामाधिपेन विष्णुर्मोहिनीयुतो धृतः। पृष्ठेनोत्तरं दत्तं विष्णुना यथेयं मया परिणीता। मदीयां च भार्यामेष पथिको मार्गे दृष्ट्वा ग्रहिलो बभूव। गोविन्देनापि पृष्टेन इदमेवोत्तरितम। ततो मन्त्री तयोरेकमेवोत्तरं श्रुत्वा जात्यादिकं पृष्टवान्। त्रयमपि तु संवदति ततः कथं निश्चयः।' इति शुक प्रश्नः।

व्याख्या- वह पथिक पति पत्नी को सुपारी पान देता। इस प्रकार उस मूर्ख ब्राह्मण ने विष्णु पर विश्वास कर लिया और मेरे विषय में कहीं पत्नी में इसका अनुराग है- ऐसा न सोचने लगे इस भय से स्वयं उतर कर उस ब्राह्मण को गाड़ी का चालक बना कर चढ़ा दिया। पति के वृक्षों की आड़ में पड़ जाने पर विष्णु ने उसका भोग किया और अपने अधीन बना लिया। मोहिनी ने अपना नाम, गोत्र और कुल उसे बता दिया। पति के आ जाने पर तुम चोर हो- यह कह कर विष्णु ने उसे गाड़ी पर चढ़ने से रोक दिया। और उसे ग्रहण कर गोविन्द पर आक्रमण कर दिया और अपमानित किया। तब दोनों परस्पर एक दूसरे के केश पकड़ कर लड़ने लगे। विषकन्या के प्रभाव से गोविन्द विष्णु से पराजित हो गया। तब विष्णु उसे लेकर अपने घर की ओर चला।

गोविन्द पीछे-पीछे चलता रहा। मार्ग के समीपवर्ती गांव में जाकर गुहार लगायी कि चोर ने मेरी पत्नी ग्रहण कर ली। उस मोहिनी की रक्षा करो। मैं तुम लोगों की शरण में आया हूँ।

तब गाँव के मुखिया ने मोहिनी समेत विष्णु को पकड़ लिया। तब पूछने पर विष्णु ने उत्तर दिया कि मैनें इससे विवाह किया है। मेरी पत्नी को मार्ग में देखकर यह पथिक ग्रहण करना चाहता है। गोविन्द ने भी पूछने पर यही उत्तर दिया। तब मन्त्री ने दोनों का एक उत्तर सुनकर जाति आदि पूछी। तीनों ठीक ठीक कहते हो तो कैसे निश्चय होगा। ऐसा शुक का प्रश्न है।

सरलार्थः- उस विष्णु ने उन दोनों को पान सुपारी दी थी। वह ग्राम्य ब्राह्मण गोविन्द उसके वचनों से विश्वस्त हुआ। वह विष्णु उस बैलगाड़ी के चालक के रूप में था। फिर जब गोविन्द अन्य वृक्ष की ओर गया तब विष्णु के द्वारा वह विषकन्या वशीकृत हुई। उसने भी अपने नाम कुलादि परिचय को उससे कहा। फिर जब गोविन्द वहाँ आया तब वह चोर है गोविन्द के प्रति विष्णु ने कहा और उसकी अवमानना की। फिर दोनों के मध्य में विवाद हुआ। किन्तु विषकन्या के प्रभाव से विष्णु जीता। फिर विष्णु ने उसे स्वीकार कर अपने घर की ओर चलना प्रारम्भ किया।

गोविन्द ने समीप के ग्राम में जाकर कहा कि चोर ने उसकी पत्नी का ग्रहण कर लिया। उसकी रक्षा करो। तब ग्राम के मुखिया ने मोहिनी समेत विष्णु को पकड़ लिया। फिर विष्णु ने कहा कि यह मेरी पत्नी है। गोविन्द ने भी यही कहा कि उसकी पत्नी को पकड़कर ले जा रहा है। तब इस समस्या के समाधान के लिए मन्त्री आया। मन्त्री ने जब जात इत्यादि पूछी तब उन्होंने सत्य कहा। फिर समाधान किस प्रकार से होगा ऐसा शुक का प्रश्न था।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- दम्पत्योः - जाया च पतिश्च इति दम्पती तयोः।

ध्यान दें:

- पूगपत्रोच्चयम् - पूगम् पूगफलम् पत्रम् ताम्बूलपत्रम् तयोः उच्चयः अतिषयः तम्।
- गोविन्दम् - धर्षितवान् आक्रम्य गोविन्दस्य अवमानं कृतवान्।
- केशाकेशि- केशेषु-केशेषु गृहीत्वा इदं युद्धं प्रवृत्तम्।
- ग्रहिलः - जिघृक्षुः।

6.2.4) द्वितीय कथा- विषकन्या की कथा-मूलपाठ-विभाग-4

ततस्तया पृष्टः शुकः आह- मन्त्रिणोक्तम्-'कियन्ति दिनानि संड्गमस्य युष्माकं प्रयाणे'। तैरुक्तम्-''कल्ये भोजनानन्तरं संवृत्तः समागमः''। ततो मन्त्रिणा ब्राह्मणौ पृथक्पृथक्पृष्टौ-'किमनया कल्ये भोजनवेलायां भुक्तम्।' यच्च तया भुक्तं तद्गोविन्दो जानाति इतरस्तु न। ततः स विडम्बितः सचिवेन। गोविन्दः शिक्षितः। धिगमां ब्राह्मणी परत्रेह च दुःखदां मुंच शीघ्रम्। उक्तंच-

वैद्यं पानरतं नटं कुपठितं मूर्खं परिव्राजकम्।
योधं कापुरुषं विटं विवयसं स्वाध्यायहीनं द्विजम्॥
राज्यं बालनरेन्द्रमन्त्रिरहितं मित्रं छलान्वेषि च।
भार्यां यौवनगर्वितां पररतां मुंचन्ति ये पण्डिताः॥6॥

तथापि कामिनीलुब्धो धिक्कृतः साधुभिस्तदा।
तामेवादाय चलितस्तत्कृते निहतः पथि॥7॥

तद्देवि यः करोत्येवमवज्ञां वृद्धशिक्षितः।
स पराभवमाप्नोति गोविन्दो ब्राह्मणो यथा॥8॥
इति कथां श्रुत्वा प्रभावती सुप्ता॥

व्याख्या- तब प्रभावती से पूछा गया शुक बोला मन्त्री ने कहा- तुम कितने दिन की यात्रा से साथ हो। आपकी यात्रा कब आरम्भ हुई। उन सभी ने कहा- प्रातः भोजन के पश्चात् साथ हुआ। फिर मन्त्री ने अलग-अलग दोनों ब्राह्मणों से पूछा- इस मोहिनी ने भोजन के समय क्या खाया। उसने जो भोजन किया वह गोविन्द ही जानता था दूसरा नहीं। तब वह दूसरा ब्राह्मण मन्त्री से तिरस्कृत हुआ। गोविन्द को शिक्षा दी कि धिक्कार है इस ब्राह्मणी पर लोक में और परलोक में दुःखदायिनी इस स्त्री का शीघ्र ही परित्याग करो। और कहा-

अन्वय- ये पण्डिताः ते पानगतं वैद्यं कुपठितम् नटं मूर्खं परिव्राजकं कापुरुषं योधं विवयसं वृद्धं विटं स्वाध्यायहीनम् द्विजं बालनरेन्द्रमन्त्रिरहितं राज्यं छलान्वेषि मित्रं यौवनगर्वितां पररतां भार्यां पत्नीं च मुंचन्ति।

अन्वयार्थः- जो पण्डितजन मद्य पीने वाले वैद्य, ठीक संवाद न कहने वाले अभिनेता, मूर्ख सन्यासी, कायर योद्धा, वृद्ध विट, वेदादि नहीं पढ़ने वाले ब्राह्मण, मंत्री रहित बाल राजा के राज्य, कपटचारी मित्र, तथा यौवनोन्मत्त एवं परपुरुष में आसक्त पत्नी का परित्याग कर देते हैं।

तात्पर्यार्थः- इस श्लोक में पण्डित किसका परित्याग करते हैं बताया गया है। और वे पण्डित- शराब पीने वाले चिकित्सक, बुरा पढ़ने वाले नट, मूर्ख सन्यासी, डरपोक योद्धा, वेश्यालय को जाता हुआ वृद्ध, स्वाध्याय से रहित ब्राह्मण, मंत्री रहित बाल राजा का राज्य, कपट व्यवहार करने वाले बन्धु, यौवन से गर्वित और अन्य पुरुष के पास जाती हुई को छोड़ देते हैं।

अन्वय- तथापि तदा कामिनीलुब्धः साधुभिः धिक्कृतः तामेव आदाय चलितः पथि तत्कृते निहतः।

पाठ-6

शुकसप्तति

ध्यान दें:

अन्वयार्थः- फिर भी सचिव के द्वारा शिक्षा दी गई उस समय कामिनी में लुभाया हुआ, सज्जनों के द्वारा धिक्कारा गया, वह उस मोहिनी को लेकर चला और रास्ते में उसी के लिए मारा गया।

तात्पर्यार्थः- कामिनी पर आसक्त गोविन्द को मन्त्री के द्वारा उपदेश दिया गया। और सज्जनों के द्वारा तिरस्कृत हुआ। फिर भी काम के वशीभूत उसे ही स्वीकार करके चला। और अन्त में रास्ते में उसका नाश हुआ।

अन्वय- तत् हे देवी वृद्धशिक्षितः यः एवम् अवज्ञां करोति सः गोविन्दः ब्राह्मणः यथा पराभवं आप्नोति।

अन्वयार्थः- इसलिए हे देवी! वृद्धों के सिखाने पर भी जो इस प्रकार उनके वचनों की अवमानना करता है, उपदेश का अनुसरण करके कार्य नहीं करता वह गोविन्द ब्राह्मण के समान ही नाश को प्राप्त करता है।

तात्पर्यार्थः- क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए गुरुजनों के द्वारा ज्ञान कराने पर भी जो नहीं सुनता है उसका, गोविन्द ब्राह्मण के समान नाश होता है।

सरलार्थः- ऐसा पूछने पर वह शुक बोला कि तब मन्त्री ने कहा- आप कितने दिन से साथ हैं तब उन्होंने कहा कि प्रातः भोजन के उपरान्त से साथ हैं। फिर मन्त्री ने गोविन्द और दूसरे ब्राह्मण से अलग-अलग पूछा- उस मोहिनी ने प्रातः क्या खाया। गोविन्द जानता था उसने प्रातः क्या खाया। उसने सत्य कहा। विष्णु ने झूठ बोला। तब मन्त्री ने उस विष्णु को दण्डित किया और उस विषकन्या का तिरस्कार किया। यहाँ श्लोक में पण्डितों किस विषय का और किस व्यक्ति का परित्याग करते हैं इस विषय में कहा गया है।

जो वैद्य मद्यपान करता है उसे पण्डित त्याग देता है। जो अभिनेता उचित प्रकार से कथनों को नहीं कहता, कुत्सित बोलने पर उसे पण्डित त्याग देते हैं। जो सन्यासी मूर्ख हो, जो योद्धा कायर हों, जो पुरुष वृद्ध हो किन्तु वेश्यालय जाता है अर्थात् जिसकी वृद्ध होने पर भी कामशान्ति नहीं हुई। जो ब्राह्मण वेद स्वाध्यायादि नहीं करता, जिस राज्य में बालक राजा हो और मन्त्री नहीं हो वैसा राज्य, जो मित्र सदैव स्वार्थ को देखता है और कपटी स्वभाव से युक्त, और जो पत्नी यौवन उन्मत्त हो अपने स्वामी की अवज्ञा कर दूसरे पुरुष के पास जाती है ऐसों का पण्डित त्याग करते हैं। इस श्लोक से यह शिक्षा प्राप्त होती है कि इनके साथ कभी भी बन्धुत्व नहीं करना चाहिए यह सुनकर प्रभावती सो गई।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- कल्ये - प्रभातसमये
- विडम्बितः - अवमानितः
- शिक्षितः - उपदिष्टः

पाठगत प्रश्न-2

17. विषकन्या के ब्राह्मणस्थान का नाम क्या है?
18. विषकन्या के पिता का नाम क्या है?
19. सोमशर्मा की कन्या का नाम क्या है?

ध्यान दें:

20. विषकन्या का पति कहाँ रहता था?
21. मोहिनी के पति का नाम क्या है?
22. दानशील का क्या दु:खदायी है?
23. मूर्ख पति किस प्रकार की पत्नी को दुखदायक है?
24. शूर ब्राह्मण का नाम क्या है?
25. विष्णु ने उन दोनों को क्या दिया?
26. कब उनका समागम हुआ?
27. .....भी हित वाक्य ग्राह्य है?
28. सोमशर्मा के वासस्थान का नाम- (ब्रह्मस्थल/जनस्थान/जनपुरम्/सोमप्रभम्)
29. गोविन्द की क्या नहीं थी-(मूर्खता/निर्बुद्धिता/विद्वत्ता/उपस्थिता बुद्धि:)
30. विषकन्या ने क्या आधार बना कर सोचा (विद्याबल/पिता की धनसम्पत्ति/दाम्भिकत्व/अपना रूपलावण्य यौवन)
31. .....पति स्त्रियों में (सुरुप/अविदग्ध/विनम्र/चतुर)

6.3) तृतीय कथा- बुद्धि की हर जगह विजय होती है

जिसकी बुद्धि उसका बल, निर्बुद्धि का कहाँ बल। अर्थात् जिसके बुद्धि है वह अत्यन्त संकट से भी अपनी रक्षा कर सकता है। इसलिए जो बुद्धिमान है वह बलवान है। जिसको बुद्धि नहीं है वह वास्तव में दुर्बल है। इस प्रसंग में शुकसप्तति ग्रन्थ में प्रभावति का पति व्यापार के लिए अन्य देश को गया। तब उसे समय व्यतीत करने के लिए शुक कथा सुनाता था। बुद्धिमती स्त्री किस प्रकार से अपनी रक्षा करती है यह बताने के लिए शुक ने कथा को सुनाया।

6.3.1) तृतीय कथा- बुद्धि सर्वत्र विजयी है-मूलपाठ-विभाग-1

हसन्नाह शुको याहि यदि कर्तुं त्वमुत्तरम्।
वेत्सि यथा श्रियादेव्या नूपुरेऽपहृते कृतम्॥1॥

अन्वय- शुक: हसन् आह नूपुरे अपहृते यथा श्रियादेव्या कृतम् तथैव त्वम् उत्तरम् कर्तुम् यदि वेत्सि तर्हि याहि।

अन्वयार्थ:- शुक ने हँस कर कहा- यदि नुपूर के अपहृत हो जाने पर परपुरुष से मिलने पर सोए हुए उसके श्वसुर के द्वारा नुपूर अपहृत होने पर श्रियादेवी ने जैसा उत्तर दिया यदि वैसा प्रतिकार करना जानती हो तो जाओ।

सरलार्थ:- वणिक जब व्यापार के लिए गया तब उसकी पत्नी प्रभावती अकेली थी। तब वसन्तकाल था। इसलिए रमण सुख प्राप्त करने के लिए उसकी इच्छा हुई। उसके शमन के लिए शुक ने कहा कि श्रियादेवी ने जैसे परपुरुष का संग करके भी अपनी बुद्धि के बल से अपनी रक्षा की वैसे यदि तुम प्रभावती भी कर सकती हो तो परपुरुष के पास जाने योग्य हो। फिर शुक ने कथा को आरम्भ किया।

ध्यान दें:

6.3.2) तृतीय कथा- बुद्धि सर्वत्र विजयी है-मूलपाठ-विभाग-2

अस्ति शालीपुरं नाम नगरम्। तत्र शालिगो वणिक्। तत्पत्नी जयिका। तयोः सुतो गुणाकरो नामाभूत्। तार्या श्रियादेवी। सा चापरेण सुबुद्धिनाम्ना वणिजा सह रमते। ततो लोकापवादेऽपि संज्ञातेऽनुरक्तस्तदीयः पतिर्न किमपि कर्णे करोति।

उक्तंच-

रक्ताः पृच्छन्ति गुणान् दोषान् पृच्छन्ति ये विरक्ताः।
मध्यस्थाः पुनः पुरुषा दोषानपि गुणानपि पृच्छन्ति॥

किंच-

महिलारक्ताः पुरुषाश्छेका अपि न सम्भरन्ति आत्मानम्।
इतरे पुनस्तरुणीनां पुरुषाः सलिलमेव हस्तगतम्॥

व्याख्या- शालिपुर नामक नगर है। वहाँ शालिग नामक वणिक रहता था। उसकी पत्नी जयिका थी। उनके गुणाकर नाम का पुत्र था। उसकी पत्नी श्रियादेवी थी। वह सुबुद्धि नामक दूसरे बनिए के साथ रमण करती थी। लोक निन्दा होने पर भी उसमें अनुरक्त उसका पति किसी भी बात को नहीं सुनता था अर्थात् विश्वास नहीं करता था।

अन्वय-रक्ताः गुणान् पृच्छन्ति विरक्ताः दोषान् पृच्छन्ति। मध्यस्थाः पुरुषाः पुनः गुणान् अपि दोषान् अपि पृच्छन्ति।

अन्वयार्थः- कहा है- अनुरक्त गण पूछते हैं उनमें गुण देखते हैं। विरक्त जन दोष पूछते हैं उनको दोष से ही प्रयोजन है। मध्यस्थ पुरुष गुण और दोष पूछते हैं उनको गुण और दोष दोनों से प्रयोजन है।

तात्पर्यार्थः- जो प्रीतिमन्त व्यक्ति हैं वे गुणों को चाहते हैं। प्रीति से रहित व्यक्ति दोष ही चाहते हैं। मध्यस्थ व्यक्ति तो दोनों चाहते हैं।

अन्वय

महिलारक्ताः छेकाः पुरुषाः अपि न आत्मानं संभरन्ति।
पुनः इतरे पुरुषाः तरुणीनां हस्तगतं सलिलमेव॥

अन्वयार्थः- स्त्रियों में अनुरक्त नागरिक निपुण होते हुए भी अपने अधिकार नहीं रख पाते। स्त्रियों के वश में रहते हैं। और अन्य पुरुष स्त्रियों के हस्तगत जल के समान नहीं होते हैं। जैसे अंजलिगत जल धीरे-धीरे बह जाता है उसी प्रकार वे स्त्रियों के हाथ में नहीं आते और स्वाधीन होते हैं।

तात्पर्यार्थः- पुरुषों में जो महिला में अनुरक्त होते हैं उनका अपने ऊपर अधिकार नहीं है। फिर दूसरे जो पुरुष होते हैं वे स्त्रियों के हाथों में नहीं रहते अपितु स्वाधीन होते हैं।

सरलार्थः- पहले शालिग्राम नाम का एक नगर था। वहाँ एक वणिक रहता था। उसका नाम शालिग था। उसकी पत्नी का नाम जयिका था। उसके पुत्र का नाम गुणाकर और पुत्रवधू श्रियादेवी थी। वह श्रियादेवी सुबुद्धि इस नाम के अन्य पुरुष में आसक्त थीं। सभी इस बात को कहते थे। परन्तु गुणाकर अपनी पत्नी से अत्यन्त प्रेम करता था। इसलिए लोक निंदा को कभी भी नहीं सुनता था। इस प्रकार विद्वान कहते हैं कि अनुरक्त गुणों को पूछते हैं, गुणों का ही ग्रहण करते हैं। विरक्त दोषों को पूछते हैं, दोषों को ही ढूंढ़ते हैं। मध्यस्थ पुरुष दोष एवं गुण सभी को पूछते हैं।

ध्यान दें:

6.3.3) तृतीय कथा- बुद्धि सर्वत्र विजयी है-मूलपाठ-विभाग-3

अन्यदा सा श्वशुरेण नरान्तरसहिता सुप्ता दृष्टा। ततश्चरणान्नूपुरं श्वशुरेण चोत्तारितं तया च ज्ञातम्। तत: सा तं जारं प्रस्थाप्य भर्तारं तत्रानीय तेन सह सुप्ता। निद्रान्तरे च पतिरुत्थापित: कथितंच-त्वदोयेन पित्रा नूपुरमस्मत्पादादवतार्य गृहीतम्। एवंविधं च पातकं क्वापि न दृष्टं यद्वधूपादात् श्वशुरो नूपुरं गृह्णाति। तेनोक्तं- प्रात: पितु: सकाशात्स्वयमर्पयिष्यामि। तेन च गुणाकरेण पितरं निर्भर्त्स्य तत्सकाशान्नूपुरं याचितम्। पित्रा चोक्तम्-यदियं परपुरुषेण सह सुप्ता दृष्टा अतो मया नुपुरं गृहीतम्।

व्याख्या- एक दिन उस श्रियादेवी को परपुरुष के साथ सोई हुई उसके ससुर ने देखा। उसके पैर से ससुर ने नुपुर उतार लिया। श्रिया देवी ने जान लिया। फिर वह उस परपुरुष को भेजकर अपने पति को लायी और उसके साथ सो गयी। निद्रा के बीच में पति को उठाया और कहा- तुम्हारे पिता ने हमारे पैर से नुपुर उतार कर रख लिया है। इस प्रकार का पाप कर्म कभी नहीं देखा कि वधु के पैर से श्वसुर नूपुर उतार लें। उसने कहा- प्रात: पिता से लेकर मैं तुम्हें स्वयं दूंगा। उस गुणाकर ने फटकार कर पिता से नूपुर को मांगा। पिता ने कहा इसे मैंने परपुरुष के साथ सोयी देख कर नुपुर लिया था।

सरलार्थ:- एक दिन वह श्रियादेवी उस सुबुद्धि पर पुरुष के साथ शयन करती है। तब उसके ससुर ने उसे देखा। उसके ससुर ने उसके पैर से नुपुर निकाल लिया अपने पुत्र को कहने के लिए। श्रियादेवी ने यह सब जान लिया। उसने सुबुद्धि को अन्यत्र भेजकर वहाँ अपने पति को लाकर शयन किया। निद्रा के बीच में उसने पति से कहा कि उसके ससुर पैर से नुपुर ले गए इस प्रकार का पाप कर्म उसने कभी नहीं देखा। तब पति ने कहा कि वह प्रात: पिता से बात करेगा। फिर दूसरे दिन प्रात: उसने पिता की भर्त्सना की उनसे नुपुर को मांगा। तब उसके पिता ने कहा कि उसने रात्रि ने उस श्रियादेवी को अन्य पुरुष के साथ शयन करते देखा। इसलिए उसके पैर से नुपुर को लिया।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- उत्तारितम् - गृहीतम्
- प्रस्थाप्य- सम्प्रेष्य

6.3.4) तृतीय कथा- बुद्धि सर्वत्र विजयी है-मूलपाठ-विभाग-4

तयोक्तम्-त्वत्पुत्रेण सह सुप्ताहमासम्। इत्यर्थे दिव्यं करोमि। अत्रैव ग्रामे उत्तरस्यां दिशि यक्षोऽस्ति। तस्य जंघान्तरान्निर्गमिष्यामि। य: कश्चित्सत्यो भवति स जंघयोरन्तरान्निष्क्राम्यतीति प्रसिद्धम्। एवं श्वसुरेण चांगीकृते सा कुलटा सति दिने जारस्य गृहे गत्वा तमुवाच- भो कान्त! प्रातरहं दिव्यार्थं यक्षस्य जंघान्तरान्निर्गमिष्यामि। त्वया तत्र समागत्य वातमलत्वमाश्रित्य मम कण्ठग्रहो विधेय:। तेन च तथोक्ते सा स्वगृहमाजगाम।

व्याख्या- उस श्रिया देवी ने कहा- मैं तुम्हारे पुत्र के साथ सोयी थी। इसके लिए मैं देवी शपथ ले सकती हूँ। इसी गाँव में उत्तर की ओर यक्ष है। उसके जंघा प्रदेश से बाहर निकलूंगी। जो सच्चा होता है वह उसके जांघों के बीच से निकल पाता है ऐसा प्रसिद्ध है। ऐसा करने के लिए ससुर के स्वीकार कर लेने पर वह कुलटा दिन रहते ही उपपति के घर जाकर उससे बोली- हे प्रिय! प्रात: मैं देवी शपथ के लिए यक्ष की जांघों के बीच से निकलूँगीं। तुम वहाँ आकर पागल बन कर मेरा कण्ठ पकड़ लेना। उसके द्वारा जैसा कहा वैसा करने के लिए कह कर अपने घर को आ गई।

सरलार्थ:- अपने पति से पिता के वाक्य को सुनकर उसका विरोध करके वह कहती है कि उसने गुणाकर के साथ शयन किया। उसका प्रमाण देते हुए वह यह कहती है कि उस ग्राम में एक यक्ष मन्दिर

ध्यान दें:

है। वहाँ जो सत्य कहता है वह उस यक्ष की जांघों से बाहर आ सकता है। वैसा मैं करूंगी ऐसा उसने कहा। तब ससुर ने भी स्वीकार किया। फिर उसने परपुरुष के पास जाकर कहा। कि वह प्रात: जब मन्दिर को जाएगी तब पागल बन कर उसके कण्ठ का आलिंगन करना। इस प्रकार सुबुद्धि से कहकर वह घर को आ गयी।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- दिव्यम् - दैवी परीक्षा, यत: पुरा अपराधा सदोष: निर्दोषों वेति निर्णीयते स्म।
- वातूलत्वमाश्रित्य - वातूल: उन्मत्त: तस्य भावं गृहीत्वा।

6.3.5) तृतीय कथा - बुद्धि सर्वत्र विजयी है-मूलपाठ-विभाग-5

अथ प्रात: समस्तमहाजनं मेलयित्वा पुष्पाक्षतादिकमादाय यक्षायतयने गत्वा समीपसरसि स्नानं कृत्वा यक्षपूजार्थं समागच्छन्त्यास्तस्या: पूर्वसंकेतितो जारो ग्रहिलीभूतस्तत्कण्ठे निजबाहुद्वयं योजयामास। तत आ: किमेतदित्यभिधाय सा पुन: स्नानार्थं ययौ। सोऽपि ग्रहिलो लोकै: कण्ठे गृहीत्वा तस्मात्प्रदेषाद्दूरीकृत:। सापि स्नानं कृत्वा यक्षसमीपमागत्य पुष्पगन्धाद्यैरभ्यर्च्य सर्वलोकानां श्रृण्वतामुवाच-भो भगवन्यक्ष! निजभर्तारमेनं च ग्रहिलं विना यद्यन्यपुरुष: स्पृषति कदाचन मां तदा तव जंघाभ्यां सकाशान्मम निष्क्रमणं मा भवत्वित्यभिधाय सर्वलोकसमक्षमेव जंघयोर्मध्ये प्रविष्य निष्क्रानता। यक्षोऽपि तद्बुद्धिं मनसि ष्लाघमान एव स्थित:। सापि सतोति समसतलोकै: पूजिता स्वभवनं जगाम। एवं चेत् श्रियादेवीवत्कर्तुं जानासि तदा व्रज। इति श्रुत्वा प्रभावती सुप्ता।

व्याख्या- इसके बाद प्रात: सभी श्रेष्ठजनों को एकत्र कर पुष्पाक्षत आदि लेकर यक्ष के मन्दिर में जाकर समीपवर्ती सरोवर में स्नान कर यक्ष पूजा के लिए आती हुई उसके कण्ठ में, पूर्व से ही संकेत किए गए, पागल बने हुए उसके उपपति ने अपनी दोनों भुजाएँ डाल दी। तब ओह यह क्या- ऐसा कहकर पुन: स्नान के लिए चली गई। उस पागल बने व्यक्ति को लोगों ने गला पकड़ कर उस स्थान से दूर किया। वह श्रिया देवी भी स्नान कर यक्ष के पास आकर पुष्प गन्धादि से सम्यक् पूजन कर सब लोगों को सुना कर कहा- हे भगवन यक्ष मेरे पति तथा इस पागल के अतिरिक्त यदि और किसी पुरुष ने कभी मेरा स्पर्श किया हो तो तुम्हारी जांघों से मेरा निष्क्रमण न हो सके- ऐसा कहकर सब लोगों के सामने ही जांघों के मध्य में प्रवेश कर निकल गई। यक्ष भी मन में उसकी बुद्धि की प्रशंसा करता हुआ स्थित रहा। वह भी सती मानी गयी, लोगों से सम्मानित हो अपने घर गयी। इस प्रकार यदि श्रिया देवी की भांति करना जानती हो तो जाओ। यह कथा सुनकर प्रभावती सो गई।

सरलार्थ:- दूसरे दिन प्रात: सभी को एकत्रित करके पुष्पादि लेकर यक्ष के मन्दिर को गई। वहाँ समीप में स्थित सरोवर में स्नान करके यक्ष के पूजन के लिए जब मन्दिर की ओर जाती है तब वह परपुरुष सुबुद्धि पागल बनकर उसके कण्ठ का आलिंगन करता है तब यह क्या कहकर वह पुन: स्नान को गयी। स्नान करके मन्दिर में प्रवेश कर यक्ष देवता की पूजा करी। फिर सबको सुनाते हुए उच्च स्वर में कहा कि उसके पति एवं इस पागल के अतिरिक्त यदि किसी पुरुष ने मुझे स्पर्श किया हो तो मैं जंघा से न निकल सकूँ। फिर वह सभी के सामने यक्ष की जंघा के नीचे से बाहर आ गई। यक्ष ने उसकी बुद्धि जानकर उसकी मन में स्तुति की। वह श्रियादेवी भी सती होकर सभी के द्वारा प्रशंसित हुई। इस प्रकार यदि अपनी रक्षा में समर्थ हो तो जाओ। कथा सुनकर प्रभावती सो गई।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- ग्रहिलीभूत: - भूताविष्ट:, आत्मानम् उन्मत्तम् प्रदर्शयन्निव तस्या जार: इत्यर्थ:।

- सर्वलोकानां - श्रृण्वताम्- सर्वान् जनान् श्रावयित्वा इत्यर्थः।
- श्लाघमानः - प्रशंसां कुर्वन्।

पाठगत प्रश्न-3

32. नगर का नाम क्या है?
33. वहाँ स्थित बनिए का नाम क्या है?
34. शालिग की पत्नी का नाम क्या है?
35. शालिग के पुत्र का नाम क्या है?
36. गुणाकर की पत्नी का नाम क्या है?
37. वह किस पुरुष के साथ रमण करती है?
38. कौन केवल गुणों का ही ग्रहण करते है?
39. गुण दोषों को भी कौन ग्रहण करता है?
40. ससुर ने श्रिया देवी के पास से क्या लिया?
41. सत्य के लिए कौन प्रमाणिक है?

पाठ सार

इस पाठ में शुकसप्तति ग्रन्थ से तीन कथाएं ली गई है। प्रथम कथा का नाम सुदर्शन की बुद्धि था। उस पाठ में राजा सुदर्शन की विचार क्षमता के विषय में ज्ञात होता है। विमल नामक एक वणिक् था। उसकी दो पत्नी थी। उस ग्राम में एक मूर्ख था। उसने उसकी पत्नी को प्राप्त करने के लिए देवी अम्बिका की उपासना करके विमल के समान रूप को प्राप्त किया। फिर जब विमल घर से बाहर गया तब वह उसके घर को गया। वह सभी को धनादि देता था। उससे सभी प्रसन्न हुए। फिर जब वास्तविक विमल आया, तब सभी ने उसे अन्य बताया। तब वह राजा के पास गया। राजा ने उसकी दोनों पत्नियों रुक्मिणी और सुन्दरी से पूछा कि उनके पति ने विवाह के समय उन्हें क्या दिया और क्या बातचीत की। वास्तविक विमल ने सभी सच कहा। तब राजा ने उसे सपत्नी आदर से घर को भेजा। अन्य धूर्त को दण्डित किया।

द्वितीय कथा में गुरुजनों के उपदेश को सदैव सुनना चाहिए इस विषय में शुक ने कहा। गोविन्द नामक ब्राह्मण था। उसने गुरुजनों और मित्रजनों का निषेध कर उल्लंघन कर मोहिनी नामक विषकन्या के साथ विवाह किया। एक दिन जब वह पति के साथ पिता के घर को जाती है तब मार्ग में विष्णु नामक एक ब्राह्मण ने उनके साथ चलना आरम्भ किया। वह मोहिनी उस विष्णु पर अनुरक्त हो गयी। उस विष्णु ने गोविन्द को उतार कर उसे अपने साथ लेकर अपने घर की ओर जाने लगा। गोविन्द ने ग्राम के मुखिया से कहा। उसने विष्णु और मोहिनी को पकड़ा। तब मन्त्री ने आकर समाधान के लिए गोविन्द को पूछा कि मोहिनी ने प्रातः क्या खाया। विष्णु भोजन के पश्चात् आया इसलिए वह उचित रूप से नहीं जानता था। मन्त्री ने उसके लिए दण्ड की उद्घोषणा की। और गोविन्द को मोहिनी का परित्याग करने के लिए कहा। क्योंकि वह स्त्री अपने पति का त्याग कर अन्य किसी के भी साथ उसके घर जाती है

ध्यान दें:

ध्यान दें:

वह पतिव्रता नहीं है। इसलिए उसका परित्याग करने का उपदेश दिया।

तृतीय कथा में शुक ने कहा कि शालिपुर नामक नगर में गुणाकर नामक वणिक् था। उसकी पत्नी श्रिया देवी थी। वह सुबुद्धि नामक अन्य पुरुष में अनुरक्त था। एक दिन सुबुद्धि के साथ सोते समय उसके ससुर ने उसे देखा। उसने छल से उसके पति से कहा कि ससुर ने झूठ देखा। दूसरे दिन जब सभी के ने विश्वास नहीं किया था, तब उसने कहा ग्राम में यक्ष मन्दिर है, वहाँ यक्ष की जाघों के मध्य से आऊँगी। जो आ सकी तो सत्यवादी है ऐसी प्रसिद्धि थी। फिर उसने सुबुद्धि से कहा कल मन्दिर जाने से पहले पागल बन का उसका कण्ठ से आलिंगन करना। प्रात: जब वह स्नान करके जाती है तब वह वैसे ही उसके कण्ठ का आलिंगन करता है। फिर वह पुन: स्नान करके यक्ष को कहती है कि यदि उसके पति और इस पागल के अतिरिक्त किसी भी पुरुष ने स्पर्श किया हो तो मैं बाहर नहीं आ सकूँ। वह बाहर आ गयी, यक्ष ने भी उसके वचन को सुनकर प्रशंसा की।

आपने क्या सीखा

1. राजा सुदर्शन की विचार क्षमता।
2. बालकों से हित वाक्य ग्रहणीय है।
3. बुद्धि बल से अपनी रक्षा करनी चाहिए।

योग्यता विस्तार

ग्रन्थ विस्तार

कथा का बोध और आनन्द समान ही सिद्ध होता है। इसलिए इस पाठ में जो कथा दी गई है इस प्रकार की कथा का अधिक अध्ययन करना चाहिए। यहाँ कथा की विस्तृत व्याख्या को पढ़कर यदि पाठक अधिक ज्ञान प्राप्त करना चाहते है तो-

1. पण्डित रमाकान्त त्रिपाठी की व्याख्यायित शुकसप्तति पुस्तक को पढ़ें।
2. आचार्य गुरुप्रसाद शास्त्री द्वारा रचित पंचतन्त्र की अभिनव राजलक्ष्मी नाम की संस्कृत टीका को पढ़ें।

भाव विस्तार

1. यहाँ जो कथा हैं उनके आप नाटक कर सकते हैं।
2. छात्रों को सरलता से उपदेश के अवसर पर ये कथा सुना सकते हैं।
3. यहाँ सुदर्शन राजा और मन्त्री के चरित्र का अवलोकन करना चाहिए।
4. उपस्थित बुद्धि बल के द्वारा कैसे रक्षा होती है यह जान सकते है।

भाषा विस्तार

1. यहाँ जो समास है उनकी तालिका बनाएँ।
2. यहाँ दिए गए कठिन पदों की अर्थ सहित तालिका बनाएँ।
3. जो नवीन शब्द ज्ञात हुए उनका लेखन के समय प्रयोग कीजिए।

ध्यान दें:

पाठगत प्रश्न

1. धूर्त ने किस प्रकार से सभी को अपने वश में कर लिया?
2. राजा ने क्या उपाय का अवलम्बन कर समाधान किया?
3. सुदर्शन की बुद्धि कथा का सार लिखो?
4. तीनों क्या दुख:दायक है व्याख्या कीजिए।
5. जीवन में क्या दु:ख देता है?
6. काम की दस दशाओं को वर्णन कीजिए?
7. पण्डित किन का परित्याग करते हैं?
8. कैसे दम्पत्ती के साथ विष्णु का मिलन हुआ और कहाँ से उनके साथ विवाद हुआ?
9. मन्त्री ने कैसे उनका समाधान किया?
10. विषकन्या कथा का सार बताओ?
11. कौन किन विषयों को ग्रहण करता है, श्लोक कहकर वर्णित कीजिए।
12. श्रियादेवी ने कैसे अपनी रक्षा की?
13. यक्ष देवता ने कहाँ मन से उसकी बुद्धि की प्रशंसा की?
14. बुद्धि सर्वत्र विजयी होती है इस सूक्ति को उदाहरण के साथ प्रतिपादित कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

उत्तर-1

1. अनिरूद्ध वेगी
2. प्रभावती के
3. विशाला
4. सुदर्शन
5. विमल
6. रूक्मिणी और सुन्दरी
7. कुटिल
8. देवी अम्बिका
9. प्रजापीड़न के सन्ताप से उत्पन्न
10. स्वर्ग प्राप्ति के निमित्त
11. विशाला
12. रूक्मिणी और सुन्दरी

ध्यान दें:

13. कुटिल
14. बहुत मान दान आदि से
15. प्रजापीड़न के सन्ताप से
16. स्वर्ग प्राप्ति के

उत्तर-2

17. सोमप्रभ
18. विषकन्या के पिता का नाम सोमशर्मा
19. मोहिनी
20. जनस्थान में
21. गोविन्द
22. कम धन
23. कामकला में निपुण पत्नी
24. विष्णु
25. सुपारी दी
26. प्रातः भोजन के बाद
27. बालक से भी
28. सोमप्रभ
29. विद्वता
30. अपना रूप लावण्य यौवन
31. अविदग्ध

उत्तर-3

32. शालिपुर
33. शालिग
34. जयिका
35. गुणाकर
36. श्रियादेवी
37. सुबुद्धि के
38. अनुरक्त
39. मध्यस्थ
40. श्रिया देवी के नुपुर
41. यक्ष

7

पंचतन्त्र

ध्यान दें:

काव्य कान्ता के समान होता है। उसका अर्थ प्रेमिका जैसे अपने प्रेमी को कथन से सन्मार्ग पर प्रवृत्त करती है वैसे काव्य भी उचित अनुचित के विवेक को उत्पन्न करता है। कथाग्रन्थ का भी यह ही तात्पर्य है। कथा ग्रन्थ भी पशु पक्षियों की कथा के व्याज से हमारा क्या कर्तव्य है क्या अकर्तव्य है, ऐसा उपदेश देता है। जीवन में उन्नति नीतियों के आदर से ही है। कथा ग्रन्थ नीतिमूलक ग्रन्थ भी कहलाते हैं। अर्थात् कथा ग्रन्थों में प्रत्येक कथा की कोई नीति अवश्य होती है। कथाओं में कहीं वक्ता मनुष्य होता हैं और कहीं मनुष्य से अलग प्राणि। इस पाठ में पंचतन्त्र नामक कथाग्रन्थ से दो कथाएँ नीति वाक्यों के साथ उपस्थापन करेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे;

- कथा में वर्णित नीति वाक्यों का ज्ञान प्राप्त कर पाने में;
- कथा रचना विषयक सामान्य परिचय को प्राप्त कर पाने में;
- ग्रन्थ की लेखन शैली का ज्ञान प्राप्त करने में सक्षम होंगे;
- कथा में कही गई नीति को अपने जीवन के परिपालन में प्रयोग कर पाने में;
- समास विषयक ज्ञान प्राप्त कर पाने में;
- वाक्य विन्यास विषयक ज्ञान को प्राप्त कर पाने में;

7.1) प्रथम कथा- मूर्खों का आदर नहीं होता है।

7.1.1) पूर्वपीठिका

अधिक अध्ययन के द्वारा जानना भी मनुष्य के कार्यकाल में उपयोगी नहीं होता है तो अधिक अध्ययन का क्या लाभ है। अधिक समय तक पढ़ा हुआ ज्ञान पुस्तक में स्थित हो तो हास्यापद होता है।

पाठ-7

पंचतन्त्र

ध्यान दें:

क्योंकि उसके प्रयोग का वास्तविक ज्ञान नहीं है। वास्तविक ज्ञान के अभाव से शास्त्र से कभी अन्य बोध होता है। और जानकर कभी समाज में विपत्ति का जनक होता है। देखा गया है कि कोई शास्त्र को अन्यथा व्याख्यायित करता है उससे समाज में अनेक प्रकार के विघ्न उपस्थित होते हैं। इसलिए अध्ययन से प्राप्त ज्ञान का कैसे उपयोग करना चाहिए इस विषय में विचार करना चाहिए। अर्थात् प्रायोगिक ज्ञान आवश्यक है। अन्यथा उसकी गणना मूर्खों में होती है। संसार में जिनका जैसा आचार व्यवहार है वे विवर्जित मनुष्य शास्त्रों में निपुण होने पर भी हंसी के पात्र हैं। जैसे वे मूर्ख पण्डित हंसी के पात्र हुए। मूर्ख गुरु से विद्या को प्राप्त करके भी उसके उचित प्रयोग में समर्थ नहीं हुए। हालांकि उनमें ग्रन्थ का ज्ञान था परन्तु प्रायोगिक ज्ञान नहीं था। इसलिए कार्यकाल में वह विद्या अभीष्ट अर्थ की बोधक नहीं हुई अपितु अन्य अर्थ को प्रतिपादित किया। ऐसा जानने के लिए मूर्खों का आदर नहीं होता है इस कथा को पण्डित विष्णु शर्मा द्वारा कहा गया। वह कथा ही यहाँ प्रस्तुत की गई है।

7.1.2 मूलग्रन्थ का परिचय

दक्षिण भारत के महिलारोप्याख्य नगर का राजा अमरशक्ति था। और उस राजा के बहुशक्ति, उग्रशक्ति और अनन्तशक्ति तीन पुत्र थे। और वे मूर्ख थे। उन तीन मूर्ख पुत्रों को शिक्षत करने के लिए राजा ने पण्डित विष्णुशर्मा से अनुरोध किया। तब पारितोषिक के बिना ही उन्हें पढ़ाने के लिए विष्णुशर्मा ने सहमति दी और कहा यदि छः महीने के अन्दर वे शिक्षित नहीं हुए तो मैं मृत्युदण्ड से दण्डित होऊं। उसके बाद उसने पशु आदि को आधार बनाकर कथा के माध्यम से राजकुमारों को उपदेश दिया। समय के साथ उनमें उचित विवेक उत्पन्न हुआ। इस प्रकार उनकी शिक्षा के समाप्त होने के बाद उसने उनको उद्देश्य करके कथित कथाओं का संग्रह करके पंचतन्त्र नामक ग्रन्थ को रचा। ग्रन्थ के नाम से ही बोध होता है कि इस ग्रन्थ में पांच तन्त्र हैं। और वे तन्त्र इस प्रकार हैं-

- मित्रभेदः (मित्रों में मनमुटाव एवं अलगाव)
- मित्रलाभः (मित्र प्राप्ति एवं उसके लाभ)
- काकोलूकीयम् (कौवे एवं उल्लुओं की कथा)
- लब्धप्रणाश (मृत्यु या विनाश के आने पर, यदि जान पर आ बने तो क्या)
- अपरीक्षितकारकम् (जिसको परखा नहीं गया हो उसे करने से पहले सावधान रहें, हड़बड़ी में कदम न उठायें)

प्रस्तुत यह कथा इसके पंचम तन्त्र अपरीक्षित कारक से ली गई है।

7.1.3) प्रथम कथा - मूर्खों का आदर नहीं होता है- मूलपाठ- विभाग-1

कस्मिंश्चिदधिष्ठाने चत्वारो ब्राह्मणाः परस्परं मित्रतांगता वसन्ति स्म। बालभावे तेषां मतिरजायत- भो, देशान्तरं गत्वा विद्याया उपार्जनं क्रियते। अथान्यस्मिन्दिवसे ते ब्राह्मणाः परस्परं निश्चयं कृत्वा विद्योपार्जनार्थं कान्यकुब्जे गताः। तत्र च विद्यामठं गत्वा पठन्ति। एवं द्वादशाब्दानि यावदेकचित्तया पठित्वा, विद्याकुशलास्ते सर्वे संजाताः। ततस्तैश्चतुर्भिर्मिलित्वोक्तम्- वयं सर्वविद्यापारंगता। तदुपाध्यायमुत्कलापयित्वा

ध्यान दें:

स्वदेशे गच्छाम:। एवं मन्त्रयित्वा तथैवानुष्ठीयतामित्युक्त्वा ब्राह्मणा उपाध्यायमुत्कलापयित्वा अनुज्ञां लब्ध्वा पुस्तकानि नीत्वा प्रचलिता यावत्किंचिन्मार्गं यान्ति, तावद् द्वौ पन्थानौ समायातौ। दृष्ट्वा उपविष्टा: सर्वे। तत्रैक: प्रोवाच- 'केन मार्गेण गच्छाम:।' एतस्मिन्समये तस्मिन् पत्तने कश्चिद्वणिक्पुत्रो मृत:। तस्य दाहार्थे महाजनो गतोऽभूत्। ततश्चतुर्णां मध्यादेकेन पुस्तकमवलोकितम्-

महाजनो येन गत: स पन्था इति।

व्याख्या- किसी स्थान पर चार ब्राह्मण परस्पर मित्रवत् रहते थे। बाल्यावस्था में ही उनको यह बुद्धि उत्पन्न हुई - भो! देशान्तर अर्थात् अन्य देश में जाकर विद्यार्जन करनी चाहिए। फिर अन्य किसी दिन वे ब्राह्मण परस्पर निश्चय करके विद्या उपार्जन के लिए कन्नौज नगर को गए। और वहाँ विद्यालय जाकर परस्पर पढ़ने लगे। इस प्रकार बारह वर्ष तक तन्मयता से पढ़ते हुए वे सभी विद्वान विद्या में कुशल हुए। फिर उन चारों ब्राह्मणों ने मिलकर कहा- हम सब विद्या में पारंगत हुए इसलिए उपाध्याय को सन्तुष्ट कर अपने देश को जाएं। इस प्रकार की मन्त्रणा करके (वैसा ही करे कहकर) ब्राह्मण को सन्तुष्ट कर उनकी आज्ञा लेकर पुस्तकों को लेकर चलें जब तक कुछ मार्ग में जाते तब तक दो मार्ग आए देखकर अर्थात् दो मार्ग दिखें। वे सब बैठ गए। वहाँ एक ने कहा- किस मार्ग से जाए। इसी समय उस नगर में कोई वणिक पुत्र मर गया। उस वणिक पुत्र के दाह के लिए महाजन गए। फिर चारों के बीच में से एक ने पुस्तक खोलकर देखा।

महाजन जिस मार्ग से जाते हैं, वह मार्ग ही श्रेष्ठ है।

सरलार्थ:- किसी नगर में चार ब्राह्मण रहते थे। वे परस्पर मित्र थे। जब वे बालक थे तब उन्होंने सोचा- देश से बाहर जाकर विद्या अर्जन करना चाहिए। इसलिए वे सभी विद्या प्राप्ति के लिए कान्यकुब्ज अर्थात् कन्नौज चले गए। और वहाँ पाठशाला को प्राप्त किया। बारह वर्ष व्यतीत कर वे पढ़ाई समाप्त करके विद्वान हुए। फिर वे आचार्य की आज्ञा को स्वीकार कर अपने देश आ रहे थे। रास्ते में उन्हें दो मार्ग दिखे। किस मार्ग से जाएं यह प्रश्न उत्पन्न हुआ। इस कारण वे सभी वहीं बैठ गए। तब उस नगर में एक वणिक पुत्र मृत्यु को प्राप्त हुआ। सभी उसके शव को लेकर मार्ग से गए थे। तब एक ने पुस्तक देखी और कहा- हम सभी को हमारे ज्येष्ठ जैसा करते हैं वैसा ही अनुसरण करना चाहिए। गुरुजन जो कहते हैं वैसा अपने जीवन में पालन करना चाहिए। उससे हमें सुख प्राप्त होता है। इसलिए किस मार्ग से जाएं इस प्रश्न का 'महाजन जिस मार्ग से जाते हैं, उसी मार्ग से हमें भी जाना चाहिए' यही उत्तर है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- देशान्तरम् - अन्य: देश: देशान्तरम् इति। तत्पुरुष समास।
- विद्योपार्जनार्थम् - विद्याया: उपार्जनम्। षष्ठी तत्पुरुष।
- उत्कलापयित्वा - पृष्ट्वा धनादिदानेन सन्तोष्य वा। प्राकृतप्रसिद्धोऽयं प्रयोग:।
- वणिक्पुत्र: - वणिज: पुत्र: । षष्ठी तत्पुरुष समास।
- महाजन: - वणिग्जनसमूह:, श्रेष्ठो जनश्च।

ध्यान दें:

7.1.4) प्रथम कथा - मूर्खों का आदर नहीं होता है-मूलपाठ-विभाग-2

तन्महाजनमार्गेण गच्छामः। अथ ते पण्डिताः यावन्महाजनमेलापकेन सह यान्ति, तावद्रासभः कश्चित्तत्र श्मशाने दृष्टः। अथ द्वितीयेन पुस्तकमुद्घाट्यावलोकितम्

उत्सवे व्यसने प्राप्ते दुर्भिक्षे शत्रुसङ्कटे।
राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः॥

व्याख्या- तब हम सब भी महाजन के मार्ग से जाते हैं। उसके बाद वे पण्डित जब तक महाजन के साथ जाने लगे। उतने में ही श्मशान में कोई गधा दिखा। फिर दूसरे पण्डित ने पुस्तक को खोलकर देखा-

अन्वय- यः उत्सवे व्यसने प्राप्ते दुर्भिक्षे शत्रुसंकटे राजद्वारे श्मशाने च, तिष्ठति सः बान्धवः इति।

अन्वयार्थः- जो आनन्द के समय में, विपत्ति काल में, अन्न अभाव के समय में, शत्रु जब आक्रमण करें उस समय में, राजद्वार में, और शवदाह स्थान में सहायता करता है, वह बन्धु होता है।

तात्पर्यार्थः- कौन प्रकृत बन्धु है इस प्रश्न का यह उत्तर है कि जो सदैव पास में रहता है अर्थात् जैसे सुख के समय में वैसे ही दुख के समय में भी जो पास में होता है। जो आनन्द के समय में आनन्द को बढ़ाता है, दुःख के समय में सान्त्वना को देता है, शत्रु से संकट में सहायक होता है, श्मशान में मुझे छोड़कर नहीं जाता, वह ही सच्चा बन्धु है।

सरलार्थः- इसलिए वे शवयात्रा के साथ चल दिए। कुछ दूर जाकर वे श्मशान में पहुंचे। उस घोर भययुक्त निर्जन श्मशान में एक गधे को उन्होंने देखा। तब दूसरे ने पुस्तक को खोलकर कहा- उत्सव के समय में, विपत्ति काल में, अन्न अभाव में, शत्रु के द्वारा आक्रमण के समय में, राजा की सभा में और श्मशान में जो सदैव पास में रहता है वह ही सच्चा बन्धु है।

7.1.5) प्रथमकथा- मूर्खों का आदर नहीं होता है- मूलपाठ-विभाग-3

तदहो, अयमस्मदीयो बान्धवः। ततः कश्चित्तस्य ग्रीवायां लगति, कोऽपि पादौ प्रक्षालयति। अथ यावत्ते पण्डिताः दिशामवलोकनं कुर्वन्ति, तावत्कश्चिदुष्ट्रो दृष्टः। तैश्चोक्तम् - एतत्किम्। तावत्तृतीयेन पुस्तकमुद्घाटयोक्तम्-

'धर्मस्य त्वरिता गतिः।
तन्नूनमेष धर्मस्तावत्।' चतुर्थेनोक्तम्-
'इष्टं धर्मेण योजयेत्।'
(तद्बान्धवोऽयम् अस्माकं धर्मेण युज्यताम्)

अथ तैश्च रासभ उष्ट्रग्रीवायां बद्धः। (ततु) केनचित्तस्वामिनो रजकस्याग्रे कथितम्। (श्रुत्वा च) यावद्रजकस्तेषां मूर्खपण्डितानां प्रहारकरणाय समायातस्तावत्ते प्रनष्टाः।

व्याख्या- इसलिए यह गधा हमारा बन्धु है। उसके बाद कोई उस गधे की ग्रीवा को सहलाता

ध्यान दें:

है अथवा कोई उसके पैरों को धोता है। उसके बाद ज्यों ही वे पण्डित इधर-उधर देखते हैं, त्यों ही उनमें से किसी ने ऊँट को देखा। और उन्होंने कहा- यह क्या है? तब तीसरे ने पुस्तक खोलकर कहा- धर्म की गति तेज है। यह ऊँट अवश्य ही धर्म है। चतुर्थ पण्डित ने कहा- इष्ट को धर्म के साथ जोड़ना चाहिए। तब उन्होंने गधे को ऊँट की गर्दन में बांधा।

तब यह किसी ने गधे के स्वामी धोबी के आगे कहा। और यह सुनकर जब तक धोबी उन मूर्ख पण्डितों को मारने के लिए आया तब तक वे पलायन कर गए।

सरलार्थः- इस प्रकार सोचकर वे उस गधे की सेवा करते हैं। तब वहाँ एक ऊँट आ गया। यह क्या है उन्होंने पूछा। तब तीसरे ब्राह्मण ने ग्रन्थ को देखकर कहा कि धर्म की गति तेज होती है। तब उसने कहा कि जो हमारा इष्ट है और जो हमारा धर्म है उनको मिलाना चाहिए। इसलिए ऊँट की गर्दन के साथ गधे को जोड़ दिया। इस वृतान्त को किसी ने गधे के पालक से कहा- उसे सुनकर वह पालक दौड़ा। उसे देखकर वे सभी वहाँ से चले गए।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- त्वरिता चपला, अचिन्तनीया, सूक्ष्मा च।

7.1.6 प्रथम कथा- मूर्खों का आदर नहीं होता है- मूलपाठ- विभाग-4

ततो यावद्रग्रे किंचित्स्तोकं मार्गं यान्ति, तावत्काचिन्नदी समासादिता। तस्या जलमध्ये पलाशपत्रमायान्तं दृष्ट्वा पण्डितेनैकेनोक्तम्-

'आगमिष्यति यत्पत्रं तदस्मांस्तारयिष्यति।'

एतत्कथयित्वा तत्पत्रस्योपरि पतितो यावन्नद्या नीयते, तावत्तं नीयमानमवलोक्यान्येन पण्डितेन केशान्तं गृहीत्वोक्तम्

सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पण्डितः।
अर्धेन कुरुते कार्यं सर्वनाशो हि दुःसह॥
इत्युक्त्वा तस्य शिरश्छेदो विहितः।

व्याख्या- उसके बाद जब तक आगे किसी लघु मार्ग को जाते हैं, तब तक कोई नदी मिली। उस नदी के जल में ढाक का पत्ता आया देखकर एक पण्डित ने कहा-

जो यह पत्ता पलाश आ रहा है वह हमारा उद्धार करेगा। ऐसा कहकर उस पत्ते के ऊपर गिरे जब तक नदी उसे बहा ले जाती है, तब तक उस पण्डित को जाता हुआ देखकर दूसरे पण्डित ने बाल पकडकर कहा-

सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पण्डितः।
अर्धेन कुरुते कार्यं सर्वनाशो हि दुःसह॥

अन्वय- सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पण्डितः अर्धेन कार्यं कुरुते हि सर्वनाशः दुःसहः इति।

अन्वयार्थः- विद्वान जन सर्वनाश होने पर आधे भाग को त्याग देते है, आधे भाग से अपने प्रयोजन

ध्यान दें:

को सम्पादित करते है। क्योंकि सब कुछ नष्ट होने के दु:ख को नहीं सहा जा सकता है।

तात्पर्यार्थ:- जब विद्वान विपत्ति में पड़ते हैं, तब वह अपने को जितना है उससे आधा देता है। सम्पूर्ण नहीं देता है। तब कहते हैं कि यदि पूरा दे दें तब उसका दु:ख स्वयं भी नहीं सह सकते।

इस प्रकार कहकर उसका सिर काट दिया।

सरलार्थ:- उसके बाद उनके मार्ग में नदी आ गई। उस नदी में एक पलाश का पत्ता था। उसे देखकर चारों पण्डितों में से एक ने कहा कि यह जो पत्ता आ रहा है वह हमें नदी के तीर को पार कराएगा। इस प्रकार सोचकर वह उसके ऊपर चढ़ गया। तब ही वह नदी में गिर गया। उसे उस प्रकार देखकर एक ने उसे पकड़ा और कहा- विपत्ति आने पर विद्वान आधे से ही कार्य का सम्पादन करते हैं और बचे हुए आधे को त्याग देते हैं। कारण है कि यदि सर्वनाश होता है तो उस दु:ख को स्वयं भी नहीं सहा जा सकता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- पलाशपत्रम् - पलाशस्य पत्रम् इति। षष्ठी तत्पुरुष समास। पत्रं वाहनम् नौकादिकम्, पर्णं च। पत्रन्तु वाहने पर्णे इति विश्व:।

7.1.7 प्रथम कथा- मूर्खों का आदर नहीं होता है- मूलपाठ- विभाग-5

अथ तैश्च पश्चाद्गत्वा कश्चिद्ग्राम आसादित:। तेऽपि ग्रामीणैर्निमन्त्रिता: पृथक्पृथक्गृहेषु नीता:। तत: एकस्य सूत्रिका घृतखण्डसंयुक्ता भोजने दत्ता। ततो विचिन्त्य पण्डितेनोक्तं यद्-

'दीर्घसूत्रो विनश्यति'।

एवमुक्त्वा भोजनं परित्यज्य गत:। तथा द्वितीयस्य मण्डका दत्ता:। तेनाप्युक्तम्- 'अतिविस्तारविस्तीर्णं तद्वेन्न चिरायुषम्।'

स च भोजनं त्यक्त्वा गत:। अथ तृतीयस्य वटिकाभोजनं दत्तम्। तत्रापि (तेन) पण्डितेनोक्तं -

'छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति।'

एवं ते त्रयोऽपि पण्डिता: क्षुत्क्षामकण्ठा:, लोकैर्हस्यमानास्तत: स्थानात् स्वदेशं गता:।।

व्याख्या- (इस प्रकार चारों में से एक मर गया।) उसके बाद वे तीनों किसी ग्राम में पहुंचे। उन्हें ग्रामीण भोजन के लिए निमन्त्रित करके अलग-अलग अपने घर ले गए। फिर एक पण्डित को भोजन में सूत्रिका सेमई, जलेबी अथवा घृत खाण्ड सें युक्त भोजन को दिया। फिर उसे देखकर विचार करके पण्डित ने कहा-दीर्घसूत्री नष्ट होता है। ऐसा कहकर भोजन को त्याग कर चल दिया। तथा दूसरे को भोजन में मण्ड मिष्ठान दिए। उसे देखकर उसने भी कहा- अतिविस्तार से विस्तीर्ण चिरायु के निमित्त नहीं होता है। उसके बाद तीसरे को वटिका अर्थात् वड़ा दिया। वहाँ भी उस पण्डित ने कहा - छिद्रयुक्त भोजन अनर्थकारी होते हैं। इस प्रकार तीनों ही पण्डित भूख से व्याकुल होकर संसार में हंसी को प्राप्त करके अपने देश को गए।

ध्यान दें:

सरलार्थः- फिर वे पास में स्थित ग्राम को गए। वहाँ ग्रामीणों ने उनका अभिनन्दन किया। उन्हें अलग-अलग घर में निमन्त्रित किया। एक को भोजन में घी मिश्रित जलेबी दी। उसने सोचा कि उसके आचार्य ने कहा है कि जो दीर्घ सूत्री (आलसी) हैं विनाश को प्राप्त करते हैं। यहाँ दीर्घ सूत्रिका है इसलिए उसने भोजन नहीं किया। दूसरे ब्राह्मण को रोटी दी। उसने सोचा कि गुरु ने कहा है-जिसका अधिक विस्तार होता है उसकी आयु अधिक नहीं होती। इस कारण उसकी मृत्यु शीघ्र होती है। यह सोचकर उसने भोजन को त्याग दिया। तीसरा जो था उसे वटिका भोजन (कचौड़ी) वड़ा दिया। उसने सोचा कि उसके गुरु ने जब पढ़ाया तब कहा कि जहाँ छिद्र होते हैं वहाँ विघ्न अधिक होते हैं। इस भय से उसने भी भोजन को नहीं किया। उन्हें देखकर सभी ग्रामीण हंसे। इस प्रकार वे मूर्ख पण्डित बिना भोजन किए अपने देश को आए।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- घृतखण्डसंयुक्ता- घृतस्य खण्डः घृतखण्डः इति षष्ठी तत्पुरुषः, घृतखण्डेन संयुक्ता इति तृतीया तत्पुरुष समास।
- दीर्घसूत्र- आलस्योपहतः।
- वाटिकाभोजनम् - वटिका वड़ा तस्याः भोजनम् इति। षष्ठी तत्पुरुष समास।
- अनर्थाः- न अर्थाः अनर्थाः इति नञ् तत्पुरुष समास।
- क्षुत्क्षमाकण्ठाः - क्षुता क्षुधया क्षामः शुष्कः इति तृतीय तत्पुरुष समास, क्षुतक्षामः कण्ठः येषां ते क्षुत्क्षामकण्ठाः पण्डिताः इति बहुव्रीहि समास।

पाठगत प्रश्न-7.1

1. चारों विद्या प्राप्ति के लिए कहाँ गए?
2. कान्य कुब्ज में वे कहाँ थे?
3. कितने वर्ष व्यतीत करके उन्होंने अध्ययन किया?
4. कौन-सा रास्ता ठीक है?
5. श्मशान में उन्होंने किसको देखा?
6. इष्ट को किससे जोड़ना चाहिए?
7. कैसी अवस्था में पण्डित आधे को त्याग देते हैं?
8. अति विस्तार से क्या होता है?
9. छिद्रों के अधिक होने पर क्या होता है?
10. कौन नष्ट होता है?

पाठ-7

पंचतन्त्र

ध्यान दें:

7.2) द्वितीय कथा- जहाँ धर्म है वहाँ जीत है।

7.2.1) पूर्वपीठिका

केवल धर्म से ही मनुष्यों का जीवन है, धर्म से हीन पशुओं के समान है। अपने धर्म नीति न्याय आदि को जो त्याग देता है, वह पशु समान ही है। सन्मार्ग पर चलना और अपने धर्म का सदैव पालन करना चाहिए। उससे कभी-कभी अपनी क्षति होती है परन्तु अन्त में सुख ही प्राप्त होगा। यहाँ धर्म बुद्धि कैसे मार्ग पर था यह जानें। धर्म से सुख और अधर्म से दु:ख होता है यह भी जानें। सर्वोपरि धर्म की कैसे विजय होती है, यह जानेंगे।

यह कथा पंचतन्त्र से ली गई है। वहाँ मित्रभेद नामक प्रथमतन्त्र में यह कथा प्राप्त होती है।

7.2.2) द्वितीय कथा- जहाँ धर्म है वहाँ जीत है। मूलपाठ - विभाग-1

कस्मिंश्चिदधिष्ठाने धर्मबुद्धि: पापबुद्धिश्चेति द्वे मित्रे प्रतिवसत: स्म। अथ कदाचित्पापबुद्धिना चिन्तितम्- अहं तावन्मूर्खो दारिद्रयोपेतश्च। तदेनं धर्मबुद्धिमादाय देशान्तरं गत्वास्याश्रयेणार्थोपार्जनं कृत्वैनमपि वंचयित्वा सुखी भवामि। अथान्यस्मिन्नहनि पापबुद्धिर्धर्मबुद्धिं प्राह- भो मित्र, वार्द्धकभावे किं त्वमात्मविचेष्टितं स्मरसि। देशान्तरमदृष्ट्वा कां शिशुजनस्य वार्तां कथयिष्यसि।

व्याख्या- किसी नगर में धर्मबुद्धि और पापबुद्धि दो मित्र रहते थे। फिर कदाचित पापबुद्धि ने विचार किया मैं मूर्ख और दरिद्र हूँ इसलिए धर्मबुद्धि को लेकर अन्य देश को जाकर धर्मबुद्धि के आश्रय से धनार्जन करके इसको भी धन से वंचित करके सुखी हो जाऊँगा।

फिर एक दिन पापबुद्धि ने धर्मबुद्धि को कहा- हे मित्र! वृद्धावस्था में तुम क्या अपनी चेष्टा को स्मरण करोगे। अन्य देश को बिना देखे अपने बालकों से किन बातों को कहोगे।

सरलार्थ:- पहले किसी गाँव में धर्मबुद्धि और पापबुद्धि दो मित्र रहते थे। एक दिन पापबुद्धि ने विचार किया कि वह दरिद्र और मूर्ख है। यदि वह धर्मबुद्धि की सहायता से धन का उपार्जन करेगा, तो धर्मबुद्धि को वंचित करके उसके भी धन को ले लेगा, तब वह धनी हो जाएगा। उसको सुख भी प्राप्त होगा। इस प्रकार विचार कर उसने धर्मबुद्धि के समीप जाकर कहा कि- बहुत दिन से अन्य देश में गमन नहीं हुआ, तब अपने पुत्र आदि से क्या कहोगे।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- दाहिद्रयोपेत: दारिद्रयेण उपेत: दरिद्र: इति यावत्।
- प्राह प्र-आह, ब्रुव: पंचानामादित आह ब्रुव: इत्यनेन विकल्पेन बूते इत्यस्य स्थाने आह इति प्रयोग: पक्षे ब्रुते इत्यपि प्रयोग:।

ध्यान दें:

7.2.3) द्वितीय कथा- जहाँ धर्म है वहाँ जीत है। मूलपाठ - विभाग-2

उक्तंच

देशान्तरेषु बहुविधभाषावेषादि येन न ज्ञातम्।
भ्रमता धरणीपीठे, तस्य फलं जन्मनो व्यर्थम्॥

अन्वय-

येन देशान्तरेषु बहुविधभाषावेषादि न ज्ञातम् धरणीपीठे भ्रमता तस्य जन्मनः फलम् व्यर्थम्।

अन्वयार्थः- जिसके द्वारा अन्य देशों की भाषा वेशभूषा को नहीं जाना गया, पृथ्वी पर विचरण करते हुए उस मनुष्य का जन्म निष्फल है।

सरलार्थः- अनेक प्रकार की भाषाओं और संस्कृति का ज्ञान आवश्यक है। जिसका अनेक प्रकार की भाषा इत्यादि के साथ सम्पर्क नहीं है उसके जन्म का क्या लाभ। अर्थात् जिसको विदेश वृतान्तों का ज्ञान नहीं है उसकी कुएँ के मेंढक के समान उत्पत्ति व्यर्थ ही है यह भाव है।

7.2.4) द्वितीय कथा- जहाँ धर्म है वहाँ जीत है। मूलपाठ - विभाग-3

तथा च-

विद्यां वित्तं शिल्पं तावन्नाप्नोति मानवः सम्यक्।
यावद् व्रजति न भूमौ देशाद्देशान्तरं हृष्टः॥

अन्वय - मानवः हृष्टः सन् यावत् भूमौ देशात् देशान्तरं न व्रजति तावत् विद्यां वित्तं शिल्पं सम्यक् न आप्नोति।

अन्वयार्थः- मनुष्य उत्सुक होकर जब तक अन्य देश को नहीं जाता तब तक विद्या शिल्प कला इत्यादि के ज्ञान को प्राप्त नहीं करता है।

सरलार्थः- चर्चा से विद्या बढ़ती है। इसलिए विद्या प्राप्ति के लिए अनेक मनुष्यों से मिलना चाहिए। जो व्यक्ति अन्य देश को जाकर दूसरों के साथ जब तक नहीं मिलता है, तब तक उसकी विद्या सम्पूर्ण नहीं होती है। इसलिए अन्य देशवासियों से मिलना अत्यन्त आवश्यक है। उससे ज्ञान बढ़ता है, धन भी आता है और कलादि का ज्ञान भी होता है।

7.2.5) द्वितीय कथा- जहाँ धर्म है वहाँ जीत है। मूलपाठ - विभाग-4

अथ स धर्मबुद्धिः तस्य तद्वचनमाकर्ण्य प्रहृष्टमनास्तेनैव सह गुरुजनानुज्ञातः शुभेऽहनि देशान्तरं प्रस्थितः। तत्र च धर्मबुद्धिप्रभावेण भ्रमता पापबुद्धिना प्रभूततरं वित्तमासादितम्। ततश्च द्वावपि तौ प्रभूतोपार्जितद्रव्यौ प्रहृष्टौ स्वगृहं प्रत्यौत्सुक्येन निवृत्तौ।

उक्तंच-

ध्यान दें:

प्राप्तविद्यार्थशिल्पानां देशान्तरनिवासिनाम्।
क्रोशमात्रोऽपि भूभागः शतयोजनवद्भवेत्।।

व्याख्या- उसके बाद पापबुद्धि के वचन को सुनकर उत्सुक मन से धर्मबुद्धि उसके ही साथ गुरुजनों का आशीर्वाद प्राप्त करके शुभ समय पर दिन में अन्य देश के लिए यात्रा को प्रारम्भ किया। और वहाँ धर्मबुद्धि के प्रभाव से घूमते हुए पापबुद्धि ने बहुत सा धन अर्जित किया। फिर दोनों ने ही प्रचुर धन के उपार्जन से आनन्दित होते हुए अपने घर के प्रति उत्कण्ठा से निवृत्त होकर वापिस आना आरम्भ किया। और कहा-

अन्वय- देशान्तरनिवासिनां प्राप्तविद्यार्थशिल्पानां क्रोशमात्रः अपि, भूभागः शतयोजनवद् भवेत् इति।

अन्वयार्थः- विद्या, धन और शिल्पकला का ज्ञान प्राप्त करने के लिए जो अन्य देश में जाकर निवास करते हैं, उनको एक कोस मात्र पृथ्वी भी सौ योजन के समान अर्थात अत्यन्त विस्तृत प्रतीत होती है। जिस प्रयोजन के लिए लोग विदेश जाते हैं वहाँ जब तक धन प्राप्ति नहीं होती है तब तक अपने घर के प्रति निर उत्कण्ठा होती है। करने योग्य कार्य हो जाने पर अपने घर के प्रति अत्यधिक उत्कण्ठित हो थोड़ी देर भी असहनीय प्रतीत होती है अर्थात् थोड़ा मार्ग भी अत्यन्त दूर प्रतीत होता है।

सरलार्थः- पापबुद्धि के इस वाक्य को सुनकर धर्मबुद्धि सहमत हुआ। वह गुरुजन की अनुमति और आशीर्वाद को प्राप्त कर अन्य देश को गया। वहाँ धर्मबुद्धि के कारण पापबुद्धि ने बहुत धन प्राप्त किया। वहाँ से अत्यन्त आनन्द से वे दोनों धन रत्नादि को स्वीकार करके घर की ओर चल दिए।

तात्पर्यार्थः- जब घर की ओर पुत्र विद्या, धनादि को प्राप्त करके आता है तब एक कोस मार्ग भी चार कोस का प्रतीत होता है। इसी प्रकार से अन्य देश में जो विद्या, धन, कलादि को प्राप्त करके अपने घर को आते हैं उसको छोटा मार्ग भी बड़ा प्रतीत होता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- गुरुजनानुज्ञातः - गुरुजनैः अनुज्ञातः इति तृतीया तत्पुरुष समास।
- धर्मबुद्धिप्रभावेण - धर्मबुद्धेः प्रभावः इति षष्ठी तत्पुरुष समास।
- प्रभूतोपार्जितद्रव्यौ - प्रभूतम् अनेकम् उपार्जितम् द्रव्यम् याभ्याम् तौ प्रभूतोपार्जितद्रव्यौ इति बहुव्रीहि समास।
- प्राप्तविद्यार्थशिल्पानाम् - प्राप्तः अर्थः विद्या शिल्पं च यैः ते प्राप्तविद्यार्थशिल्पाः इति बहुव्रीहि समास।

7.2.6) द्वितीय कथा- जहाँ धर्म है वहाँ जीत है। मूलपाठ - विभाग-5

अथ स्वस्थानसमीपवर्तिना पापबुद्धिना धर्मबुद्धिरभिहितः - 'भद्र, न सर्वमेतद्धनं गृहं प्रति नेतुं युज्यते, यतः कुटुम्बिनो बान्धवाश्च प्रार्थयिश्यन्ते। तदत्रैव वनगहने क्वापि भूमौ निक्षिप्य, किंचिन्मात्रमादाय गृहं प्रविषावः। भूयोऽपि प्रयोजने संजाते तन्मात्रं समेत्यास्मात् स्थानान्नेश्यावः।

उक्तंच-

ध्यान दें:

न वित्तं दर्शयेत्प्राज्ञः कस्य चित्स्वल्पमप्यहो।
मुनेरपि यतस्तस्य दर्शनाञ्चलते मनः॥

तथा च-

यथामिषं जले मत्स्यैर्भक्ष्यते श्वापदैर्भुवि।
आकाशे पक्षिभिश्चौव तथा सर्वत्र वित्तवान्॥

व्याख्या- उसके बाद अपने स्थान के समीपवर्ती पापबुद्धि ने धर्मबुद्धि से कहा- श्रीमान, यह सब धन घर ले जाना उचित नहीं है क्योंकि आत्मीय जन और बान्धव उसको मागेंगे। इसलिए यहाँ इस घने जगंल में ही कहीं भूमि में गाड़कर उसमें से कुछ लेकर घर को जाएं। प्रयोजन होने पर बचे हुए धन को आकर इस स्थान से ले जाएंगे। और कहा-

अन्वय- प्राज्ञः स्वल्पम् अपि अहो वित्तं न दर्शयेत्। यतः मुनेः मनः अपि, तस्य दर्शनात् चलते।

अन्वयार्थः- विद्वान व्यक्ति अपना थोड़ा धन भी किसी को न दिखाए। क्योंकि मुनि का स्थिरचित्त मन भी धन के दर्शन से अस्थिर हो जाता है।

तात्पर्यार्थः- सीप में रजत का भ्रम होने पर भी मनुष्य उसे प्राप्त करने को भागता है। तब अगर साक्षात धन ही हो तब किसका मन चंचल नहीं होता। शान्तचित्त वाले मुनियों का चित्त भी थोड़े धन को देखने से अस्थिर हो जाता है। इसलिए विद्वान कभी भी अपने धन को किसी को भी नहीं दिखाता है।

अन्वय- यथा आमिषं जले मत्स्यैः भक्ष्यते भुवि श्वापदैः आकाशे पक्षिभिः तथा चौव वित्तवान् सर्वत्र।

अन्वयार्थः- जैसे मांस, जल में मछलियों के द्वारा, पृथ्वी पर सिंहादि हिंसकों के द्वारा, आकाश में पक्षियों के द्वारा खाया जाता है वैसे ही सब जगह धनवान व्यक्ति खाया जाता है। सब ही धन की आकांक्षा करते हैं।

तात्पर्यार्थः- इस श्लोक में धन की प्राप्ति में कौन-कौन से विघ्न होते हैं यह ही वर्णित किया गया है। यहाँ कहते हैं सब मांस की इच्छा करते हैं। यदि जल में है तो मछलियाँ खाती हैं। यदि पृथ्वी पर है तो प्राणी को खाते हैं। अगर आकाश में है तो पक्षी उसे खाते हैं। इसी प्रकार जो धनवान होता है सभी उसके धन की इच्छा करते हैं।

सरलार्थः- जब वे घर के समीप आ गए तब पापबुद्धि ने कहा कि घर में आत्मीय जन हैं। उनके पास सारा धन नहीं ले जाना चाहिए। घर के पास में कहीं भी गड्ढा करके वहाँ धन को रख देते हैं जितना प्रयोजन है उतना लेकर चलते हैं यह ही उचित है। जब प्रयोजन होगा तब फिर से ले जाएंगे। क्योंकि धन इस प्रकार की वस्तु है कि स्थिर चित्त मुनि के मन में भी विकार उत्पन्न कर दे। धनवान के सभी जगह शत्रु विद्यमान रहते हैं।

7.2.7) द्वितीय कथा- जहाँ धर्म है वहाँ जीत है। मूलपाठ - विभाग-6

तदाकर्ण्य धर्मबुद्धिराह- ''भद्र, एवं क्रियताम्''। तथानुष्ठिते द्वावपि तौ स्वगृहं गत्वा सुखेन

पाठ-7

पंचतन्त्र

ध्यान दें:

संस्थितवन्तौ। अथान्यस्मिन्नहनि पापबुद्धिर्निशिथेऽटव्यां गत्वा तत्सर्वं वित्तं समादाय गर्तं पूरयित्वा स्वभवनं जगाम। अथान्येद्युर्धर्मबुद्धिं समभ्येत्य प्रोवाच- सखे, बहुकुटुम्बा वयम्, वित्ताभावात्सीदामः। तद्गत्वा तत्र स्थाने किंचिन्मात्रं धनमानयावः। सोऽब्रवीत्- एवं क्रियताम्। अथ द्वावपि गत्वा तत्स्थानं यावत्खनतस्तावद्रिक्तं भाण्डं दृष्टवन्तौ। अत्रान्तरे पापबुद्धिः शिरस्ताडयन्प्रोवाच- 'भो धर्मबुद्धे, त्वया हृतमेतद्धनम्, नान्येन, यतो भूयोऽपि गर्तापूरणं कृतम्। तत्प्रयच्छ में तस्यार्धम्। अथवाहं राजकुले निवेदयिष्यामि। स आह-'भो दुरात्मन्, मैवं वद-धर्मबुद्धिः खल्वहम्। नैतच्चौरकर्म करोमि। उक्तंच-

मातृवत्परदाराणि परद्रव्याणि लोष्टवत्।
आत्मवत्सर्वभूतानि वीक्षन्ते धर्मबुद्धयः॥

व्याख्या- यह सुनकर धर्मबुद्धि ने कहा- भद्र जैसा तुम्हें ठीक लगे वैसा करो। वैसा ही सम्पादित करके वे दोनों भी अपने घर जाकर सुख से स्थित हुए। फिर किसी और दिन पापबुद्धि ने रात्रि में वन को जाकर उस सारे धन को लेकर गड्ढे को वैसे ही भर दिया जैसा पूर्व में था। वैसा करके अपने घर को चला गया। फिर अन्य किसी दिन धर्मबुद्धि के पास आकर बोला- मित्र हम अनेक सदस्य हैं इसलिए धन के अभाव में क्लेश होता है। इसलिए वहाँ जाकर कुछ धन ले आयें। वह बोला- मित्र ऐसा ही करें। फिर दोनों ने उस स्थान को जब खोदा तब खाली बर्तन को देखा। इसके बाद पापबुद्धि ने सिर पीटते हुए कहा- हे धर्मबुद्धि तुमने ही इस धन को चुरा लिया है किसी और ने नहीं। क्योंकि यदि चोर लेते तो पुनः मिट्टी से गड्ढे को नहीं भरते। तुमने ही इस धन को चुराया है इसलिए चोरी को छिपाने के लिए तुमने ही गड्ढे को भर दिया। इसलिए उस चोरी किए हुए धन का आधा भाग मुझे दें। अन्यथा राजकुल में निवेदन करुंगा।

वह बोला- हे दुष्ट बुद्धि ऐसा मत कह, निश्चय ही मैं धर्मबुद्धि हूँ। इस प्रकार से चोरी नहीं करता। और कहा-

अन्वय- धर्मबुद्धयः परदाराणि मातृवद्, परर्द्रव्याणि लोष्ठवत्, सर्वभूतानि आत्मवत् वीक्षन्ते।

अन्वयार्थः- जिन में धर्म बुद्धि हो वे व्यक्ति दूसरे की स्त्रियों को माता के समान, दूसरे के धन को मिट्टी के समान और सभी प्राणियों को आत्मा के समान देखते हैं।

तात्पर्यार्थः- इस श्लोक में जो धर्म मार्ग को जाते हैं उनकी नीति को वर्णित किया गया है। वे दूसरे की पत्नी को माता के समान देखते हैं, उनमें सदैव श्रद्धा रखते हैं अर्थात् उसे प्राप्त करने की कभी इच्छा भी नहीं करते हैं। वे दूसरों के धन को पत्थर के समान देखते हैं। अर्थात् उनके धन का लोभ नहीं करते हैं। और वे सभी को अपने समान देखते हैं। इसलिए वे कभी भी दूसरे का अपकार नहीं करते हैं।

सरलार्थः- इस प्रकार विचार कर धर्मबुद्धि उसे स्वीकार करके समीप ही भूमि में धनादि को स्थापित करके घर को गया। पापबुद्धि ने एक दिन जाकर सारे धन को लेकर गड्ढे को पहले की तरह ही करके घर को आ गया। दूसरे दिन उसने धर्मबुद्धि के समीप जाकर कहा कि धन की आवश्यकता है। इसलिए वहाँ चलते हैं। धर्मबुद्धि उसके साथ वहाँ गया। वहाँ जाकर उन दोनों ने देखा कि वह स्थान खाली है। तब उसे देखकर पापबुद्धि ने धर्मबुद्धि के ऊपर दोषारोपण करके कहा कि उस धर्मबुद्धि ने ही धन को चुराया है। वह राजा को कहेगा ऐसा कहा। तब धर्मबुद्धि ने कहा कि इस प्रकार की चोरी वह कभी नहीं करता है। उसे दूसरे के धन का लोभ नहीं है।

ध्यान दें:

7.2.8 द्वितीय कथा- जहाँ धर्म है वहाँ जीत है। मूलपाठ - विभाग-7

एवं द्वावपि तौ विवादमानौ धर्माधिकरणं गतौ, प्रोचतुश्च परस्परं दूषयन्तौ। अथ धर्माधिकरणाधिष्ठितपुरुषैः दिव्यार्थे यावत् नियोजितौ, तावत्पापबुद्धिराह-'अहो, न सम्यग्दृष्टोऽयं न्यायः। उक्तंच-

विवादेऽन्विष्यते पत्रं तदभावेऽपि साक्षिणः।
साक्ष्यभावात्ततो दिव्यं प्रवदन्ति मनीषिणः॥

तदत्र विषये मम वृक्षदेवताः साक्षीभूतास्तिष्ठन्ति, ता अप्यावयोरेकतरं चोरं साधु वा कथयिष्यन्ति। अथ तौ सर्वैरभिहितम्- भोः, युक्तमुक्त भवता। उक्तंच-

अन्त्यजोऽपि यदा साक्षी विवादे सम्प्रजायते।
न तत्र विद्यते दिव्यं किं पुनर्यत्र देवताः॥

तदस्माकमप्यत्र विषये महत्कौतूहलं वर्त्तते। प्रत्यूषसमये युवाभ्यामप्यस्माभिः सह तत्र वनोद्देशे गन्तव्यम् इति। एतस्मिन्नन्तरे पापबुद्धिः स्वगृहं गत्वा स्वजनकमुवाच-तात, प्रभूतोऽयं मयार्थो धर्मबुद्धिश्चोदितः। स च तव वचनेन परिणतिं गच्छति, अन्यथास्माकं प्राणैः सह यास्यति। स आह- वत्स, द्रुतं वद, येन प्रोच्यं तद् द्रव्यं स्थिरतां नयामि। पापबुद्धिराह- तात, अस्ति तत्प्रदेशे महाशमी। तस्यां महत्कोटरमस्ति। तत्र त्वं साम्प्रतमेव प्रविश। ततः प्रभाते यदाहं सत्यश्रावणं करोमि, तदा त्वया वाच्यं यद्-धर्मबुद्धिः चोरः इति।

व्याख्या- इस प्रकार वे दोनों भी झगड़ा करते हुए धर्माधिकारी के पास अर्थात् राजकुल को गए और वे दोनों बोलते हुए एक-दूसरे पर आरोप लगाते हैं। इसके बाद धर्माधिकारी द्वारा नियुक्त पुरुष के द्वारा दिव्य शपथ के निमित्त उसको जब तक नियुक्त किया तब तक पापबुद्धि ने कहा- आश्चर्य है यह उचित न्याय नहीं है, और कहा-

अन्वय- विवादे पत्रम् अन्विष्यते, तदभावेऽपि साक्षिणः अन्विष्यन्ते, ततः साक्ष्यभावात् दिव्यम् मनीषिणः प्रवदन्ति।

अन्वयार्थः- मुकदमा होने पर पहले प्रमाण का लेख लिया जाता है, और पत्र के अभाव में साक्षी का ग्रहण करते हैं और साक्षी के अभाव में शपथ प्रमाण है ऐसा विद्वानों द्वारा कहा गया है।

फिर इस विषय में वृक्ष देवता मेरे साक्षी हैं। वे ही हम दोनों में से एक चोर अथवा साधु का निर्धारण करेंगे। फिर उन सब ने कहा- आपने सत्य कहा। और कहा-

अन्वय- विवादे अन्त्यजोऽपि यदा साक्षी सम्प्रजायते तत्र दिव्यम् न विद्यते। यत्र देवताः तत्र पुनः किम्।

अन्वयार्थः- जब विवाद में अन्तयज भी साक्षी हो वहाँ शपथ नहीं ली जाती। उसकी आवश्यकता नहीं है। फिर जहाँ देवता हो वहाँ कैसी शपथ। इसलिए हमें भी इस विषय में अत्यन्त उत्सुकता है। प्रातःकाल तुम दोनों अर्थात् धर्मबुद्धि और पापबुद्धि को हमारे साथ उस वन में जाना चाहिए। इसके बाद में पापबुद्धि ने अपने घर जाकर अपने पिता से कहा- हे तात! मैंने धर्मबुद्धि के बहुत से धन को चुरा लिया है। और वह तुम्हारे कथन से परिणत हो पाएगा। यदि वह नहीं होता तो हमारे प्राणों के साथ वह धन चला जाएगा।

ध्यान दें:

पिता ने कहा- हे पुत्र शीघ्र कहो जिसे कहकर वह द्रव्य स्थिरता को प्राप्त करें। पापबुद्धि ने कहा- पिता! इस प्रदेश में महाशमी का एक वृक्ष है। उस शमी वृक्ष में एक बड़ा कोटर है। उस कोटर में तू अभी प्रवेश कर जा। फिर प्रातः काल जब मैं सत्य को ज्ञात करने की इच्छा करूँ कि कौन चोर है, तब तुम कहना कि धर्मबुद्धि चोर है।

सरलार्थः- तब वे दोनों धर्माधिकारी के समीप गए। तब पापबुद्धि ने उनसे कहा कि जहाँ विवाद होता है वहाँ यदि प्रमाणादि प्राप्त न हो तो देवता के समीप जाना चाहिए। सभी वन देवता के समीप जाएंगे फिर उसके प्रमाण को प्राप्त करेंगे। उससे सुविचार होगा। तब सभी ने उसके वाक्यों को स्वीकार किया। दूसरे दिन जाने के लिए समय निश्चित हुआ। उस दिन रात्रि में पापबुद्धि ने अपने पिता को कहा। कि उसने सारे धन को चुराया है। कल उस शमीवृक्ष पर बैठ जाना। जब सभी प्रश्न करेंगे तब ऐसा कहना कि धर्मबुद्धि ने ही धन को चुराया है। पुत्र की रक्षा के लिए पिता सुबह उस वृक्ष की कोटर में बैठ गया।

7.2.9) तथानुष्ठिते प्रत्यूषे स्नात्वा पापबुद्धिर्धर्मबुद्धिपुरः सरो धर्माधिकरणकैः सह तां षमीमभ्येत्य तारस्वरेण प्रोवाच-

आदित्यचन्द्रावनिलोऽनलश्च द्यौर्भूमिरापो हृदयं यमश्च।
अहश्च रात्रिश्च उभे च सन्ध्ये धर्मश्च जानाति नरस्य वृत्तम्॥

भगवति वनदेवते, आवयोर्मध्ये यश्चोरस्तं कथय। अथ पापबुद्धिपिता शमीकोटरस्थः प्रोवाच- भोः, श्रृणुत, श्रृणुत, धर्मबुद्धिना हृतमेतद्धनम्। तदाकर्ण्य सर्वे ते राजपुरुषा विस्मयोत्फुल्ललोचना यावद्धर्मबुद्धेर्वित्तहरणोचितं निग्रहं शास्त्रदृष्टयावलोकयन्ति, तावद्धर्मबुद्धिनातच्छमीकोटरं वह्निभोज्यद्रव्यैः परिवेष्टय वह्निना सन्दीपितम्। अथ ज्वलति तस्मिंशमीकोटरेऽर्धदग्धशरीरः स्फुटितेक्षणः करुणं परिदवयन्यपापबुद्धिपिता निश्चक्राम। ततश्च तैः सर्वैः पृष्टः - भोः किमिदम्। इत्युक्ते च पापबुद्धिविचेष्टितं सर्वम् इदमिति निवेदयित्वोपरतः।

व्याख्या- ऐसा कर प्रातः स्नान करके पापबुद्धि ने धर्मबुद्धि को आगे करके धर्माधिकारियों के साथ उस शमीवृक्ष के समीप आकर ऊँचे स्वर से कहा-

अन्वय- नरस्य वृत्तम् आदित्यः चन्द्रः अनिलः अनलः च द्यौः भूमिः हृदयं यमः च अहः च रात्रिः च उभे सन्ध्ये च धर्मः जानाति।

अन्वयार्थः- मनुष्य के चरित्र को सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, आकाश, पृथ्वी, मन, यम, दिन-रात, और दोनों संध्या धर्म जानते हैं।

तात्पर्यार्थः- इस श्लोक में कौन धर्म को जानते हैं, ज्ञात होता है। सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि, आकाश, पृथ्वी, वरुण, यम, दिन, रात, सन्ध्याकाल ये धर्म को जानते हैं।

हे वनदेवता! हम दोनों में से कौन चोर है उसे कहो।

इसके बाद पापबुद्धि का पिता शमी वृक्ष की गर्त में स्थित हो बोला- हे सुनो। धर्मबुद्धि ने यह धन चुराया है। उसे सुनकर वे सभी राजपुरुष विस्मय से खिले नेत्र वाले जब तक धर्मबुद्धि पर धन हरण के उचित दण्ड को शास्त्र दृष्टि से देखते तब तक धर्मबुद्धि ने उस शमीवृक्ष के कोटर में तृणादि द्रव्य से ढककर उसमें आग लगा दी। तब उस शमी कोटर के जलने पर अर्धदग्ध शरीर वाला करुणा स्वर से चिल्लाता हुआ पापबुद्धि का पिता बाहर आया। तब उन सभी ने जिज्ञासा से पूछा- यह क्या है? ऐसा

ध्यान दें:

कहने पर वह 'यह सब पापबुद्धि की चेष्टा है' निवेदन करके मर गया।

सरलार्थः- फिर सभी उस शमीवृक्ष के समीप को गए। वहां सभी ने पूछा कौन चोर है। तब वृक्ष के मध्य से पापबुद्धि के पिता ने उत्तर दिया कि धर्मबुद्धि ने धन को चुराया है। उस वाक्य को सुनकर जब सभी धर्मबुद्धि के दण्ड के विषय में चर्चा कर रहे थे। तब धर्मबुद्धि ने उस वृक्ष में आग लगा दी। तब ताप के प्रभाव से पापबुद्धि के पिता बाहर आए। उन्होंने बाहर आकर सारे वृतान्त को कह दिया। तब सभी ने धर्मबुद्धि की प्रशंसा की और पापबुद्धि के लिए दण्ड को घोषित किया।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- विस्मयोत्फुल्लोचनाः - विस्मयेन उत्फुल्लम् विस्मयोत्फुल्लम्। तृतीया तत्पुरुष समास।
- तच्छमीकोटरम् - शम्याः कोटरम् शमी कोटरम्, षष्ठी तत्पुरुष समास, तच्च इदम् शमीकोटरम्, कर्मधारयसमास।
- अर्धदग्धशरीरः - अर्धं दग्धं शरीरं यस्य सः अर्धदग्धशरीरः। बहुव्रीहि समास।
- स्फुटितेक्षणः - स्फुटितम् विनष्टम् ईक्षणम् नेत्रम् यस्य सः स्फुटितेक्षणः बहुव्रीहिसमास।

7.2.10) द्वितीयकथा-

अथ ते राजपुरुषाः पापबुद्धिं शमीशाखायां प्रतिलम्ब्य धर्मबुद्धिं प्रशस्येदमूचुः - अहो, साध्विदमुच्यते-

उपायं चिन्तयेत्प्राज्ञस्तथापायं च चिन्तयेत्।
पश्यतो बकमुखस्य नकुलेन हता बकाः॥

व्याख्या- उसके बाद वे राजपुरुष पापबुद्धि को शमी वृक्ष की शाखा से बांधकर धर्मबुद्धि की प्रशंसा करके पारितोषिक आदि देकर यह बोले- यह सत्य ही कहा है-

अन्वय- प्राज्ञः यथा उपायं चिन्तयेत् तथा अपायं च चिन्तयेत्। नकुलेन बकमुखस्य पश्यतः बकाः हताः।

अन्वयार्थः- जैसे बुद्धिमान व्यक्ति उपाय की चिन्ता करें वैसे ही विनाश की करें। वहाँ कहा है- उस बगुले के देखते हुए नेवले के द्वारा बगुला मारा गया।

तात्पर्यार्थः- दुष्ट के साथ दुष्टता का व्यवहार करना चाहिए यही नीति है। किसी का भी उपकार जैसा करना चाहिए, वैसा यदि वह अपकार को करता है, तब उसकी दण्डव्यवस्था जैसी होगी वह भी सोचना चाहिए। इसलिए विद्वान जैसे उपाय के विषय में सोचते हैं, वैसे उपाय के विषय में भी सोचते हैं।

पाठगत प्रश्न-2

1. दो मित्र कौन थे?
2. किसका जन्म व्यर्थ है?
3. वनदेवता कहाँ रहते थे?

पाठ-7

पंचतन्त्र

ध्यान दें:

4. धर्मबुद्धि दूसरे की स्त्री को कैसे देखता है?
5. धर्मबुद्धि के पास में क्या मिट्टी के समान है?
6. धर्मबुद्धि कैसे सभी को देखता है?
7. विचार के लिए वे दोनों किसके पास गए?
8. विद्वान क्या सोचें?

पाठ सार

इस पाठ में पंचतन्त्र से कथा को लिया गया है। उसमें चार मूर्खों का वर्णन किया है। उन्होंने विद्या प्राप्त करके शास्त्र के अर्थ को नहीं समझा। वे विद्या प्राप्ति के लिए कन्नौज गए। वहाँ बारह वर्ष व्यतीत कर अध्ययन को समाप्त करके आते हुए महाजन के मार्ग से जाकर श्मशान पहुँच गए। दूसरा नदी को पार करते हुए जब उनमें से एक डूब रहा था तब सब कुछ नहीं हारना चाहिए ऐसा सोचकर उसके मस्तक को काटकर रक्षा करता है। अन्य जब गाँव को गए तब सूत्रिका आदि को देखकर दीर्घसूत्रादि व्याख्यान को याद करके नहीं खाता। इस कथा के पढ़ने से ज्ञात होता है कि मूर्ख पण्डितों की विद्या प्राप्ति व्यर्थ है। क्योंकि वह अर्थ को बिना समझे ही शास्त्र को पढ़ेंगे। उनसे शास्त्रार्थ का विपरीत अर्थ ही होगा।

द्वितीय कथा भी पंचतन्त्र से ली गई है। यहाँ धर्मबुद्धि से सम्पन्न कैसा व्यवहार करते हैं, कैसा जीवन यापन करते हैं इस विषय में जानते हैं। पापबुद्धि अधिक धन लाभ के लिए धर्मबुद्धि को लेकर व्यापार के लिए गया। वहाँ से आते हुए धन को घर के समीप में स्थापित कर दिया। दूसरे दिन पापबुद्धि ने आकर सभी धन को लेकर अपने घर में रख दिया। फिर एक दिन वह धन के लिए धर्मबुद्धि को लेकर आया। फिर वहाँ धन नहीं है ऐसा देखकर धर्मबुद्धि को लेकर नाटक करते हुए धर्माधिकारी को कहा। फिर सभी ने स्वीकार किया कि वन देवता जो कहेंगे वह ही उचित विचार होगा। तब पापबुद्धि ने अपने पिता को शमीवृक्ष के कोटर में स्थित होकर धर्मबुद्धि को चोर कहने के लिए कहा। जब उसके पिता ने वैसा कह दिया तब विचार के समय में धर्मबुद्धि ने उस वृक्ष में आग लगा दी। उससे बाहर आकर पापबुद्धि के पिता ने सारे वृतान्त को कह दिया। तब सभी ने धर्मबुद्धि की प्रशंसा की और पापबुद्धि को दण्डित किया। यह ही कथा का सार है।

आपने क्या सीखा

1. मूर्ख पण्डित हर जगह हेय समझे जाते हैं
2. विद्वानों की सब जगह पूजा होती है।
3. धर्म का मूल सुख ही है।
4. धर्म के मार्ग पर सदैव प्रवृत्त होना चाहिए।
5. अपने धर्म में मरना भी कल्याणकारक है और दूसरे का धर्म भयावह है।
6. दुष्ट के साथ दुष्टता का आचरण करना चाहिए।

पाठ-7

पंचतन्त्र

ध्यान दें:

योग्यता विस्तार

ग्रन्थ विस्तार

हमारा कथा साहित्य जीवन में रास्तों के समान ही है। वहाँ हर कदम कैसा व्यवहार करना चाहिए इस विषय पर बहुत कहा गया है। यहाँ कथा की विस्तृत व्याख्यादि को पढ़कर के यदि अध्येता अधिक ज्ञान को प्राप्त करने की इच्छा करते हैं तो वे-

1. आचार्य श्री सीताराम शास्त्री द्वारा विरचित पंचतन्त्र की भाषानाम्नी हिन्दी टीका को पढें।

भाव विस्तार

1. यहाँ जो कथा वर्णित है उस पर आप नाटक को कर सकते हैं।
2. छात्रों को सरलता से उपदेश के अवसर पर इस कथा को कह सकते हैं।
3. धर्मबुद्धि जैसा आचरण करता है वैसा ही आचरण करना चाहिए।
4. अनेक विवेकबोधी वाक्यों का जीवन में पालन करना चाहिए।
5. यहाँ राजा सुदर्शन और मन्त्रियों के चरित्र को देखना चाहिए।

भाषा विस्तार

1. यहाँ जो समास वर्णित हैं उनकी तालिका बनाओ।
2. यहाँ वर्णित कठिन पदों की अर्थ सहित तालिका को बनाओ।
3. जो नए शब्द ज्ञात हुए उनका लिखते समय प्रयोग करें।

पाठान्त प्रश्न

1. चारों श्मशान वृतान्त को वर्णित कीजिए।
2. गाँव में भोजन के समय उन्होंने क्या किया।
3. उनके गुरुगृह से आने के वृतान्त को विस्तार से बताइए।
4. धर्मबुद्धि के स्वभाव का वर्णन कीजिए।
5. विद्वान कैसे सोचते हैं?
6. धर्मबुद्धि ने किस प्रकार से उपाय को किया।
7. धर्म का पालन करने से क्या होता है। कथा को आश्रित कर व्याख्या कीजिए।

पाठ-7

पंचतन्त्र

ध्यान दें:

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

उत्तर-1

1. कान्यकुब्ज गए।
2. गुरुकुल
3. बारह वर्ष
4. महाजन जिससे जाए
5. गधे को
6. धर्म से
7. सब नष्ट होने पर
8. आयु कम होगी
9. अनर्थ
10. दीर्घसूत्री

उत्तर-2

11. धर्मबुद्धि और पापबुद्धि।
12. जिसे अन्य देश की बहुत सी भाषाओं का ज्ञान न हों।
13. शमीवृक्ष पर।
14. माता के समान।
15. दूसरे का धन।
16. अपने समान ।
17. धर्माधिकारी के पास।
18. उपाय और अपाय को।

8

काव्यशास्त्र प्रवेश-1

ध्यान दें:

प्रिय शिक्षार्थियों, इस पाठ में साहित्य के प्रवेश के लिए वेदादि वाङ्मय का परिचय आपके लिए प्राप्तव्य है। संस्कृत में काव्य सम्पत्ति सागर के समान अपार और अमूल्य है। उसमें हमारी सनातन ज्ञान राशि और जीवन प्रतिबिम्बित है। उसके जैसी काव्य राशि का मूल स्वरूप वेद ही दिखाई देता है। और वेदों में उपदिष्ट तत्व ही काव्य से प्रकट किए जाते हैं। वेद तो छः अंगों सहित है। अतः आप वेद के छः अंगों का भी परिचय यहाँ प्राप्त करेंगे। वेद काव्य के मध्य में पुराण साहित्य है। इसलिए पुराण का भी सामान्य परिचय आवश्यक है। और वह यहाँ किया गया है। एवं वेद और पुराण का परिचय प्राप्त कर काव्य के प्रवेश के लिए तुम सब योग्य होंगे। उससे आगे के पाठों में कवियों के काव्य और अलंकार शास्त्र के अध्ययन में तुम्हारी भूमिका सिद्ध होती है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे;

- वेदों का परिचय प्राप्त कर पाने में;
- वेदाङ्गों का परिचय प्राप्त कर पाने में;
- पुराणों और उनके प्रयोजन का ज्ञान प्राप्त कर पाने में;
- काव्य के मूल, उसकी विशेषताएं और प्रयोजन को जान पाने में;
- काव्यों को पढ़ने पर और काव्यशास्त्र का अध्ययन करने पर पृष्ठभूमि बनाने में समर्थ हो पाने में;
- वेद, पुराण और काव्य के परस्पर समन्वय को जान पाने में;

8.1) वेद

संस्कृति सुपरिष्कृत जीवन पद्धति का नाम है, जिसके द्वारा क्रमशः आत्म उद्धार होता है। भारतीय सनातन संस्कृति में चार पुरुषार्थ परिकल्पित है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, ये चार पुरुषार्थ हैं। काम ही लौकिक जीवन की तृप्ति अथवा सुख है। अर्थ ही उस प्रकार के सुख लाभ के लिए अपेक्षित वस्त्र,

ध्यान दें:

आहार, धन, क्षेत्र आदि का जीवन साधन है। धर्म के द्वारा अर्थार्जन से उसके द्वारा सुख लाभ में शास्त्रों में विशेष नियम कहे गए हैं। मोक्ष अनन्त शाश्वत आनन्द है। इस प्रकार के विवेक में वेद ही परम प्रमाण है। वेद किसी पुरुष द्वारा रचित ग्रन्थ नहीं है। इसलिए उसे अपौरुषेय कहा जाता है। वह तो ऋषियों के द्वारा किसी योग भूमिका के द्वारा देखा अर्थात् साक्षात्कृत है। इष्ट के लाभ और अनिष्ट के परिहार में जो अलौकिक उपायों को कहता है वह वेद है। इसलिए-

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।
एनं विन्दति वेदेन तस्मात् वेदस्य वेदता॥ ऋग्वेदभाष्यभूमिका॥

उसके जानकार वेद लक्षण को प्रतिपादित करते है। उसका यह अर्थ है- पुरुष जब इष्ट के लाभ में अथवा अनिष्ट के परिहार में प्रत्यक्ष रूप से अथवा आलोचन बल से उपाय को प्राप्त नहीं करते, तब उसी प्रकार के उपाय का जो बोध कराता है वह वेद है। इसलिए वेद ही ज्ञान रूप में प्रतिष्ठित है। विद् ज्ञान अर्थ में इस धातु से वेद शब्द निष्पन्न हुआ है। इसलिए वेद अलौकिक ज्ञान राशि है।

8.2) वेद विभाग परिचय

वेद में मन्त्र और ब्राह्मण प्रधान रूप से दो भाग होते हैं। मन्त्र का संहिता यह भी नाम होता है। उसका मुख्य विषय यज्ञ ही होता है। ब्राह्मण के ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् तीन भाग हैं। ब्राह्मण भाग में मन्त्रों की व्याख्या और यज्ञ प्रक्रिया को मुख्य रूप से निरूपित किया है। आरण्यक भाग में यज्ञों के आराध्य देवताओं का आध्यात्मिकत्व को निरूपित किया गया है। उपनिषद् भाग में ब्रह्म के लक्षण को, आत्मतत्व इत्यादि विषयों को प्रतिपादित किया गया है। इसलिए उपनिषदों का वेदान्त यह नाम भी अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसी प्रकार मन्त्र ब्राह्मण में यज्ञादि कर्मो का प्रतिपादन प्रधान रूप से दिखता है। आरण्यक में तो यज्ञ कर्मों का और आध्यात्मिक तत्वों का परस्पर पर्यालोचन प्रधान रूप से दिखाई देता है। अन्य दृष्टि से कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड वेद के अलग दो विभाग परिकल्पित है।

8.3) वेद के प्रकार

वेद के चार विभाग होते हैं, वे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अर्थववेद से प्रसिद्ध है।

8.3.1) ऋग्वेद

ऋक् का अर्थ है स्तुति। यज्ञ देवता की स्तुति प्रधान वेद ऋग्वेद कहलाता है। वह छन्दोबद्ध होता है। इसलिए प्रायः पद्य रूप में होता है। मण्डल-अनुवाक-वर्ग क्रम से, अथवा अष्टक-अध्याय-सूक्त क्रम से इस विभाग की परिकल्पना सम्प्रदाय में है। आधुनिक इतिहास के जानकारों का मत है की ऋग्वेद जगत का प्राचीनतम वाङ्मय है। ऋत्विक्षु ऋग्वेद का ऋत्विक 'होता' होता है।

8.3.2) यजुर्वेद

यजुर्वेद गद्यरूपी होता है। यहाँ यज्ञ प्रक्रियाओं के प्रकार हैं। ऋत्विक्षु यजुर्वेद का ऋत्विक 'अध्वर्युः' होता है। यजुर्वेद, में अध्वर्यु सम्बद्ध मन्त्रों को प्रधानतया दिखाया गया है। इस वेद के शुक्ल यजुर्वेद कृष्ण यजुर्वेद दो प्रकार है। उसके अध्याय-अनुवाक-कण्डिका रूप में विभाग हैं। शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन और काण्व दो शाखा प्राप्त होती है। कृष्ण यजुर्वेद की तो तैत्तिरीय शाखा, मैत्रायणी शाखा और काठक शाखा तीन शाखा प्राप्त है।

ध्यान दें:

8.3.3) सामवेद

सामवेद गान प्रधान होता है। यहाँ प्राय: ऋचाओं को स्वर वैचित्र्य से गाया जाता हैं। ऋत्विक्षु सामवेद का ऋत्विक् 'उद्गाता' है। यज्ञ में उद्गातृ कर्म से सामगान होता है।

8.3.4) अथर्ववेद

अथर्ववेद अथर्व नामक ऋषि के द्वारा देखा गया। इसलिए उसका नाम 'अथर्ववेद' है। यहाँ प्रधान रूप से ऋग्वेद के ही मन्त्र होते हैं। इसके वेदज्ञ ऋत्विक्षु यज्ञ में 'ब्रह्मा' होता है। क्योंकि यहाँ सभी वेदों का सार है। वैसे ही अभिचारिक क्रिया, वनस्पति विद्या, औषध विद्या इसी प्रकार से अनेकों विद्या हैं। इस वेद में बीस काण्ड हैं। सात सौ इक्तीस सूक्त हैं। समस्त वेदान्तों का सार भूत माण्डूक्योपनिषद् यहाँ है। अथर्ववेद की नौ शाखाएँ थी। आज केवल शौनक और पिप्पलाद ये दो शाखा ही प्राप्त होती हैं।

8.4) वेदाङ्गों का परिचय

वेद के अंगभूत छ: शास्त्र हैं। वे सब वेदों के अध्ययन में, वेदों में कहे गए कर्मों में और आचरण में उपकारक होते हैं। इसलिए उनका वेदाङ्ग नाम है। वे सब इस प्रकार संगृहीत है-

शिक्षा व्याकरणं छन्दो निरुक्तं ज्योतिषं तथा।

कल्पश्चेति षडङ्गानि वेदस्याहुर्मनीषिणः॥

इसका यह अर्थ है- विद्वान कहते हैं की शिक्षा, व्याकरण, छन्द, निरुक्त, ज्योतिष, कल्प वेदों के छ: अंग होते है।

8.4.1) शिक्षा

शिक्षा वेद के उच्चारण के नियमों का बोध कराने वाला शास्त्र होता है। यहाँ वर्ण, उनके स्वर उदात्त आदि, और मात्रा ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत रूप प्रतिपादित किए गए हैं। वेद भेद से और शाखा भेद से शिक्षा भिन्न होती है। याज्ञवल्क्य शिक्षा, नारदीय शिक्षा, पाणिनीय शिक्षा इस प्रकार से अनेक शिक्षा ग्रन्थ प्राप्त होते हैं। शाखा से सम्बद्ध शिक्षा को प्रातिशाख्य भी कहा जाता है।

8.4.2) व्याकरणम्

वेद की शब्द शुद्धि को और रक्षा के लिए व्याकरण का अध्ययन अनिवार्य है। व्याकरण में तो प्रकृति प्रत्यय आदि के संस्कार से शब्द रूप की सिद्धि प्रधान कार्य परिलक्षित होता है। उससे साधु पद का प्रयोग विज्ञान सिद्ध होता है। वेद मन्त्रों का अर्थ जानने के लिए भी व्याकरण उपकारक है। यज्ञों में, आहुति त्याग में, मन्त्र विनियोग में उस देवता के अनुसार लिंङ् विभक्ति का प्रयोग करना होता है। लिङ विभक्ति का समुचित प्रयोग व्याकरण के ज्ञान के बिना सिद्ध नहीं होता है। इसी प्रकार का वेदोपकारी व्याकरण वेदाङ्ग होता है। लौकिक भाषा में भी साधु पद के प्रयोग में व्याकरण ही शरण योग्य है। सम्प्रदाय के विद्वान कहते हैं

ऐन्द्रं चान्द्रं काशकृत्स्नं कौमारं शाकटायनम्।
सारस्वतं चापिशलं शाकलं पाणनीयकम्॥ इति

ऐन्द्र, चान्द्र, काशकृत्स्न, कौमार, शाकटायन, सारस्वत, अपिशल, शाकल और पाणिनीय ये आठ व्याकरण प्रसिद्ध है। अब पाणिनीय व्याकरण प्रचलित है।

ध्यान दें:

8.4.3) छन्द

वेद मन्त्र छन्दों में निबद्ध है। छन्द में नियत मात्रा और वर्ण होते हैं। इसलिए छन्द गीति प्रधान होते हैं। छन्दों का ज्ञान बिना मन्त्रों के सम्यक् उच्चारण से नहीं हो सकता। इसलिए यह वेदांग है। पिङ्ल का छन्द सूत्र ग्रन्थप्रसिद्ध है जहाँ वैदिक लौकिक छन्दों को लक्षण सहित निरुपित किया गया है।

8.4.4) निरुक्त

वेद मन्त्रों के पदों का अर्थ निरूपण निरुक्त में होता है। निर्वचन का तपत्पर्य है पदों का अर्थबोधन है। अर्थ ज्ञान के बिना वेद मन्त्र में स्वर की परिकल्पना और कर्म आचरण असम्भव होता है। वेद में स्थित कठिन शब्दों को निरुक्त शास्त्र में व्याख्यायित किया गया है। उससे वेद के अर्थ को समझने में वेद के अध्येता का निरुक्त से महान उपकार होता है।

8.4.5) ज्योतिष

ज्योतिष काल का बोध कराने वाला शास्त्र है। वेद में विहित कर्मों को विशिष्ट काल में करना होता है। और वह समय विशेष मास, पक्ष, तिथि आदि अंशों पर आश्रित होता है। मास, पक्ष, तिथि आदि का ज्ञान ज्योतिष में होता है। इसलिए काल विशेष का आश्रय लेकर विहित वैदिक कर्मों के अनुष्ठान में काल बाधक के लिए ज्योतिष महान उपकार करता है। वेद के भेद से वेदांग भूत ज्योतिष भी भिन्न होता है। लागध कृत वेदांग ज्योतिष बहुत प्रसिद्ध है।

8.4.6) कल्प

कल्प यज्ञ प्रक्रिया के निर्वाह के लिए आवश्यक विषयों का बोधक शास्त्र होता है। कल्प शास्त्र ग्रन्थ सूत्र रूप से प्राप्त होता है।

प्रधान रूप से कल्प सूत्र दो प्रकार के होते हैं। श्रौत सूत्र और स्मार्त सूत्र। वेदों में उक्त अर्थात् श्रुति में कहे कर्म विधियों के बोधक श्रौत सूत्र हैं। स्मृति युक्त कर्म विधियों के बोधक स्मार्त सूत्र हैं। स्मार्त सूत्र भी श्रुतियों में कहे कर्म के विधाओं के बोधक होते हैं। उसके पुनः दोविभाग है- धर्म सूत्र और गृह्य सूत्र। वर्णाश्रम के भेद से धर्म का बोध कराने वाले धर्म सूत्र हैं। गृह्य सूत्र में तो सोलह संस्कारों का वर्णन है जो प्रायः गृहस्थ मार्ग में होता है। शुल्व सूत्र का श्रौत सूत्र में अन्तर्भाव होता है। और वह यज्ञ कुण्ड यज्ञशाला आदि के मापन के लिए अपेक्षित होता है। बोधायन, आपस्तम्ब, कात्यायन आदि कल्प सूत्र ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं।

इस प्रकार छः अंगों से परिमित वेद भारतीय जीवन पद्धति का मूल प्रमाण होता है। वहीं प्रमाण भूत है। वह विधि प्रतिबोध मानव जीवन के कृत्य और अकृत्य का उपदेश करता है। वेदों में कहे गए कार्य नहीं करते अथवा वेदों में निषिद्ध कार्य को करते हो तब पाप रूपी दण्ड त होता है। इसलिए वेद प्रभु के समान होकर आज्ञा देता है। उस आज्ञा के अपालन में अथवा दोष युक्त पालन में राजा के समान दण्ड देता है। इसलिए वेद प्रभु सम्मित अलंकार शास्त्र सम्प्रदाय में प्रसिद्ध है।

वेद विश्व का प्रथम वाङ्मय होता है। उसके बाद हुए जो शास्त्र, पुराण, काव्य आदि वाङ्मय हैं उनका मूल वेद ही है। उनमें वेद तात्पर्य ही प्रतिध्वनित है। वेद तात्पर्य से बाहर का वाङ्मय भारतीय संस्कृति में ग्राह्य नहीं होता है।

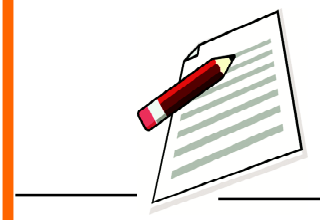

ध्यान दें:

पाठगत प्रश्न-1

1. यज्ञ विषय की प्रधानता किस वेद में है?
2. स्वरबोधक शास्त्र क्या है?
3. निरुक्त क्या करता है?
4. गान प्रधान वेद कौन-सा है?
5. स्तुति प्रधान वेद कौन-सा है?
6. प्रभुसम्मित कौन है?
7. वेद कहाँ से अपौरुषेय है?
8. भारतीय संस्कृति का संक्षिप्त रूप क्या है?

8.5) पुराण

वेद को पढ़कर जीवन के कृत्य और अकृत्य विवेक को प्राप्त करने में असमर्थ उनके विवेक के लिए तत्वदर्शी मुनियों ने पुराण को रचा। और वे पुराण कर्ता भगवान वेदव्यास है। पुराणों में कहे गए तत्व को उदाहरण रूप में पुराने देव-मुनि-राजा आदि की कथा को कहा गया है। इसलिए 'इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्' साम्प्रदायिक कहते हैं। इतिहास और पुराण से वेद तात्पर्य का विस्तार से निरूपण होता है। अर्थात् विस्तार से दृष्टान्त आदि से अर्थ को प्रकाशित किया है। पुराणों में वर्णित विषय वेदों में कहे हुए गूढ़ तत्वों का भी सरलता से निरूपण करने के लिए अत्यन्त उपकारी हैं। पुराने वृत्तान्तों को धर्म आदि तत्वों के निरूपण के लिए उदाहाण रूप में जहाँ वर्णित करते है वहाँ तत्वों के अभिव्यंजक वे सदैव नए ही होते हैं। इसलिए पुराना भी नया पुराण है ऐसा कहते है। पुरा नाम का अर्थ प्राचीन है। पुराण ग्रन्थों का सामान्य स्वरूप् होता है जैसे-

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पंचलक्षणम्॥

सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर, वंशानुचरित इन पांच अंशों से युक्त पुराण होता है। सर्ग सृष्टि है। प्रतिसर्ग ही सृष्टि लय और पुनः सृष्टि है। वंश ही सृष्टि आदि कब कब कौन-कौन वंश था इस प्रकार का वर्णन। वंशानुचरित में सूर्य चन्द्रवंशीय राजाओं का वर्णन है। ये पांच अंश पुराण में स्थित है। इनके अतिरिक्त भी अनेक विषय पुराणों में हैं।

8.6) पुराणों की संख्या- नाम

पुराणों के रचयिता भगवान वेद व्यास हैं। वे पुराण मुनि इस नाम से प्रसिद्ध ही हैं। पुराणों की संख्या अट्ठारह हैं। उनके नामों के ग्रहण के लिए कोई प्राचीन श्लोक सर्वत्र उद्धृत है। और वह है-

मद्वयं भद्वयं चौव ब्रत्रयं वचतुष्टयम्।
अनापलिंगकूस्कानि पुराणानि प्रचक्षते॥

यहाँ पुराणों के प्रथम अक्षर को ग्रहण करके उनके नामों का स्मरण किया गया है।

मद्वयम् - मकार प्रथम अक्षर से युक्त दो पुराण है। और वह मत्स्य पुराण, मार्कण्डेय पुराण है।

ध्यान दें:

भद्वयम् - भकार प्रथम अक्षर से युक्त दो पुराण है। और वह भविष्य पुराण, भागवत पुराण है।

ब्रत्रयम् - बकार प्रथम अक्षर से युक्त तीन पुराण है। और वह ब्रह्माण्ड पुराण, ब्रह्म पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण है।

वचतुष्टयम् - वकार प्रथम अक्षर से युक्त चार पुराण है। और वह वराह पुराण, वामन पुराण, वायु पुराण, विष्णु पुराण है।

अ- अग्नि पुराण

ना- नारद पुराण

प- पद्म पुराण

लि- लिंग पुराण

ग- गरुड़ पुराण

क- कूर्म पुराण

स्क - स्कन्द पुराण

इस प्रकार अट्ठारह पुराण प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त गणेश-नारसिंह-सौर आदि अट्ठारह उपपुराण प्रसिद्ध हैं। सभी पुराणों का विस्तार अनन्त आकाश के समान गोचर होता है। पुराणों में वेदों में कहे हुए जीवन विवेक का बोध कराया गया है। किन्तु वेदों में सूक्ष्मता से कहे हुए सृष्टि प्रलय का विचार युग-मन्वन्तर आदि काल परिमाण भगवत अवतार ऐसे ही विशिष्ट विषय पुराणों में अच्छे से निरूपित किए गए हैं। धर्म अधर्म के निर्णय प्रसंग में पुराणों के श्लोक प्रमाण रूप से स्वीकार किए गए है।

पुराणों की प्रतिपादन शैली वेद शैली से भिन्न दिखाई देती है। मन्द बुद्धि वालों के लिए भी गम्भीर तत्वों को जितना हो सकता है उतना विषय का निरुपण यहाँ किया गया है। प्राचीन कथा का निरुपण प्राय: सभी को प्रकाशित होता है किन्तु यहाँ वैदिक भाषा नहीं होती। लौकिक जीवन दर्शन के लिए किया गया निरुपण लोगों को सरलता से हृदय ग्राही होता है। पुराणों में वेद काव्य शैली के मध्य की कोई शैली होती है। उनमें कृत्य अकृत्य का उपदेश मित्र उपदेश के समान कठिन नहीं है, न ही अचानक परिहार्य होते हैं। इसलिए पुराण को आलंकारिक मित्र सम्मित कहते हैं।

पाठगत प्रश्न-2

9. पुरा इसका क्या अर्थ है?

10. पुराण मुनि कौन है?

11. पुराण के कितने लक्षण है

12. मित्रसम्मित नाम का क्या अर्थ है?

13. व-चतुष्टय से कितने पुराणों को ग्रहण करते है?

ध्यान दें:

8.7) काव्य

कवि का कर्म काव्य है ऐसा अलंकारिक कहते हैं। और वह रमणीय शब्द अर्थ युगल है, रसात्मक वाक्य है यह भी अन्य विद्वान कहते हैं। हमारी परम्परा में जीवन विवेक के लिए शास्त्रमार्ग के समान ही काव्य मार्ग को भी अत्यन्त महत्वपूर्ण माना गया है।

द्वे वर्त्मनी गिरां देव्याः शास्त्रं च कविकर्म च।
प्रज्ञोपज्ञं तयोराद्यं प्रतिभोद्भवमन्तिमम्॥ इति अवदत् भट्टतौतः।

अन्वय अर्थ- शास्त्रम्- वेदशास्त्रराशिः, कविकर्म च- काव्यं च, गिरां देव्याः- सरस्वत्याः, द्वे वर्त्मनी- द्वौ मार्गौ। तयोः- काव्ययोः मध्ये, आद्यम् - प्रथमम् अर्थात् शास्त्रम्, प्रज्ञोपज्ञम्- बुद्धिषक्त्या निष्पन्नम्, अन्तिमम्- अन्त्यम् अर्थात् काव्यम्, प्रतिभोद्भवम् - कविप्रतिभाश्पाक्त्या निष्पन्नम् अस्ति।

आशय- ज्ञान की देवता सरस्वती होती है। उसकी प्रवृत्ति के लिए मार्ग में दो लोक है। एक शास्त्र मार्ग है। वह प्रज्ञा सामर्थ्य से निष्पन्न है। प्रज्ञा के विचार बल से जो ज्ञान को प्राप्त करने की इच्छा करते हैं। उनका शास्त्ररूपी मार्ग समुचित होता है। सरवस्ती से दूसरा मार्ग काव्य मार्ग होता है। और वह कवि के प्रतिभा बल से निष्पन्न है। जो सहृदय के वश से काव्य में अनुरक्त हैं उनकों काव्य के द्वारा जीवन विवेकात्मक ज्ञान प्राप्त हो सकता है। इस प्रकार शास्त्र और काव्य जीवन सार्थकता के सम्पादन के लिए ही आविष्कृत है। जिसकी जिस प्रकार की अभिरूचि अथवा स्वभाव होता है वह उस मार्ग का अनुसरण करता है। कोई प्राचीन श्लोक कहता है-

वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे।
वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद् रामायणात्मना॥ इति

अन्वय अर्थ- वेदवेद्ये- सर्ववेदैः वेदितुं शक्ये, परे पुंसि- परमपुरुषे अर्थात् श्रीमन्नारायणे, दशरथात्मजे- दशरथस्य पुत्रे, जाते- संजाते सति, वेदः- श्रुतिः, प्राचेतसात् - वाल्मीकि द्वारा, रामायणात्मना- श्रीमद्रामायणरूपेण, साक्षात् आसीत्- प्रकटितं प्रत्यक्षं वा आसीत्।

तात्पर्यम्- सकल वेद वेदान्तों में पुरुषोत्तम महाविष्णु प्रसिद्ध है। सभी वेद उस पुरुष को ही वर्णित करते है। वह जब दशरथ पुत्र के रूप में अर्थात् श्री राम रूप में अवतारित हुआ था तब समग्र वेद वाल्मीकि के द्वारा रामायण काव्य रूप से प्रकट हुआ था। इसलिए सम्प्रदाओं को जानने वाले विद्वानों का अभिप्राय है कि जैसे नारायण ही श्री राम के रूप में आए वैसे वेद ही रामायण रूप से आया गया। उससे शास्त्रों के समान हीं काव्य की भी परम्परा बहुत प्रचलित थी ऐसा समझते हैं। और हमारे सम्प्रदाय में काव्य की अतीव प्रतिष्ठा है।

8.8) काव्य का मूल

जैसे हमारे सभी विद्या प्रकारों का मूल वेद होता है वैसे काव्य का मूलस्थान वेद ही है। काव्य का प्रथम स्वरूप वेद है। वेदों में हजारों मन्त्र परम काव्यरूप में है।

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥ कठोपनिषद्।

अन्वय अर्थ- आत्मानम्- स्वमात्मानम्, रथिनं विद्धि- रथी, रथस्वामी इति जानातु। शरीरं तु- देहं तु, रथं विद्धि- रथः इति जानातु। बुद्धिं तु- मतिं तु, सारथिं विद्धि- सारथिः रथचालकः इति जानातु। मनः एव - चित्तमेव, प्रग्रहं विद्धि- रथाश्वनियन्त्रकं सूत्रम् इति जानातु।

ध्यान दें:

भावार्थ- यहाँ जीवात्मा रथ रूप से परिकल्पित है। शरीर रथ रूप से परिकल्पित है। जैसे रथ का आश्रय लेकर कोई इष्ट स्थान को जाता है वैसे ही शरीर का आश्रय लेकर जीवात्मा अभीष्ट फल को प्राप्त करता है। जैसे रथ के सम्यक् संचालन के लिए उचित सारथी होता है, वैसे कार्य अकार्य का विवेक बुद्धि शरीररूपी रथ को चलाने के लिए आश्रय लिए हुए जिसके द्वारा रथी आत्मा मोक्ष रूपी अपने स्थान को प्राप्त करती है। मन की यहाँ रज्जु रूप में कल्पना की गई है। सारथी के हाथ में जैसे रज्जु होती है वैसे बुद्धि के अधीन मन होता है। यहाँ जीव के मुक्ति लाभ उपाय को कहा है। उस काव्य शैली का निरूपण स्पष्ट प्रतिभासित होता है।

अथवा जैसे,

यथा सम्पुष्पितस्य वृक्षस्य दूरात् गन्धों वाति एवं पुष्पस्य कर्मणो दूरात् गन्धो वाति। महानारायणोपनिषद्।

अन्वयार्थः- यथा- यद्वत, सम्पुष्पितस्य- विकसितपुष्पयुक्तस्य वृक्षस्य - तरोः, गन्धः - परिमलः, दूरात्- दूरप्रदेशात्, वाति- प्रसरति, तथा- तद्वत्, पुष्पस्य- कल्याणात्मकस्य, कर्मणः - क्रियायाः, दूरात्- दीर्घतया, गन्धः - सत्फलं, वाति- व्याप्नोति।

यहाँ सत्कर्म प्रशंसा का पुष्पभरित वृक्ष का सादृश्य वर्णित है। उससे यह मन्त्र काव्यात्मक हुआ। इस प्रकार सहस्त्रों वेद मन्त्र हैं। जिनमें रमणीय काव्य स्वरूप उल्लासित है। इस प्रकार वेद काव्य का मूल प्रतीत होता है।

8.9) काव्य का विकास

जैसे वेदों में वैसे पुराणों में भी काव्यात्मक श्लोक प्राप्त होते हैं। भगवत महापुराण तो रसात्मक रमणीय वर्णनों से विलसित पुराण है। काव्य धर्म का वेदों की अपेक्षा अधिक विकास दिखाई देता है। परन्तु पुराणों में काव्यशैली प्रधानतया दिखाई नहीं देती। इसलिए जगत में प्रथम परिपूर्ण काव्य अवतार का नाम वाल्मीकि द्वारा रचित रामायण है। इसलिए रामायण आदिकाव्य और आदिकवि वाल्मीकि संसार में प्रसिद्ध है। भोजराज -

मधुमयभणितीनां मार्गदर्षी महर्षिः कहते है।

अर्थ- सरस सुमधुर वचनों की रचना करने वाले सभी कवियों के मार्गदर्शी महर्षि वाल्मीकि हैं। रामायण में भी सभी काव्यों का सर्वोच्च निदर्शन है। रामायण में परिपूर्ण काव्यत्व दिखाई देता है। रामायण को आधार बनाकर अनेकों कवियों ने हजारों काव्यों की रचना की। इसलिए दूसरे कवियों का आधार कहकर उत्तर काल में कवियों का परमाधार रामायण होता है वाल्मीकि ने स्वयम् उद्घोषित किया।

रामायण से अन्य विरचित बड़े काव्य का नाम महाभारत है। महाभारत काव्य है, व्यास ने स्वयं कहा है।

कृतं मयेदं भगवन् काव्यं परमपूजितम्।

हे भगवन् मेरे द्वारा महाभारत नामक परम पूज्य काव्य को रचा गया। उसका गाम्भीर्य 'भारतं पंचमो वेदः' इस प्रसिद्ध वचन से ज्ञात होता है। उत्तर काल में महाभारताश्रित अनेक कवियों ने हजारों काव्य की रचना की।

महाभारत से अन्य कालिदास-भास-अश्वघोष बहुत से कवियों ने उत्कृष्ट महाकाव्य, नाटक आदि

ध्यान दें:

अनेक प्रकार के काव्यों की रचना की। उसके बाद भारवि-माघ-बाणभट्ट-भवभूति-श्री हर्ष-कुमारदास आदि अनेक कवियों नें हजारों काव्य रचे। उससे काव्यलोक अत्यन्त विकास को प्राप्त हुआ। इसलिए बहुत से महाकाव्यों, खण्डकाव्यों, नाटकों, चम्पूकाव्यों, गद्यकाव्यों इस प्रकार के अनेक काव्यप्रकार हुए। आज भी संस्कृत काव्य प्रपंच बढ़ता ही दिखाई दे रहा है। इसलिए आज संस्कृत काव्य लोक की गणना असम्भव हो गई।

8.10) काव्य की विशेषताएँ और प्रयोजन

वेद प्रभुसम्मित कहलाता है। पुराण मित्र सम्मित कहलाता है। काव्य ही कान्ता सम्मित होते हैं। कान्तासम्मितं का अर्थ कान्ता सदृश है। कान्ता का अर्थ है प्रिय भार्या। जब लोक में साध्वी को कुशला को और कान्ता को कोई भी जिज्ञासु पूछता है। तब वह साक्षात् अभिप्राय वाचक वाक्यों को त्याग देती है। फिर स्मित-कटाक्ष-मुख मन आदि चेष्टा विशेष परोक्ष रूप से अपने अभिप्राय के सूचक वचनों से अभिमत अर्थ के लिए ज्ञापित करती है वहाँ प्रिय को प्रवृत्त करती है। जैसे क्या आम्रफल का आस्वादन करोगी या द्राक्षाफल अर्थात् अंगूर का ऐसा प्रिय कान्ता को पूछता है। तब आम्रफल का आस्वादन करूंगी ऐसा साक्षात् नहीं कहती है। आम्रफल मीठा, परिमलयुक्त, बहुत से रंगों से युक्त होता है ऐसा कहती है। उसे इस प्रकार कहना होता है कि मैं आम्रफल के आस्वादन की इच्छा करती हूँ। इस प्रकार कान्ताओं की जैसी परोक्षरूप से अपनी अभिप्राय व्यंजन शैली होती है वैसे ही काव्य की भी होती है। इसलिए काव्य कान्तासम्मित है ऐसा प्रसिद्ध है। कान्ता वचन जैसे सरस मनोहर होता है वैसे काव्य भी सरस और रमणीय होता है। जिससे सहृदयों का हृदय आकृष्ट होता है। इस कारण से वेद और पुराण से विलक्षण अर्थात् अलग होता है।

इस प्रकार के काव्य के आनन्द बोध रूप अनेक प्रयोजन है। वेद अर्थ के विस्तार से विवरण के लिए काव्य उपयोगी है ऐसा प्राचीनों का मत था। जैसे भगवान् वाल्मीकि ने कहा है-

स तु मेधाविनौ दृष्ट्वा वेदेषु परिनिष्ठितौ।
वेदोपबृंहणार्थाय तावग्राहयत प्रभुः॥ वाल्मी.रा.बा.का.4.6
काव्यं रामायणं कृत्स्नं सीतायाश्चरितं महत्॥ 4.7

अन्वय अर्थ- प्रभुः - वाल्मीकिः, मेधाविनौ - प्रज्ञावन्तौ, वेदेषु - श्रुतिषु, परिनिष्ठितौ - सम्यक् अध्ययनवन्तौ, तौ- लवकुशौ, दृष्ट्वा- अवलोक्य, ज्ञात्वा वा, वेदोपबृंहणार्थाय - वेदार्थस्य समन्वयदृष्टया प्रदर्शनाय, सीतायाः चरितम् - जानकीचरित्रात्मकं, कृत्स्नं - समस्तम् रामायणम्-रामायणनामकम्, महत् काव्यम् - महाकाव्यम्, अग्राहयत- ग्राहितवान्, शिक्षितवान्।

यहाँ यह भाव है कि वाल्मीकि ने लवकुश को वेदाध्ययन से वेदों में कहे जीवन धर्मों को लोक जीवन में समन्वय की दृष्टि से निरूपण करने के लिए रामायण काव्य को पढ़ाया। उससे काव्य वेदार्थ के निरूपण में अत्यन्त सहायक होता है ऐसा समझते हैं। व्यास का महाभारत काव्य भी वेदार्थ विस्तार ही परिलक्षित होता है। इसलिए पंचम वेद ऐसी कीर्ति महाभारत की होती है। वेदों के उपदेश से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थों का ही विवेक होता है। इसलिए आलंकारिक काव्य का प्रयोजन पुरुषार्थों की प्राप्ति है ऐसा कहते हैं।

भामह कहते हैं-

धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च।
करोति कीर्तिं प्रीतिं च साधुकाव्य निषेवणम्। काव्यालंकार 1.2।

पाठ-8

काव्यशास्त्र प्रवेश-1

ध्यान दें:

अन्वयार्थ- साधुकाव्यनिषेवणम् - सत्काव्यानाम् अध्ययनम्, धर्मार्थविषयेषु, कलासु च-गीत-नाटयादिकलानां विषयेषु, वैचक्ष्ण्यम् -कौशलं, बोधम्, कीर्तिम् - यशः, प्रीतिम् - आनन्दं च करोति-जनयति।

भावार्थ- सत्काव्यों का प्रथम फल होता है कि धर्मादि विषयों का सम्यक् बोध हो। काव्य के द्वारा कवियों को धनलाभ भी होता है। गीत-नृत्य आदि कलाओं में काव्य से कौशल बढ़ता है। काव्य से कवियों को महान यश की प्राप्ति होती है। उस कीर्ति से कालिदासादि महाकवि आज भी जीवित हैं। दूसरा महान फल प्रीति है। प्रीति का नाम आनन्द है। और यहाँ वह रसास्वाद है। वेद-शास्त्र-पुराणादि में पुरुषार्थ विवेक नीरसता लिए होता है। काव्य में तो रसास्वादपूर्वक पुरुषार्थविवेक होता है ऐसी काव्य की विशेषता है।

लोक में वेदादि के अध्ययन से जीवन विवेक को प्राप्त किया ऐसा कम ही दिखाई देता है। काव्यों से जीवन विवेक को प्राप्त करने वालों की संख्या अधिक हैं। इसलिए इस लोक में काव्य की अत्यन्त आवश्यकता और प्रतिष्ठा है।

पाठ सार

जगत में प्राचीनतम वाङ्मय वेद है। वह अपौरुषेय है। वह इष्ट प्राप्ति और अनिष्ट के परिहार के उपाय को बताता है। भारतीय संस्कृति में वह ही परम प्रमाण है। और वह ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद चार प्रकार का है। इन चारों वेदों के मन्त्र, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् उपविभाग होते हैं। यह वेद सांसारिक योगक्षेम ओर मोक्ष की सिद्धि के लिए उपदेश देता है। इसके शिक्षा-व्याकरण-छन्द-निरुक्त-ज्योतिष-कल्प छः अंग शास्त्र होते हैं। वेद प्रभुसम्मित कहलाते हैं।

वेदों में कहे गए धर्म को सरलता से निरूपित करने के लिए भगवान वेदव्यास ने पुराणों को रचा। वे अट्ठारह हैं। पुराणों को मित्र सम्मित कहते हैं।

काव्य तो कान्ता सम्मित होते हैं। वेदों में कहे गए धर्म अर्थ काम मोक्ष का बोध यहाँ सुगमता से होता है। काव्य का प्रथम निदर्शन वेद मन्त्र ही है। पुराणों में भी काव्यात्मक शैली दिखाई देती है। रामायण तो समस्त जगत का आदिकाव्य है। रामायण से आरम्भ होकर काव्य का विकास हुआ। फिर व्यास ने महाभारत को रचा। महाभारत पंचम वेद है ऐसा प्रसिद्ध है। रामायण और महाभारत का आश्रय लेकर हजारों काव्यों को अनेक कवियों के द्वारा रचा गया है। उससे काव्यलोक को महान विकास प्राप्त हुआ। काव्य के द्वारा जीवन में कृत्य अकृत्य का विवेक प्राप्त करने वाले अधिक हैं। इसलिए काव्य का अत्यन्त महत्व है।

आपने क्या सीखा

- वेदों का परिचय
- वेदांगों का परिचय
- पुराणों का ज्ञान और प्रयोजन
- काव्य का मूल, विशेषताएँ और प्रयोजन
- वेद, पुराण और काव्य का परस्पर समन्वय

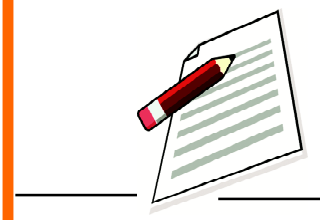

ध्यान दें:

पाठगत प्रश्न-3

14. सरस्वती के दो मार्ग कौन-से हैं?
15. काव्य का प्रथम अस्तित्व कहाँ प्राप्त होता है?
16. आत्मरूपी रथी की बुद्धि कौन है?
17. आदिकाव्य क्या है?
18. काव्य वचनों का मार्गदर्शी कौन है?
19. पंचम वेद कौन है?
20. कान्तासम्मित उपदेश क्या है?
21. वाल्मीकि ने लवकुश को किसलिए रामायण पढ़ायी?
22. काव्य से पुरुषार्थ विवेक कैसे होता है?
23. काव्य में आनन्द क्या है?

पाठान्त प्रश्न

1. वेद का लक्षण क्या है?
2. वेद के भेद और उपभेद कौन-से है?
3. ऋग्वेद का परिचय कराएँ?
4. वेदाङ्गों का परिचय कराएँ?
5. पुराण के पांच लक्षणों की व्याख्या कीजिए।
6. अट्ठारह पुराणों के नाम क्या हैं?
7. काव्यात्मक मन्त्र की अन्वय सहित व्याख्या कीजिए।
8. काव्य कान्तासम्मित को सोदाहरण निरूपित कीजिए।
9. काव्य वेद से और पुराण से कैसे अलग है?
10. काव्य प्रयोजन कितने है?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

उत्तर-1

1. यजुर्वेद में
2. शिक्षा
3. वेद मन्त्रों के पदों का अर्थ निरूपण।

ध्यान दें:

4. सामवेद
5. ऋग्वेद
6. वेद
7. वेद किसी पुरुष के द्वारा रचित ग्रन्थ नहीं है, इसलिए वेद अपौरुषेय है।
8. छः अंगों सहित वेद

उत्तर-2

9. प्राचीन
10. वेदव्यास
11. पाँच
12. मित्र के जैसा
13. वराहपुराण, वामन पुराण, वायु पुराण और विष्णु पुराण।

उत्तर-3

14. वेदशास्त्रराशि और काव्य
15. वेद में
16. सारथी
17. रामायण
18. वाल्मीकि
19. महाभारत
20. काव्य
21. वेदार्थ के संवर्धन के लिए
22. रसास्वादन से
23. रस

9

काव्यशास्त्र प्रवेश-2

ध्यान दें:

कवि की कारयित्री प्रतिभा से समुद्भूत कर्म काव्य होता है। और उस काव्य के विश्लेषण के लिए जिस शास्त्र का प्रादुर्भाव हुआ उसे अंलकारशास्त्र कहते हैं। अलंकारशास्त्र कवि कर्म काव्य का दर्पण होता है। अलंकारशास्त्र में कहे गए मार्ग के द्वारा काव्य के परिशीलन से कवि कौन, प्रतिभा क्या, काव्य के लक्षण और प्रकार, काव्य उत्तम अथवा अधम किस प्रकार का, सहृदय कौन, रस क्या, काव्य में गुण, अलंकार, रीतियों का प्रयोग, वृत्ति का स्वरूप क्या इत्यादि विषयों का ज्ञान होता है। अलंकार शास्त्रज्ञ ही काव्य के उत्तम परिशीलन में समर्थ होते हैं। काव्य अनुशीलन के लिए संस्कृत साहित्य परम्परा में रचे अलंकार शास्त्रों में आनन्दवर्धन कृत ध्वन्यालोक, जगन्नाथ कृत रसगंगाधर, मम्मट आचार्य कृत काव्यप्रकाश, दण्डी रचित काव्यादर्श, विश्वनाथ कृत साहित्यदर्पण, राजशेखर कृत काव्यमीमांसा, अप्पय दीक्षित कृत कुवलयानन्द इत्यादि ग्रन्थ अत्यन्त प्रसिद्ध हैं।

अलंकारशास्त्र का नामकरण अत्यन्त प्राचीन है। जिस समय में यह नामकरण हुआ। तब अलंकार बहुत प्रसिद्ध थे कुछ कल्पना करते हैं। अलंकरण अलंकार है। अलंकरण सौन्दर्य है। किसी ने कहा है उससे गुण, अलंकार, रीति आदि सभी का ग्रहण होता है। यहाँ उसका प्रमाण है- काव्य ग्राह्यमलंकरात्, 'सौन्दर्यमलंकार' कहा गया है। राजशेखर ने अलंकारशास्त्र इस नाम के स्थान पर साहित्य विद्या नाम स्वीकार किया।

यह अलंकारशास्त्र ही वैदिक लौकिक ज्ञान के लिए अत्यन्त उपकारक होता है। राजशेखर के द्वारा वेदांगत्व को स्वीकार किया गया। 'पंचमी साहित्य विद्या इति यायावरीयः, सा च चतसृणां विद्यानां निष्यन्दरूपा'।

अलंकारशास्त्रों में प्रतिपादित कुछ पारिभाषिक शब्दों के परिचय के लिए अलंकारशास्त्र पद परिचय इस पाठ का आविर्भाव हुआ। इस पाठ में कवि का स्वरूप, कवि के भेद, प्रतिभा का स्वरूप, सहृदयों का स्वरूप, काव्य का स्वरूप, काव्य का प्रयोजन, वृत्ति का स्वरूप और उसके भेद, रस स्वरूप और उसके भेद वर्णित है।

ध्यान दें:

उद्देश्य

इस पाठ को पढकर आप सक्षम होंगे:

- कवि के स्वरूप और उसके भेदों को जान पाने में;
- प्रतिभा के स्वरूप को जान पाने में;
- सहृदय के स्वरूप को जान पाने में;
- काव्य के स्वरूप को जान पाने में;
- काव्य के प्रयोजन को जान पाने में;
- वृत्ति के स्वरूप और वृत्ति भेद को जान पाने में;
- रस के स्वरूप और रस भेदों को जान पाने में;

9.1) कवि का स्वरूप और कवि के भेद

''अपारे काव्यसंसारे कविरेकः प्रजापतिः।
यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते॥''

ध्वन्यालोककार आनन्दवर्धनाचार्य का कवि महात्मयपरक वचन प्रसिद्ध ही है। कवि काव्य संस्कार का प्रजापति होता है। जैसे वह निर्माण की इच्छा करता है, वैसे ही काव्य को निर्मित करता है। वह काव्य रसिकों सहृदयों का परम आदरणीय है। जो काव्यकर्ता है वह कवि होता है। कवते अर्थात् वर्णित करता है। किस प्रकार का वर्णन कवि करते हैं यह प्रश्न सभी के मन में उठता है। यहाँ उपस्थित प्रत्यक्षीकृत का अपनी प्रतिभा से सरस वाणी युक्त कथन वर्णन होता है। उसी प्रकार के वर्णन से कवि स्वयं रसास्वाद करता है और अन्यों को कराता है। प्रतिभा दो प्रकार की है- कारयित्री और भावयित्री। वहाँ कारयित्री प्रतिभा से ही कवि काव्य को निर्मित करता है। काव्य निर्माण के लिए प्रतिभा के साथ व्युत्पत्ति भी अपेक्षित है। कवि की काव्य रचना आकाश पुष्प के समान मिथ्याभूत नहीं होती वहाँ वास्तविकता अवश्य ही रहती है। कवि वास्तविक अर्थ को ही लोकोत्तर चमत्कार के सन्निवेश से वर्णित करता है। कवि शब्द का सामान्यतः कारयित्रीप्रतिभावान व्युत्पत्तिमान अर्थ वर्णित है। वैसे ही काव्यमीमांसाकार राजशेखर 'प्रतिभाव्युत्पत्तिमान् च कविः कविरित्युच्यते'। यास्क आचार्य के मत में क्रान्तदर्शी अर्थ है।

काव्यमीमांसानुसार कवि तीन प्रकार के होते हैं शास्त्र कवि, काव्यकवि और उभयकवि।

क- शास्त्र कवि- जो कवि शास्त्रीय विषयों को काव्य रूप से प्रस्तुत करता है वह शास्त्र कवि है। शास्त्रीय विषयों को शास्त्रीय शैली में निबद्ध से शास्त्र कवि काव्य में रस सम्पद् विच्छेद को धारण करता है। शास्त्र कवि पुनः तीन प्रकार से विभक्त होता है। शास्त्र का रचयिता, शास्त्र में काव्य का निवेशयिता और काव्य में शास्त्र का निवेशयिता।

ख- काव्य कवि- जो कवि कथन वैचित्र्य से शास्त्र में स्थित तार्किक अर्थ के शैथिल्य को सम्पादित करता है वह काव्य कवि है। राजशेखर के मत में काव्य कवि आठ प्रकार से विभक्त हैं- रचना कवि, शब्द कवि, अर्थ कवि, अलंकार कवि, उक्ति कवि, रस कवि, मार्ग कवि तथा शास्त्रार्थ कवि।

ध्यान दें:

ग- उभय कवि- जो कवि अपने अनुभव के आधार से शास्त्रीय विषय को वैसे प्रस्तुत करता है जैसे शास्त्रीय रूप के साथ काव्य रूप भी वह कवि धारण करता है।

पाठगत प्रश्न-2

1. कवि शब्द किस धातु से उत्पन्न है?
2. कवि महात्मयपरक आनन्दवर्धन का क्या वचन है?
3. कवि किस प्रतिभा के द्वारा काव्य को निर्मित करता है?
4. कवि शब्द का यास्क के मत में क्या अर्थ है?
5. राजशेखर के मत में प्रतिभा के साथ क्या काव्य निर्माण के लिए अपेक्षित है?
6. कवि का लक्षण क्या है?
7. कवि कितने प्रकार के है?
8. शास्त्र कवि कौन है?
9. काव्य कवि कौन है?
10. उभय कवि कौन है?

9.2) प्रतिभा

जैसे सूर्य प्रकाशन शक्ति के बिना कुछ भी प्रकाशित करने में समर्थ नहीं है। इसी प्रकार प्रतिभा के बिना कवि काव्य की सृष्टि में समर्थ नहीं है। भट्टतौत ने प्रतिभा का स्वरूप क्या कहा है।

'प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मता।'

प्रतिभा नवीन अर्थों के प्रकाशन में समर्थ प्रज्ञा होती है। प्रतिभा प्रज्ञा के प्रकार भूत है। भामह कहते हैं प्रतिभा काव्य के निमार्ण में हेतु है।

आचार्य वामन ने काव्यालंकार सूत्र वृत्ति ग्रन्थ में कहा है।

'कवित्वबीजं प्रतिभानम्'। कवित्व का बीज प्रतिभा होती है। प्रतिभा के बिना काव्य निष्पन्न नहीं होता। और यदि काव्य निष्पन्न हो जाए तो उपहास प्राप्त होगा न कि यश।

अभिनवगुप्ताचार्य के मत में

'अपूर्ववस्तुनिर्माणक्षमा प्रज्ञा प्रतिभा'। अर्थात् नवीन विषय की संरचना में समर्थ प्रज्ञा प्रतिभा होती है।

जगन्नाथ के मत में- 'काव्य घटनानुकूल शब्दार्थो पस्थिति: प्रतिभा'। काव्यघटना को काव्य के निर्माण में अनुकूल शब्द अर्थ की उपस्थिति शब्द अर्थ के अनुकूल विकास प्रतिभा होती है।

प्रतिभा का लक्षण राजशेखर के द्वारा कहा गया है- 'या शब्दग्राम्म् अर्थसार्थम् अलंकार-तन्त्रम्

ध्यान दें:

उक्तिमार्गम् अन्यदपि तथाविधम् अधिहृदयं प्रतिभासयति सा प्रतिभा।' प्रतिभा एक कविनिष्ठ विशेष शक्ति है या शब्द अर्थ अलंकार रीति अन्य भी काव्य तत्व हृदय में प्रतिभासित होते हैं। वह प्रतिभा राजशेखर के मत में कारयित्री और भावयित्री दो प्रकार की होती है। वहाँ कवि की काव्य रचनाओं की उपकारिका कारयित्री प्रतिभा है। भावयित्री प्रतिभा काव्य के अनुशीलन में सहृदयों के भावों की उपकारिका है।

अलंकारिकों के अनुसार वह संस्कार से जनित प्रतिभा ही काव्य का कारण है। इसलिए भामह कहते है-

'काव्यं तु जायते जातु कस्यचित्प्रतिभावतः।'

राजशेखर के अनुसार व्युत्पत्ति और प्रतिभा काव्य के कारण है। इसलिए कहा गया है- 'प्रतिभाव्युत्पत्ती मिथः समवेते श्रेयस्यौ इति यायावरीयः'। उचित अनुचित विवेक व्युत्पत्ति है।

मम्मटाचार्यानुसार प्रतिभा, व्युत्पत्ति, अभ्यास यह तीन काव्य का कारण है। निरन्तर काव्य के निर्माण अथवा अध्ययन में प्रवृत्ति अभ्यास है। इसलिए उन्होंने कहा है-

शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात्।
काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे॥

रुद्रटाचार्य के मत में भी **'प्रतिभाव्युत्पत्त्याभ्यासाः काव्यहेतुः'।**

दण्डि के मत में -

नैसर्गिकी च प्रतिभा श्रुतं च बहुनिर्मलम्।
अमन्दश्चाभियोगोऽस्याः कारणं काव्यसम्पदः॥

किन्तु-

'अव्युत्पत्तिकृतो दोषः शक्त्या संव्रियते कवेः।
यत्वशक्तिकृतस्तस्य स झटित्यवभासते॥'

आनन्दवर्धनाचार्य के मत विश्लेषण से ज्ञात होता है प्रतिभा शक्ति ही काव्य का हेतु है। एवं प्रतिभा काव्य के निर्माण में हेतु उसके सहायक व्युत्पत्ति अभ्यास मानना ही उचित है।

पाठगत प्रश्न-2

11. भट्टतौत के मत में प्रतिभा क्या है?
12. अभिनवगुप्ताचार्य के मत में प्रतिभा क्या है?
13. जगन्नाथ के मत में प्रतिभा लक्षण क्या है?
14. राजशेखर के मत में प्रतिभा लक्षण क्या है?
15. राजशेखर के मत में प्रतिभा कितने प्रकार की है?
16. व्युत्पत्ति किसे कहते हैं?
17. अभ्यास किसे कहते हैं?

ध्यान दें:

18. मम्मटानुसार काव्य के कितने कारण हैं?

19. वस्तुतः काव्य का क्या कारण है?

9.3) सहृदय

कवि के समान हृदय सहृदय होता है। कवि का काव्य तभी प्रतिष्ठा को प्राप्त करता है जब वह काव्य सहृदय के हृदयों को आह्लादित करता है। कवि के समान सहृदयों का भी महत्व है। इसलिए अभिनवगुप्त लोचन के आरम्भ में कहते हैं-

'सरस्वत्यास्तत्वं कविसहृदयाख्यं विजयते।'

काव्यरूपी वाग्देवी शरीर के दो अंश है कवि और सहृदय। वहाँ कवि प्रख्यावान् अर्थात् कारयित्री प्रतिभावान् है। सहृदय उपाख्यावान् अर्थात् भावयित्री प्रतिभावान् है। भावयित्री प्रतिभा ही कवि के श्रम और अभिप्राय को भावित करता है। अन्य प्रतिभा के द्वारा ही कवि का व्यापार सार्थक होता है। अन्यथा कवि का व्यापार तो विपरीत परिणाम वाला होता है। एवम् इस प्रकार के भावयित्री प्रतिभावान सहृदय ही कवि रचित काव्य के आस्वादक है।

अभिनवगुप्तपाद के द्वारा इस प्रकार के सहृदयों के स्वरूप को लोचन में कहा गया है- येषां काव्यानुशीलनाभ्यासवशाद् विशदीभूते मनोमुकुरे वर्णनीयविषयतन्मयीभवनयोग्यता ते एव हृदयसंवादभाजः सहृदयाः।' सदैव काव्य अनुशीलन से जिनका मन कवि काव्यों में रमता है वे ही सहृदय होते हैं। सहृदय कविनिर्मित काव्य को श्रवण करते हुए तन्मय होकर कवि के समान नहीं रसमग्न होता है। कवि काव्य रचना से काव्य रसास्वाद में स्वतन्त्रता को भजता है। परन्तु सहृदय कवि द्वारा वर्णित को सुनते हुए रसास्वादन करता है वह काव्य अधीन है। सहृदय के भावुक, रसिक, भावक, सचेता इत्यादि नाम है।

पाठगत प्रश्न-3

20. सहृदय का लक्षण क्या है?

21. सरस्वती के दो तत्व क्या हैं?

22. सहृदय किस प्रकार प्रतिभावान हैं?

23. सहृदय के नामकरण कितने हैं?

1.4) काव्य

कवि का कर्म इस अर्थ में कवि शब्द से कर्म अर्थ में **'गुणवचनब्राह्मणदिभ्यः कर्म च'** इस सूत्र से ष्यञ् प्रत्यय से काव्य शब्द निष्पन्न होता है। कवि की कारयित्री प्रतिभा से उत्पन्न कर्म काव्य होता है।

उस काव्य का क्या लक्षण है, अलंकारिकों के द्वारा काव्य के बहुत से लक्षण कहे गए है। जैसे अग्निपुराण में-

ध्यान दें:

'संक्षेपाद् वाक्यमिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली।
काव्यं स्फुरदलंकार गुणवद्दोषवर्जितम्॥

अर्थात् इष्ट अर्थ को प्रकट करने वाली पदावली काव्य है। इष्ट अर्थ 'अत्यधिक चमत्कृत लोकोत्तर आह्लाद जनक अर्थ' है। उसी प्रकार का व्यवस्थित पद समूह ही काव्य है। जिसमें अलंकार प्रकट हो जो दोषरहित और गुणयुक्त हो।

यह ही दण्डी ने कहा- **'शरीरंतावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली।'**

आनन्दवर्धनाचार्य के मत में **'सहृदयहृदयाह्लादिशब्दार्थमयत्वमेव काव्य लक्षणम्'** इति। सहृदयों के हृदयों को आह्लादित करने वाले जो शब्द और अर्थ है, वह ही काव्य है।

भामह के मत में काव्यलक्षण है-'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्'। शब्द और अर्थ साथ में लोकोत्तर चमत्कार कारक धर्म से संयुक्त होकर काव्य होता है।

वामन के मत में - 'काव्यं ग्राह्यमलंकारात्'। यह काव्य शब्द गुण और अलंकारों से युक्त शब्दार्थ है।

आलंकारिक भोज के मत में- 'निर्दोष गुणवत्काव्यमलंकारैरलंकृतम्'। दोषरहित गुणसहित अलंकारों से अलंकृत वाक्य काव्य होता है।

आचार्य मम्मट -'तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि'। दोषरहित गुणों से युक्त सर्वत्र अलंकार से युक्त और कहीं अलंकारों से रहित भी शब्द और अर्थ काव्य है।

जगन्नाथ के रसगंगाधर में -'रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्'। रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करने वाला शब्द ही काव्य है। रमणीयता अर्थात् लोकोत्तर आनन्द। लोकोत्तर आनन्द का जनक रमणीय है। लोकोत्तर आनन्द जनक के अर्थ का प्रतिपादन करने वाला शब्द काव्य होता है।

विश्वनाथ कविराज ने साहित्य दर्पण में कहा है- 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्'। रस से युक्त वाक्य काव्य होता है।

वाक्य किस प्रकार का होता है विश्वनाथ ने कहा है-

'वाक्यं स्याद्योग्यताकाङ्काक्षासक्तियुक्तः पदोच्चयः।' उसी प्रकार के पदों का समूह वाक्य होता है जिस पद समूह में योग्यता, आकांक्षा और आसत्ति रहती है।

यहाँ पद किसे कहा गया है-

'वर्णाः पदं प्रयोगार्हानन्वितैकार्थबोधकाः।'

पदार्थों के परस्पर सम्बन्ध में बाधा का अभाव योग्यता है। पदार्थों का अभिधादि वृत्तियों के द्वारा पद के प्रतिपादन का अर्थों के परस्पर सम्बन्ध में परस्पर अन्वय बोध में बाधा का अभाव योग्यता है। जैसे- कृष्णो नगरं याति। किन्तु वह्निना सिंचति इस प्रकार के परस्पर सम्बन्ध में अग्नि सींचन में समर्थ नहीं हो सकती। बाधा के होने से वाक्य में योग्यता का अभाव है।

पदों की पदों के अनन्तर अपेक्षा आकांक्षा होती है। इसलिए निराकांक्षा के गौः, अश्वः, पुरुषः, यह वाक्य नहीं है।

ध्यान दें:

आसत्ति पदार्थों में उपस्थित बाधा का न होना है। तेन देवदत्तः इस पद का बहुत देर बाद उच्चारण से गच्छतीति इससे संगति न होने के कारण वाक्य नहीं होता है।

इसी प्रकार कुछ भामह मम्मट आदि आलंकारिकों ने शब्द और अर्थ की प्रधानता से, कुछ दण्डी, जगन्नाथ और कविराज ने शब्द की प्रधानता से काव्य लक्षणों को कहा। वहाँ बुद्धि अनुसार लक्षणों को ग्रहण किया गया है। क्योंकि सारे ही लक्षण अपने वैशिष्टय को धारण करते हैं। और वह काव्य ध्वनि काव्य और गुणीभूतव्यंग्य काव्य के भेद से दो प्रकार का होता है। फिर दृश्य श्रव्य के भेद से उसके दो प्रकार है। इसी प्रकार उसके भेदों के विषय में अधिक ज्ञान के लिए साहित्य दर्पण आदि ग्रन्थ देखिए।

पाठगत प्रश्न-4

24. काव्य शब्द में क्या शब्द और क्या प्रत्यय है?
25. काव्य शब्द निष्पत्ति का सूत्र क्या है?
26. अग्निपुराण में काव्य का लक्षण क्या कहा गया है?
27. दण्डि द्वारा कहा गया काव्य लक्षण क्या है?
28. भामह द्वारा कहा गया काव्य लक्षण क्या है?
29. आनन्द वर्धन द्वारा कहा गया काव्य लक्षण क्या है?
30. जगन्नाथ द्वारा कहा गया काव्य लक्षण क्या है?
31. मम्मट का काव्य लक्षण क्या है?
32. विश्वनाथ का काव्य लक्षण क्या है?
33. वाक्य का लक्षण साहित्यदर्पणकार के मत में क्या है?
34. पद लक्षण साहित्यदर्पणकार के मत मे क्या है?
35. आकांक्षा क्या है?
36. योग्यता क्या है?
37. आसत्ति क्या है?

1.5) काव्य प्रयोजन

'प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तते' यह उक्ति सुप्रसिद्ध ही है। इस प्रकार के काव्य के निर्माण में क्या प्रयोजन यह प्रश्न सभी के मन में आता है। वहाँ काव्यतत्वज्ञ आलंकारिको ने बहुत से काव्य के प्रयोजनों को कहा। वहाँ काव्यप्रकाश के मम्मटाचार्य का यह मत है-

'काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे॥'

यश के लिए, अर्थ के लिए, व्यवहार को जानने के लिए, अमंगल के नाश के लिए, तुरन्त ही

ध्यान दें:

परम आनन्द की प्राप्ति के लिए और कान्ता के समान उपदेश देने के लिए काव्य होता है। काव्य कीर्ति को उत्पन्न करता है, अर्थ को देता है और व्यवहार ज्ञान को देता है। काव्य के द्वारा भगवान नारायणादि के पूजन से अमंगल का नाश होता है। काव्य को सुनने से ब्रह्मानन्द सहोदर रस को उत्पन्न करता है। काव्य कान्ता के समान उपदेश देने वाला होता है। वेद प्रभुसम्मित होते हैं। वे ईश्वर के समान सत्य बोलते है और धर्म का उपदेश करते हैं। परन्तु काव्य प्रिया के समान होता है। प्रिया अर्थात् पत्नी जैसे मधुर वाणी के द्वारा पति में कृत्य अकृत्य के विवेक को उत्पन्न करता है। वैसे ही काव्य सरस शैली के द्वारा 'राम के समान आचरण करना चाहिए न कि रावण के समान' करने योग्य और न करने योग्य विवेक को उत्पन्न करता है।

इस प्रकार ही विश्वनाथ कहते है-

'चतुर्वर्गफलप्राप्तिः सुखादल्पधियामपि।
काव्यादेव यतस्तेन तत्स्वरूपं निरूप्यते।''

चतुर्वर्ग का नाम धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष है। भगवान नारायण को मानने वाले' एकः शब्दः सम्यग्ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके कामधुग् भवति' इत्यादि वचनों से और काव्य से धर्म प्राप्ति करते है। अर्थ प्राप्ति तो जैसे श्री हर्ष के नाम से रत्नावली नाटिका के निर्माण से धावक ने बहुत से धन को प्राप्त किया। और काम प्राप्ति धन से ही होती है। मोक्ष प्राप्ति काव्य से उत्पन्न धर्मादिफल से होती है। और मोक्षोपयोगी वाक्यों में व्युत्पत्ति कारक काव्य होता है। इस प्रकार चतुर्वर्गफल को प्राप्त कराने वाला काव्य है।

इसी प्रकार भामह ने कहा है-

'धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च।
करोति कीर्तिं प्रीतिं च साधुकाव्यनिषेवणम्॥'

चतुर्वर्गफल की प्राप्ति वेदादि शास्त्रों के द्वारा नीरसता से, काव्य से तो सरसता से होती है यही काव्य की विशेषता है। क्योंकि रोग का नाश कड़वी औषधियों से हो इसकी अपेक्षा मीठी औषधि से ही सभी चाहते हैं।

काव्य धर्मादिसाधन उपाय के लिए उत्कृष्ट हेतु है। वैसा ही अग्नि पुराण में व्यास ने कहा है-

'नरत्वं दुर्लभं लोके विद्या तत्र सुदुर्लभा।
कवित्वं दुर्लभं तत्र शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा॥

इस प्रकार की समीक्षा से आता है कि पुरुषार्थ बोध और रसास्वाद दो काव्य के मुख्य प्रयोजन है। बोध के और रसास्वाद के मध्य में रसास्वाद ही काव्य का प्रमुख प्रयोजन है। महिमभट्ट ने कहा है-

'काव्ये रसयिता सर्वो न बोद्धा न नियोगभाक्'।

पाठगत प्रश्न-5

38. मम्मटाचार्य के मत में काव्य प्रयोजन क्या है?

39. विश्वनाथ के मत में काव्य प्रयोजन क्या है?

ध्यान दें:

40. काव्य से अमंगल का नाश कैसे होता है?

41. भामह आचार्य के मत में काव्य क्या करता है?

42. अग्नि पुराण में काव्य के विषय में कहा गया है?

43. काव्य के दो प्रयोजन क्या है?

44. काव्य का सभी की अपेक्षा क्या मुख्य प्रयोजन है और उसका क्या प्रमाण है।

9.6) वृत्ति का स्वरूप

शब्द प्रतिपादक होते हैं और अर्थ प्रतिपाद्य होते हैं। शब्द तीन प्रकार के है- वाचक, लक्षक और व्यंजक। शब्द के समान अर्थ भी तीन प्रकार के हैं- वाच्य, लक्ष्य और व्यंग्य। शब्द जिस व्यापार से अर्थ का बोध कराता है वह व्यापार वृत्ति है। और शब्दनिष्ठ अर्थ बोधक व्यापार विशेष वृत्ति होती है। वृत्ति शक्ति का व्यवहार भी विश्वनाथ के द्वारा किया गया है। वह शक्ति तीन प्रकार की है- अभिधा, लक्षणा और व्यंजना। विश्वनाथ ने कारिका में कहा है-

वाच्योऽर्थोऽभिधया बोध्यो लक्ष्यो लक्षणया मतः।
व्यंग्यो व्यंजनया ताः स्युस्तिस्रः शब्दस्य शक्तयः॥

इस प्रकार वाच्यार्थ की प्रतिपादिका अभिधा, लक्ष्यार्थ की प्रतिपादिका लक्षणा और व्यंग्यार्थ की प्रतिपादिका व्यंजना होती है।

9.6.1) अभिधा स्वरूप

शब्दार्थ की प्रतिपादिक शक्तियों में पहली होती है-वाच्यार्थ का प्रतिपादन करने वाली अभिधा। अभिधा का लक्षण विश्वनाथ कहते हैं-

'तत्र संकेतितार्थस्य बोधनादग्रिमाभिधा।'

वहाँ तीनों शक्तियों के मध्य में संकेतित अर्थ का संकेत इच्छा विशेष उस विषय के अर्थ के बोध से, कथन से अभिधा प्रथम होती है। संकेतित अर्थात् संकेत विषय। संकेत क्या है तो गदाधरभट्टाचार्य कहते हैं।-

जो पदों के अर्थों का बोध कराता हो। इस शब्द से यह अर्थ समझना चाहिए। संकेत अर्थ का बोध कराने वाला व्यापार वृत्ति है।

इसी प्रकार संकेत स्वाभाविक व्यापार है, ऐसा मीमांसको का मत है। संकेत से ही पद और पदार्थ के बीच में नियत वाच्य वाचक सम्बन्ध सिद्ध करता है। वाच्य वाचक सम्बन्ध सत्व आदि से ही अग्नि शब्द समय रूप के लिए नहीं समझा जाता। इसी प्रकार सामान्य संकेतित अर्थ नाम वाच्य हो सकता है अथवा मुख्य अर्थ।

उस संकेत ग्रह के क्या उपाय है यह प्रश्न उत्पन्न होता है। वहाँ संकेत ग्रह की प्रसिद्ध कारिका है-

शक्तिग्रहं व्याकरणोपमानकोशाप्तवाक्याद् व्यवहारतश्च।
वाक्यस्य शेषाद्विवृतेर्वदन्ति सान्निध्यतः सिद्धपदस्य वृद्धाः॥

ध्यान दें:

वहाँ व्याकरणादि के द्वारा संकेतग्रह के उदाहरणों को क्रम से प्रस्तुत किया गया है-

क) व्याकरण से संकेत ग्रह का उदाहरण- पाचकः। यहाँ पच् धातु कर्तरि ण्वुल प्रत्यय से पाचक शब्द का पाक कर्तरि संकेत बोध होता है।

ख) उपमान से संकेतग्रह का उदाहरण - गोसदृशो गवयः। गौ के समान गवय उपमान से गवय के दर्शन से यह गौ के समान है इसीलिए गवय शब्द से संकेत ग्रहण होता है।

ग) 'विष्णुर्नारायणः कृष्णः' अमरकोश से नारायण आदि शब्दों का विष्णु संकेत ग्रहण होता है।

घ) 'अयम् अश्वशब्दवाच्यः' इस आप्त वाक्य से बालक 'यह पशु अश्व शब्द का बोध कराता है' संकेत को धारण करता है।

ङ) व्यवहार से संकेत ग्रह जैसे- उत्तम वृद्ध के द्वारा मध्यम वृद्ध को उद्देश्य करके गाय लाने को कहा गया। तब मध्यम् वृद्ध गाय को लाता है। उस गाय को लाने में प्रवृत्त को देखकर बालक वाक्य का सास्ना आदि पिण्ड को लाने के अर्थ को जानता है। फिर गाय को बाँधो कहकर के मध्यम वृद्ध गाय को बाँधता हैं। इसी प्रकार बालक आवोपोद्वाप (अन्वय,व्यतिरेक) गो शब्द का सास्नादि अर्थ इस संकेत को धारण करता है।

च) वाक्य शेष से संकेत ग्रहण जैसे- 'यवमयश्चरुर्भवति' ऐसा सुनकर यव शब्द का दीर्घशूक में प्रिय अंग अथवा प्रयोग ऐसा संशय है। वहाँ-

''वसन्ते सर्वशस्यानां जायते पत्रशातनम्।
मेदमानाश्च तिष्ठन्ति यवाः कणिशशालिनः॥''

इस प्रकार विध्यर्थ आकांक्षा के प्रर्वत होने से वाक्यशेष के द्वारा दीर्घशूक में यव शब्द का संकेत ग्रहण होता है।

छ) विवृतिर्नाम विवरणम्। विवरण से शक्ति का ग्रहण जैसे- 'हरिः वासुदेवः'। यहाँ अश्वादि अनेक अर्थ से हरि शब्द का अर्थ क्या इस संशय में वासुदेव ऐसे विवरण से हरि शब्द का वासुदेव में संकेत ग्रहण होता है।

ज) सिद्ध पद के सान्निध्य से संकेत ग्रहण जैसे- 'इह प्रभिन्नकमलोदरे मधूनि मधुकरः पिबति'। मधुकर शब्द का भ्रमर अथवा मधुमक्खी अर्थ इस संशय में कमन पद के सान्निध्य से मधुकर शब्द का भ्रमर रूप में संकेत ग्रहण होता है।

और वह संकेत जाति, गुण, द्रव्य और क्रिया में ग्रहण किया जाता है। दर्पणकार कहते है-

''संकेतो गृह्यते जातौ गुणद्रव्यक्रियासु च।''

9.6.2) लक्षणा का स्वरूप

लक्षणा लक्ष्यार्थ की प्रतिपादिका होती है। उसका स्वरूप क्या है- विश्वनाथ कहते हैं।

'मुख्यार्थबाधे तद्युक्तो ययान्योऽर्थः प्रतीयते।
रूढेः प्रयोजनाद्वाऽसौ लक्षणा शक्तिरर्पिता॥'

मुख्यार्थ बाध में अर्थात् अभिधा प्रतिपादित अर्थ के बाध में रूढ़ि अथवा प्रयोजन से जिस वृत्ति के द्वारा उस कहे गए मुख्य अर्थ से सम्बन्धित अन्य अर्थ की प्रतीति होती है। वह शब्द में आरोपित वृत्ति

ध्यान दें:

लक्षणा है। कहा गया है प्रयोजन से अथवा रूढ़ि (प्रसिद्धि) से मुख्यार्थ का बाध होता है।

यह लक्षणा रूढ़िमूला और प्रयोजनमूला के भेद से दो प्रकार की है। वहाँ रूढ़ि का अर्थ प्रसिद्धि है। रूढ़िमूला जैसे- कलिंग साहसिकः। यहाँ साहस का धर्म चेतन में ही सम्भव होता है। अचेतन में कलिंग नामक देश-विदेश में सम्भव नहीं होता है। कलिंग शब्द का मुख्य अर्थ बाधित है। तब प्रसिद्धि से कलिंग शब्द कलिंग देशवासी इस अर्थ में लक्षणा का प्रतिपादन करते हैं। उससे कलिंग देश के निवासी साहसी हैं यह अर्थ सम्भव होता है।

प्रयोजनमूला लक्षणा का उदाहरण जैसे 'गंङ्गायाघोषः'। यहाँ गंङ्गा शब्द का मुख्य अर्थ है जल प्रवाह विशेष। वहाँ घोष का होना असम्भव ही है। गंगा शब्द का जल प्रवाह रूप मुख्यार्थ का बाध है। वह बाधित गंगा शब्द वक्ता के तात्पर्य सिद्धि में जल प्रवाह से युक्त तीर रूपी अर्थ के लिए लक्षणा से बोधन होता है। गंगा में शीतलता और पावनता आदि धर्म घोष में भी हैं ऐसा प्रयोजन है। और दो प्रकार की लक्षणा पुनः उपादान लक्षणा और लक्षण लक्षणा के भेद से दो प्रकार की है। वहाँ उपादान लक्षणा का लक्षण है-

''मुख्यार्थस्येतराक्षेपो वाक्यार्थेऽन्वयसिद्धये।
स्यादात्मनोऽप्युपादानादेषोपादानलक्षणा॥''

जिस लक्षणा वृत्ति के द्वारा वाक्यार्थ में अन्वय सिद्धि के लिए जहाँ मुख्य अर्थ अन्य अर्थ का आक्षेप कराता है, मुख्यार्थ का भी ग्रहण होता है वह उपादान लक्षणा है। उसका उदाहरण है जैसे-श्वेतो धावति। श्वेत शब्द के गुण वाचकत्व से उसके दौड़ने की क्रिया के अनन्वय से मुख्य अर्थ का बाध होता है। तब उपादान लक्षणा श्वेत शब्द का श्वेत वर्ण विशेष अश्व के अर्थ का ग्रहण करती है। फिर श्वेत अश्व की ओर दौड़ने की क्रिया में अन्वय सिद्ध होता है।

लक्षण लक्षणा का लक्षण-

''अर्पणं स्वस्य वाक्यार्थे परस्यान्वयसिद्धये।
उपलक्षणहेतुत्वादेषा लक्षण लक्षणा॥''

जिस लक्षणा वृत्ति के द्वारा वाक्यार्थ में दूसरे मुख्य अर्थ से भिन्न की अन्वय सिद्धि में अपने मुख्य अर्थ को त्याग देता है वह लक्षण लक्षणा है। उसका उदाहरण गङ्गायां घोषः है। वहाँ गंगा पद जल प्रवाह रूपी अर्थ के लिए अपने स्वरूप के समर्पण से वहाँ उपलक्षण लक्षणा है।

इस प्रकार से ही लक्षणा के सारोपा साध्यवसाना इत्यादि अनेक आवान्तर प्रकार सम्भव हैं।

9.6.3) व्यंजना का स्वरूप

व्यंजना व्यंग्यार्थ की प्रतिपादिका होती है। उसका क्या स्वरूप है? विश्वनाथ कहते हैं-

''विरतास्वभिधाद्यासु ययाऽर्थो बोध्यते परः।
सा वृत्तिर्व्यंजना नाम शब्दस्यार्थादिकस्य च॥''
''शब्दबुद्धिकर्मणां विरम्य व्यापारभावः''

इस मत से अभिधा लक्षणा आदि वृत्तियों में अपने अपने अर्थ को प्रतिपादित करके जिस शक्ति के द्वारा दूसरे वाच्यार्थ लक्ष्यार्थ से भिन्न अर्थ का बोध होता है वह वृत्ति शब्द के अर्थ के प्रकृति और प्रत्ययादि में व्यंजना कहलाती है। इस प्रकार व्यंजना अभिधा, लक्षणा आदि सकल वृत्तियों से अतिरिक्त

ध्यान दें:

आलंकारिक प्रपंच में सुप्रसिद्ध कोई नवीन वृत्ति है।

जैसे उदाहरण - गतोऽस्तमर्कः। यहाँ खेलते हुए बालक के प्रति पिता कहता है घर जाओ यह अर्थ व्यंजना से ज्ञात होता है। और वह व्यंग्यार्थ ध्वनि प्रतीयमान अर्थ से भी व्यवहृत होती है।

इस प्रकार के अनुभव सिद्ध अर्थ के प्रतिपादन के लिए ही व्यंजना वृत्ति है। उस वृत्ति का आविर्भाव आनन्दवर्धनाचार्य के ध्वन्यालोक नामक ग्रन्थ में प्रथम दिखाई देता है। और वह वृत्ति- अभिधामूला और लक्षणामूला के भेद से दो प्रकार की है। वहाँ अभिधामूला का लक्षण है-

'अनेकार्थस्य शब्दस्य संयोगाद्यैर्नियन्त्रिते।
एकत्रार्थेऽन्यधीहेतुर्व्यंजना साभिधाश्रया॥'

अभिधा के संयोग से शब्द के संयोगादि से एक अर्थ के नियन्त्रण में अन्य अर्थ के ज्ञान की हेतु व्यंजना अभिधामूला होती है।

संयोगादि पद से यहाँ वि-प्रयोगादि पदों का ग्रहण करते हैं। कौन शक्ति नियामक संयोगादि है इस कारिका में कहा है-

संयोगो विप्रयोगश्च साहचर्यं विरोधिता।
अर्थः प्रकरणं लिंङ्ग शब्दस्यान्यस्य सन्निधिः॥
सामर्थ्यमौचिती देश कालो व्यक्तिः स्वरादयः।
शब्दार्थस्यानवच्छेदे विशेषस्मृतिहेतवः॥

शब्द के अर्थ का अनवच्छेद होने पर संयोगादि उसके नियामक होते हैं। संयोगादि के क्रम से उदाहरणों को प्रस्तुत किया गया है।

क.) संयोग का उदाहरण- **सशंखचक्रो हरिः**। हरि शब्द विष्णु यम आदि अनेक अर्थों का वाचक है। परन्तु यहाँ शंख चक्र के सम्बन्ध से हरि शब्द विष्णु अर्थ में वर्णित है।

ख.) विप्रयोगे **अशंखचक्रो हरिः**। हरि शब्द के अनेक अर्थ के वाचकत्व में भी शंख चक्र सहित का ही एव वियोग से हरि शब्द विष्णु अर्थ को कहता है।

ग.) साहचर्य का उदाहरण **भीमार्जुनौ। ''अर्जुनः ककुभे पार्थे कार्तवीर्यमयूरयोः''** इत्यादि कोष से अर्जुन शब्द का पार्थ अथवा कार्तवीर्य अर्जुन इत्यादि अर्थ के सन्देह में भीम के साहचर्य से अर्जुन पार्थ है।

घ.) विरोधिता **कर्ण अर्जुन** का उदाहरण। यहाँ भी अर्जुन शब्द के अनेक अर्थ का कर्ण से विरोधी पद साहचर्य से पार्थ अर्थ का बोध होता है।

ङ.) प्रयोजन को अर्थ कहते हैं। **अर्थे भवच्छिदे स्थाणुं वन्दे इति उदाहरणम्।** स्थाणु शब्द का शिव, पत्थर, खण्ड आदि अनेक वाचक के संसारोच्छेद रूप प्रयोजन बल से शंकर अर्थ में प्रयुक्त है।

च.) प्रकरण में उदाहरण होता है **सर्वं जानाति देवः।** यहाँ देव पद से सुर, नृप के सन्देह में राज प्रकरण से देव शब्द राजापरक है।

छ.) धर्म का नाम लिंग है। यहाँ उदाहरण है **कुपितो मकरध्वजः।** मकरध्वज शब्द का कामदेव

ध्यान दें:

समुद्र वाचक के कोप रूप प्राणि धर्म से लिंग से काम देव के अर्थ में प्रयुक्त है।

ज.) अन्यशब्दसन्निधि का **देवः पुरारिः** उदाहरण है। पुरारि शब्द खल और महादेव अर्थ में है। यहाँ देव पद के सान्निध्य से पुरारि शब्द का महादेव अर्थ से बोध होता है।

झ.) सामर्थ्य का उदाहरण है **मधुना मत्तः पिकः।** मधु शब्द मद्य अर्थ में और वसन्त अर्थ में प्रयुक्त है। वहाँ कोयल के मद की प्रसिद्धि से सामर्थ्य से मधुशब्द वसन्त वाचक है।

ञ.) औचित्य का उदाहरण पातु **वो दयितामुखम्।** मुख शब्द के अनेक अर्थों के यहाँ औचित्य से सामुख्य अर्थ में प्रयुक्त है।

ट.) स्थान को देश कहते हैं। यहाँ उदाहरण **विभाति गगने चन्द्रः** इति। चन्द्र शब्द के इन्द्र, कपूर और शशि अर्थ है। यहाँ गगन रूप देश से चन्द्र शब्द शशि का ही बोध होता है।

ठ.) काल का उदाहरण- **निशि चित्रभानुः।** चित्रभानु सूर्य अथवा अग्नि है इस सन्देह में निशा काल से चित्रभानु शब्द का अग्नि अर्थ में बोध होता है।

ड.) लिंग का अर्थ व्यक्ति है। उसका उदाहरण **भाति रथांगम् है।** रथांग शब्द चक्रपरक और चक्रवाक पक्षी परक है। यहाँ नपुंसक लिंग से रथांग शब्द का चक्र का ग्रहण होता है। इसी प्रकार स्वरादि शब्दार्थ के नियामक होते हैं।

अभिधामूला का उदाहरण है-

दुर्गालङ्घितविग्रहो मनसिजं सम्मीलयश्चेतसा।
प्रोद्यद्राजकलो गृहीतगरिमा विष्वग्वृतो भोगिभिः।
नक्षत्रेशकृतेक्षणो गिरिगुरौ गाढां रूचिं धारयन्
गामाक्रम्य विभूतिभूषिततनू राजत्युमावल्लभः॥

यहाँ उमा के पति शिव अथवा उमा नाम की राज महिषी के स्वामी भानुदेव राजा है इस सन्देह में प्रकरण से अभिधा के द्वारा उमावल्लभ शब्द का उमा नाम की राज महिषी के पति स्वामी भानुदेव राजा का अर्थ आता है। वहाँ से अभिधामूला व्यंजना से गौरी के पति शिव इस अर्थ को स्वीकार करते है। एवम् उमा नामक राज महिषी के पति भानुदेव गौरी के पति शिव के समान प्रतीत होते हैं।

लक्षणामूला व्यंजना का उदाहरण-

'लक्षणोपास्यते यस्य कृते तत्तु प्रयोजनम्।
यया प्रत्याच्यते सा स्याद् व्यंजना लक्षणाश्रया॥'

जिस प्रयोजन के लिए लक्षणा का आश्रय लिया जाता है उस प्रयोजन का जो बोध कराती है वह लक्षणामूला व्यंजना होती है।

जैसे गंगाया घोषः यहाँ गंगा शब्द का गंगा के तीर में प्रयोजन लक्षणा है। एवं लक्षणा विरत है। लक्षणा का शीतलता और पवित्रता का आधिक्य प्रयोजन होता है। वह प्रयोजन व्यंजना का बोध कराता है। वह व्यंजना लक्षणामूला व्यंजना होती है।

यहाँ से भी शब्दी आर्थी इत्यादि व्यंजना के अनेक प्रकार होते हैं।

ध्यान दें:

पाठगत प्रश्न-6

45. शब्द कितने प्रकार के हैं और वे कौन-से हैं?
46. अर्थ कितने प्रकार के हैं और वे कौन-से हैं?
47. वृत्ति क्या है?
48. वृत्ति के कितने भेद हैं और वे कौन-से हैं?
49. अभिधा का लक्षण क्या है?
50. गदाधर के मत में संकेत क्या है?
51. संकेत कहाँ-कहाँ ग्रहण करते हैं?
52. लक्षणा का स्वरूप क्या है?
53. रूढ़िमूला लक्षणा का उदाहरण क्या है?
54. प्रयोजन मूला लक्षणा का उदाहरण क्या है?
55. उपादान लक्षणा क्या है?
56. लक्षण लक्षणा क्या है?
57. उपादान लक्षणा का उदाहरण क्या है?
58. लक्षण लक्षणा का उदाहरण क्या है?
59. व्यंजना का स्वरूप क्या है?
60. व्यंजना सामान्यत: कितने प्रकार की है, कौन-कौन सी है?
61. शक्ति नियामक प्रतिपादित कारिका को वर्णित कीजिए।

9.7) रसस्वरूप

काव्य का परम प्रयोजन रसास्वाद है। और वह रस क्या है यह प्रश्न उत्पन्न होता है। इसके उत्तर में कहा गया है- 'रस्यते आस्वाद्यते इति रस:'। अर्थात् काव्य नाट्यादि कलाओं में परम आस्वादित रस है। यह रस ही काव्य की आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित है। इसके उन्मेश के लिए ही कवि चेष्टा करते हैं। और सहृदय इस प्रकार के काव्य अध्ययन से ही आस्वादन करते हैं।' न हि रसादृते कश्चिदर्थ: प्रवर्तते' भरत मुनि ने रस को काव्य की आत्मा के रूप में प्रतिष्ठापित किया है।

उस रस का स्वरूप पूरक सूत्र इस प्रकार है- **'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद् रसनिष्पत्ति:'।** विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी भाव के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है।

विभाव क्या है इस प्रश्न के उत्तर में विभाव का स्वरूप निर्दिष्ट किया जा रहा है। लोकोत्तर से सहृदयों के हृदय में आस्वाद योग्य रति आदि स्थायी भाव को करते हैं जिनसे वह राम-कृष्ण आदि काव्य में निवेशित होकर विभाव होते हैं। साहित्य दर्पण में विभाव का लक्षण है-

ध्यान दें:

रत्याद्युद्बोधकाः लोके विभावाः काव्यनाटययोः।

अनुभाव क्या है- विभावादिगत चेष्टा अनुभाव है। उसका लक्षण साहित्य दर्पण में कहा है-

उद्बुद्धं कारणैः स्वैः स्वैर्बहिर्भावं प्रकाशयन्।
लोके यः कार्यरूपः सोऽनुभावः काव्यनाट्ययोः॥

व्यभिचारी भाव क्या है। निर्वेदादि प्रभृति व्यभिचारी भाव है। रति आदि स्थायी भाव स्थिर रूप से है निर्वेदादि रति आदि भाव से उद्भूत होते हैं और उन्हीं में तिरोहित होते हैं वे व्यभिचारी भाव होते हैं। व्यभिचारी भाव हैं- निर्वेद, आवेग, दैन्य, श्रम, मद, जड़ता, औग्रय, मोह, विबोध, स्वप्न, अपस्मार, गर्व, मरण, अलसता, अमर्ष, निद्रा, अवहित्था, औतसुक्य, उन्माद, शंका, स्मृति, मति, व्याधि, त्रास, लज्जा, हर्ष, असूया, विषाद, धृति, चपलता, ग्लानि, चिन्ता और वितर्क।

विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी भावों के संयुक्त होने पर स्थायी भाव रसत्व को प्राप्त करता है यह सूत्र का आशय है। रति शोकादि भाव रस प्राप्ति में पहले से ही स्थित रहते हैं। इसलिए संसार में रतिशोकादि भाव स्थायी भाव कहलाते हैं। स्थायी भाव नौ है वे इस प्रकार हैं-

'रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा।
जुगुप्सा विस्मयश्चेत्थमष्टौ प्रोक्ताः शमोऽपि च'॥

रस स्वरूप के व्याख्यान अवसर पर चारों वाद सम्यक् रूप से प्राप्त होते हैं। वे इस प्रकार है- **'रसः उत्पद्यते' भट्टलोल्लट का उत्पत्ति वाद, 'रसः अनुमीयते' श्री शंकुक का अनुमितिवाद, 'रसः भुज्यते' भट्टनायक का भुक्तिवाद, 'रसः अभिव्यक्तिवाद।** इन वादों में अभिनवगुप्त का अभिव्यक्तिवाद ही विद्वानों के द्वारा सिद्धान्त रूप से स्वीकृत है।

एवं रससूत्र में अभिव्यक्तिवाद के अनुसार निष्पत्ति जिसका अभिव्यक्ति अर्थ है। और इस प्रकार सूत्र अर्थ होता है- विभाव के अनुभाव के और व्यभिचारी भाव के संयोग से स्थायीभाव रस के स्वरूप को प्राप्त करता है। इसलिए अभिव्यक्ति वाद के समर्थक विश्वनाथ कविराज ने कहा है-

''विभावेनानुभावेन व्यक्तः संचारिणा तथा।
रसतामेति रत्यादिः स्थायिभावः सचेतसाम्॥''

वस्तुतः रस का आस्वादन में प्रयोग नहीं होता। क्योंकि आस्वाद ही रस है। इसलिए अभिनवगुप्त कहते हैं-'रसाः प्रतीयन्ते इति तु ओदनं पचति इतिवद् व्यवहारः' इति। रस के स्वरूप का निरूपण, आस्वादन के प्रकार को साहित्य दर्पणकार के द्वारा प्रस्तुत किया गया है-

''सत्वोद्रेकादखण्डस्वप्रकाशनन्दचिन्मयः।
वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वादसहोदरः।
लोकोत्तरचमत्कारप्राणः कैश्चित्प्रमातृभिः
स्वाकारवदभिन्नत्वेनायमास्वाद्यते रसः॥''

बाहरी विषयों से चित्तवृत्तियों को हटाने वाला कोई अन्तःकरण का धर्म सत्व कहलाता है। उसके उद्रेक से एक अखण्ड आनन्दस्वरूप, अन्य जाने हुए पदार्थों के स्पर्श से रहित, आनन्दमय ब्रह्म के साक्षात्कार के समान, लोकोत्तर चमत्कार है जिसका वह रस अपने आकार के सामान अभिन्न रूप से किसी सहृदय के द्वारा आस्वादन करता है।

जिन सब भावनाओं का संसार में अनुभव किया जाता है उन सबका ही काव्य में लोकोत्तर अनुभव होता है। इसका कारण साधरणीकरण होता है। विभाव अनुभाव आदि में सहृदयों का मन जैसे-जैसे प्रवर्तत

ध्यान दें:

होता है वैसे-वैसे तन्मयता बढ़ती है। तब रज तम से अभिभूत होकर बाहरी चित्तवृत्तियों से विमुख होकर सत्व का प्रकाशन होता है। तब देश कालादि सम्पूर्ण लौकिक उपाधि सम्बन्धों का नाश कर सहृदय उत्पन्न होते हैं। तब विभावादि साधारण निर्विशेष होते हैं। यह व्यापार ही साधरणीकरण है। तब साधरणीकरण के लिए विभावादि के द्वारा व्यक्त स्थायीभाव रस के स्वरूप् को प्राप्त करता है। पण्डितराज जगन्नाथ ने 'रत्याद्यवच्छिन्ना भग्नावरणा चिदेव रस' भिन्न मत को पुष्ट किया है। उनके मत की यहाँ आलोचना नहीं की गई है।

फिर से कितने रस होते हैं प्रश्न पर स्थायी भाव के नौ होने से नौ रस होते हैं उत्तर प्राप्त होता है। और वे-

'शृंगारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः।

बीभत्साद्भुतसंज्ञो चेत्यष्टो शान्तोऽपि नवमो रसः॥'

उन रसों के स्थायी भावों, वर्णों और देवों की तालिका नीचे दी गई है-

क्रम	रस	स्थायी भाव	देवता	वर्ण
1.	शृंगार	रति	विष्णु	श्याम
2.	हास्य	हास	प्रथमगण	श्वेत
3.	करुण	शोक	यम	कपोत
4.	रौद्र	क्रोध	रुद्र	रक्त
5.	वीर	उत्साह	महेन्द्र	हेमवर्ण/गौर

क्रम	रस	स्थायी भाव	देवता	वर्ण
6.	भयानक	भय	काल	कृष्ण
7.	वीभत्स	जुगुप्सा	महाकाल	नील
8.	अद्भुत	विस्मय	गन्धर्व/ब्रह्म	पीत
9.	शान्त	शम	नारायण	अतिधवलवर्ण

पाठगत प्रश्न-7

62. रससूत्र क्या है?

63. रस के चारों वाद किस-किस के क्या-क्या हैं?

64. विभाव का लक्षण क्या है?

65. अनुभाव का लक्षण क्या है?

66. व्यभिचारी भाव का लक्षण क्या है?

67. रस के विषय में किसका वाद सभी की अपेक्षा श्रेष्ठ हैं?

ध्यान दें:

68. अभिनवगुप्त के मत में रस सूत्र का अर्थ क्या है?

69. साहित्य दर्पण में कही गई रस अभिव्यक्ति की कारिका क्या है?

70. रसास्वाद कारिका को लिखिए?

71. कौन-से व्यापार से विभावादि निर्विशेष होते हैं?

72. स्थायी भाव का लक्षण क्या है?

73. स्थायी भाव कितने हैं?

74. जगन्नाथ का रस लक्षण क्या है?

75. रस कितने हैं?

76. शृंगारहास्यकरूण रसों के कौन-कौन देवता है?

77. शृंगारहास्यकरूण रसों के क्या-क्या वर्ण है?

78. रौद्रवीरभयानक रसों के कौन-कौन देवता है?

79. रौद्रवीरभयानक रसों के क्या-क्या वर्ण है?

80. बीभत्सअद्भुतशान्त के कौन-कौन देवता है?

81. बीभत्सअद्भुतशान्त के क्या-क्या वर्ण है?

पाठ सार

काव्य के समीचीन परिशीलन के लिए काव्य उपकारकों के लिए अलंकार शास्त्र को निर्मित किया गया। अलंकारशास्त्र काव्य का दर्पण भूत होता है। अलंकारशास्त्र में कहे गए मार्ग से काव्य के परिशीलन से ही काव्य का यथार्थ ज्ञान होता है। काव्य अनुशीलन के लिए संस्कृतसाहित्यपराम्परा में रचित अलंकारशास्त्रों में आनन्दवर्धन कृत ध्वन्यालोक, जगन्नाथ कृत रसगंगाधर, मम्मटाचार्य कृत काव्यप्रकाश, दण्डी रचित काव्यादर्श, विश्वनाथ कविराजकृत साहित्यदर्पण, राजशेखर कृत काव्यमीमांसा, अप्पयदीक्षित कृत कुवलयानन्द इत्यादि ग्रन्थ अत्यन्त प्रसिद्ध है।

काव्य रसिकों के सहृदयों के परम आदरणीय कवि काव्य संसार का प्रजापति होता है। कवृ वर्णने इस धातु से कवि शब्द निष्पन्न होता है। जो कवते हैं वह कवि है। कवि अपनी प्रतिभा से सरस वाणी के द्वारा वर्णन करता है। प्रतिभा दो प्रकार की है- कारयित्री और भावयित्री। वहाँ कारयित्री प्रतिभा के द्वारा ही कवि काव्य को निर्मित करता है। कवि वास्तविक अर्थ को ही लोकोत्तर चमत्कार के सन्निवेश से वर्णित करता है। एवं कवि साधारणतः कारयित्री प्रतिभावानों को व्युत्पत्तिवानों को वर्णित करता है। काव्यमीमांसादि अनुसार कवि तीन प्रकार के होते हैं शास्त्र कवि, काव्यकवि और उभयकवि।

सूर्य जैसे प्रकाशन शक्ति के बिना कुछ भी प्रकाशित करने में समर्थ नहीं है इसी प्रकार प्रतिभा के बिना कवि काव्य को रचने में समर्थ नहीं है। उसके स्वरूप को भट्टतौत 'प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मता' कहते है। इस प्रकार से बहुत से अलंकारिकों के द्वारा प्रतिभा के बहुत से लक्षण कहे गए

ध्यान दें:

हैं। राजशेखर के मत में वह प्रतिभा कारयित्री और भावयित्री दो प्रकार की है। वहाँ कवि की काव्य रचनाओं की उपकारिका कारयित्री प्रतिभा है। भावयित्री प्रतिभा तो काव्य के अनुशीलन में सहृदयों के भावों की उपकारिका है। भामह अनुसार प्रतिभा ही काव्य का कारण है। राजशेखर अनुसार व्युत्पत्ति और प्रतिभा काव्य का कारण है। व्युत्पत्ति उचित अनुचित का विवेक है। मम्मटाचार्य ने प्रतिभा, व्युत्पत्ति अभ्यास ये तीन काव्य के कारण कहे है। अभ्यास निरन्तर काव्य के निर्माण में अध्ययन अथवा प्रवृत्ति है। रुद्रट और दण्डी का भी यही मत है। ध्वन्यालोक के मत के पर्यायलोचन से सिद्धान्त रूप से यह कहा जा सकता है कि प्रतिभा ही काव्य का कारण है। व्युत्पत्ति और अभ्यास प्रतिभा के सहायक है।

सहृदय भावयित्री प्रतिभा से युक्त होते हैं। उसका लक्षण अभिनव गुप्त ने कहा है-'येषां काव्यानुशीलनाभ्यासवशाद् विशदीभूते मनोमुकुरे वर्णनीयतन्मयीभवनयोग्यता ते एव कविहृदयसंवादभाजः संहृदयाः' इति।

फिर कवि के कर्म को काव्य कहा गया है। उस काव्य के अलंकारिकों के द्वारा बहुत से लक्षण दिए गए हैं। उनमें वामन भामह मम्मटादि ने शब्द अर्थ की प्रधानता से, कुछ दण्डी, जगन्नाथ और कविराज ने शब्द की प्रधानता से काव्य लक्षण को कहा। इस पाठ में अग्नि पुराण में कहा गया, दण्डी द्वारा कहा गया, आनन्द वर्धन का, भामह का, वामन का, भोज का, मम्मट का, जगन्नाथ का और विश्वनाथ कविराज के काव्य लक्षणों को संगृहीत किया गया है। उनमें विश्वनाथ कविराज का 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' इसके वर्णन के समय पर वाक्य के स्वरूप और पद के स्वरूप को देखा। फिर आकांक्षा, योग्यता और आसत्ति को देखा। और वह काव्य ध्वनिकाव्य और गुणी भूत व्यंग्य के भेद से दो प्रकार का है। फिर दृश्य श्रव्य के भेद से पुनः दो प्रकार का होकर काव्य को प्रतिपादित किया है।

उस काव्य के प्रयोजनों को संगृहीत किया गया है। मम्मट के, विश्वनाथ के और अग्निपुराण के प्रयोजन को यहाँ संगृहीत किया है। उससे सिद्धान्त रूप से पुरुषार्थबोध और रसास्वाद काव्य का प्रयोजन आया। उसमें भी रसास्वाद ही परम प्रयोजन है।

शब्दनिष्ठ अर्थ की प्रतिपादक व्यापार विशेष वृत्ति होती है। और वह तीन प्रकार की है- अभिधा, लक्षणा, और व्यंजना। उसमें वाच्यार्थ का बोध कराने वाली अभिधा, लक्ष्यार्थ का बोध कराने वाली लक्षणा और व्यंग्यार्थ का बोध कराने वाली व्यंजना होती है। उनमें अभिधा ही संकेतित अर्थ का बोध कराती है। संकेत जाति, गुण, द्रव्य, क्रिया से ग्रहण किया जाता है। मुख्य अर्थ का बाध रूढ़ि अथवा प्रयोजन से मुख्य अर्थ से सम्बद्ध अन्य अर्थ का जिसके द्वारा बोध होता है वह आरोपित शक्ति लक्षणा है। वह ही प्रधान रूप से रूढ़िमूला और प्रयोजन मूला दो प्रकार से विभक्त है। फिर उपादान लक्षणा और लक्षण लक्षणा ये चार प्रकार होते हैं। इसी प्रकार लक्षणा के अनेकों भेद हैं। व्यंजना तो अभिधादि से अलग व्यंग्यार्थ के प्रतिपादन के लिए प्रवृत्त है। वह ही अभिधामूला और लक्षणामूला के भेद से दो प्रकार का है। अभिधामूला के प्रतिपादन के समय शक्ति नियामक संयोगादि को वर्णित किया गया है। इस प्रकार सम्यक्र रूप से वृत्ति के स्वरूप को कहा है।

फिर रस के स्वरूप का पर्यालोचन किया गया है। वहाँ रससूत्र की व्याख्या के समय चार वादों को कहा है। उनमें अभिनवगुप्त का अभिव्यक्तिवाद सिद्धान्तभूत है। वहाँ रस सूत्र में स्थित विभाव अनुभाव व्यभिचारी भावों के लक्षण को कहा हैं। उसके बाद उनके साधरणीकरण को कहा। रसास्वाद के प्रकार साहित्य दर्पणकार ने कहे है। स्थायी भाव नौ होने से नौ रस कहे है। उनमें सामान्यतः स्थायीभाव, वर्ण,

देवताओं का संग्रह करके एक तालिका के रूप में प्रस्तुत किया है। इस प्रकार सम्यक् रूप से इस पाठ के सार को कहा।

पाठान्त प्रश्न

1. कवि के स्वरूप और कवि के भेदों को वर्णित करें?
2. प्रतिभा के स्वरूप को वर्णित करें?
3. काव्य उत्पत्ति के हेतु के विषय में मतों को वर्णित करें?
4. सहृदयों के स्वरूप को वर्णित करें?
5. काव्य के स्वरूप को वर्णित करें?
6. वाक्य के लक्षण को वर्णित करें?
7. आकांक्षा, योग्यता और आसत्ति के लक्षणों को वर्णित करें?
8. काव्य के प्रयोजनों को वर्णित करें?
9. वृत्ति के स्वरूप प्रतिपादन के लिए एक वृत्ति को प्रतिपादित करें?
10. अभिधा को प्रतिपादित करें?
11. लक्षणा को वर्णित करें?
12. संकेत ग्रह के उपायों को वर्णित करें?
13. शक्तिनियामकों को वर्णित करें?
14. व्यंजना को वर्णित करें?
15. रसस्वरूप को वर्णित करें?
16. रससूत्र को पर्यालोचित करें?
17. रसभेदों को वर्णित करें?
18. कवि शब्द किस धातु से निष्पन्न है?

    क- कु धातु ख- कवृ धातु ग- कव् धातु।
19. कवि भेद नहीं है।

    क- शास्त्र कवि ख- स्मृति कवि ग- काव्य कवि घ- उभयकवि।
20. कारयित्री प्रतिभावान् कौन है?

    क- कवि ख- सहृदय ग- नायक घ- प्रतिनायक।
21. प्रख्या क्या है?

    क- कारयित्री प्रतिभा ख- भावयित्री प्रतिभा ग- व्युत्पत्तिः घ- अभ्यास।

ध्यान दें:

ध्यान दें:

22. काव्य का परम प्रयोजन क्या है?

क- यशोलाभ ख- पुरुषार्थ बोध ग- रसास्वाद

घ- व्यवहार ज्ञान।

23. गंगायां घोषः यहाँ क्या लक्षणा है?

क- रूढ़िमूला ख- प्रयोजनमूला ग- उपादान लक्षणा।

आपने क्या सीखा

- कवि के स्वरूप एवं उनके भेदों को;
- प्रतिभा के स्वरूप को;
- सहृदय के स्वरूप को;
- काव्य के स्वरूप को;
- काव्य प्रयोजन को;
- वृत्ति स्वरूप और वृत्ति भेदः
- रस स्वरूप एवं रसभेदों को;

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

उत्तर-1

1. कवि शब्द कवृ धातु से उत्पन्न है।
2. कवि की महत्तापरक आनन्दवर्धन का वचन है-

   ''अपारे काव्यसंसारे कविरेकः प्रजापतिः।
   यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते॥''
3. कवि कारयित्री प्रतिभा के द्वारा काव्य को निर्मित करता है।
4. कविशब्द का यास्क के मत में क्रान्तदर्शी अर्थ है।
5. राजशेखर के मत में प्रतिभा के साथ व्युत्पत्ति काव्य निर्माण के लिए अपेक्षित है।
6. कारयित्री प्रतिभा से युक्त कवि होता है।
7. कवि तीन प्रकार के है- शास्त्र कवि, काव्य कवि और उभय कवि।
8. जो कवि शास्त्रीय विषयों को काव्य रूप से प्रस्तुत करता है वह शास्त्रकवि है।
9. जो कवि वचन वैचित्र्य से शास्त्र में स्थित तर्क का अर्थ का शिथलता से सम्पादन करता है वह काव्य कवि है।
10. जो कवि अपने अनुभव के आधार से शास्त्रीय विषयों को वैसे प्रस्तुत करता है जैसे शास्त्रीय रूप के साथ काव्य रूप को भी धारण करता है वह उभय कवि है।

ध्यान दें:

उत्तर-2

11. भट्टतौत के मत में-'प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मता।'
12. अभिनव गुप्ताचार्य के मत में-'अपूर्ववस्तुनिर्माणक्षमा प्रज्ञा प्रतिभा'।
13. जगन्नाथ के मत में प्रतिभा का लक्षण है-'काव्य घटनानुकूल शब्दार्थोपस्थितिः प्रतिभा'।
14. राजशेखर के मत में 'या शब्दग्रामम् अर्थसार्थम् अलंकार तन्त्रम् उक्तिमार्गम् अन्यदपि तथाविधम् अधिहृदयं प्रतिभासयति सा प्रतिभा।'
15. राजशेखर के मत में प्रतिभा दो प्रकार है- कारयित्री और भावयित्री।
16. व्युत्पत्ति उचित अनुचित के विवेक का नाम है।
17. अभ्यास नाम निरन्तर
18. मम्मट के मत में प्रतिभा, अभ्यास और व्युत्पत्ति काव्य का कारण है
19. वस्तुतः प्रतिभा काव्य का कारण है।

उत्तर-3

20. सहृदय का लक्षण है-'येषां काव्यानुशीलनाभ्यासवशाद् विशदीभूते मनोमुकुरे वर्णनीय विषय तन्मयीभवन योग्यता ते एव हृदय संवादभाजः सहृदयाः।
21. सरस्वती के दो तत्व कवि और सहृदय है।
22. सहृदय भावयित्री प्रतिभा से युक्त होते हैं।
23. सहृदय के भावक, भावुक, रसिक, सचेता इत्यादि नाम है।

उत्तर-4

24. काव्य शब्द में कवि शब्द और ष्यञ् प्रत्यय है।
25. काव्य शब्द की निष्पत्ति का 'गुणवचनब्राह्मणदिभ्यः कर्म च' सूत्र है।
26. अग्नि पुराण में काव्य का लक्षण है-

    'संक्षेपाद् वाक्यमिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली।
    काव्यं स्फुरदलंकार गुणवद्दोषवर्जितम॥'
27. दण्डि ने काव्य का लक्षण कहा है- 'शरीरं तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली।'
28. भामह ने काव्य का लक्षण कहा है- 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्।'
29. आनन्दवर्धन ने काव्य का लक्षण कहा है-'सहृदयहृदयाह्लादिशब्दार्थमयत्वमेव काव्यलक्षणम्।'
30. जगन्नाथ ने काव्य लक्षण कहा है-'रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्।
31. मम्मट का काव्यलक्षण है 'तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि'
32. विश्वनाथ का काव्य लक्षण है- 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्।'
33. वाक्य का लक्षण साहित्य दर्पण के मत में है 'वाक्यं स्याद्योगताकांक्षासतियुक्तः पदोच्चयः।'

ध्यान दें:

34. साहित्य दर्पण के मत में पद का लक्षण है 'वर्णाः पदं प्रयोगार्हानन्वितैकार्थबोधकाः।'

35. पदों की पद के बाद अपेक्षा आकांक्षा होती है।

36. पदार्थों के परस्पर सम्बन्ध में बाधा का अभाव योग्यता है।

37. पदार्थों में उपस्थित बाधा का न होना आसत्ति है।

उत्तर-5

38. मम्मटाचार्य के मत में काव्यप्रयोजन है-

'काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे॥'

39. विश्वनाथ के मत में काव्य का प्रयोजन है

'चतुर्वर्गफलप्राप्तिः सुखादल्पधियामपि।
काव्यादेव यतस्तेन तत्स्वरूपं निरूप्यते॥''

40. काव्य के द्वारा भगवान नारायाणादि के पूजन से अमंगल का नाश होता है।

41. भामहाचार्य के मत में

'धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च।
करोति कीर्तिं प्रीतिं च साधुकाव्यनिषेवणम्॥

42. अग्निपुराण में काव्य के विषय में कहा है-

'नरत्वं दुर्लभं लोके विद्या तत्र सुदुर्लभा।
कवित्वं दुर्लभं तत्र शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा॥

43. काव्य के प्रयोजन दो है- पुरुषार्थबोध और रसास्वाद।

44. काव्य का सभी की अपेक्षा रसास्वाद मुख्य प्रयोजन है। और वहाँ प्रमाण महिमभट्ट का वचन है। 'काव्ये रसयिता सर्वो न बोद्धा न नियोगभाक्।

उत्तर-6

45. शब्द तीन प्रकार का है वाचक, लक्ष्यक और व्यंजक।

46. अर्थ तीन प्रकार का है- वाच्य, लक्ष्य और व्यंग्य।

47. शब्द निष्ठ अर्थ की बोधक व्यापार विशेष वृत्ति होती है।

48. वृत्ति के तीन भेद हैं- अभिधा, लक्षणा और व्यंजना।

49. अभिधा का लक्षण-'तत्र संकेतितार्थस्य बोधनादग्रिमाभिधा।'

50. गदाधर के मत में संकेत- 'इदं पदमिमम् अर्थं बोधयतु इति अस्मात्पदाद् अयमर्थो बोद्धव्य इति वेच्छा संकेतरूपा वृत्तिः इति।

51. संकेत जाति, गुण, द्रव्य, क्रिया आदि में प्राप्त होता है।

52. लक्षणा का स्वरूप है-'मुख्यार्थबाधे तद्युक्तो ययान्योऽर्थः प्रतीयते। रूढ़ेः प्रयोजनाद्वसौ लक्षणा शक्तिरर्पिता।

ध्यान दें:

53. रूढ़िमूला लक्षणा का कलिंग साहसिक उदाहरण है।

54. प्रयोजनमूला लक्षणा का गंङ्गायां घोषः उदाहरण है।

55. उपादान लक्षणा का लक्षण है-

'मुख्यार्थस्येतराक्षेपो वाक्यार्थेऽन्वयसिद्धये।
स्यादात्मनोऽप्युपादानादेषोपादानलक्षणा''॥ इति।

56. लक्षण लक्षणा का लक्षण है।

'अर्पणं स्वस्य वाक्यार्थे परस्यान्वयसिद्धये
उपलक्षणहेतुत्वादेषा लक्षण लक्षणा।'

57. उपादान लक्षणा का उदाहरण श्वेतो धावति है।

58. लक्षण लक्षणा का उदाहरण गंङ्गायां घोषः है।

59. व्यंजना का स्वरूप दर्पण में है

'विरतास्वभिधाद्यासु ययाऽर्थो बोध्यते परः।
स वृत्तिर्व्यंजना नाम शब्दस्यार्थादिकस्य च।

60. व्यंजना सामान्यतः दो प्रकार की अभिधामूला, व्यंजनामूला है।

61. शक्ति नियामक प्रतिपादन की दो कारिका है-

संयोगो विप्रयोगश्च साहचर्यं विरोधिता।
अर्थः प्रकरणं लिंगं शब्दस्यान्यस्य सन्निधिः॥
सामर्थ्यमौचिती देश कालो व्यक्तिः स्वरादयः।
शब्दार्थस्यानवच्छेदे विशेषस्मृतिहेतवः॥ इति॥

उत्तर-7

62. रससूत्र है- 'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद् रसनिष्पत्तिः इति।

63. रस के चार वाद है- 'रसः उत्पद्यते' भट्टलोल्लट का उत्पत्तिवाद, 'रसः अनुमीयते' श्री शंकुक का अनुमितिवाद, 'रसः भुज्यते' भट्टनायक का भुक्तिवाद, 'रसः अभिव्यज्यते' अभिनवगुप्त का अभिव्यक्तिवाद।

64. विभाव का लक्षण है- रत्याद्युद्बोधकाः लोके विभावाः काव्यनाट्ययोः।

65. अनुभाव का लक्षण है-

उद्बुद्धं कारणैः स्वैः स्वैर्बहिर्भावं प्रकाशयन्।
लोके यः कार्यरूपः सोऽनुभावः काव्यनाट्ययोः।

66. व्यभिचारीभाव का लक्षण है-' स्थिरतया वर्तमाने हि रत्यादौ निर्वेदादिः प्रादुर्भावतिरोभावाभ्याम् आभिमुख्येन चरति इति।

67. रस के विषय में अभिनवगुप्त का अभिव्यक्तिवाद सभी की अपेक्षा श्रेष्ठ है।

68. अभिनवगुप्त के मत में रस सूत्र का अर्थ है- 'विभावानुभावव्यभिचारिणां संयोगात् स्थायिभावस्य रसात्मना अभिव्यक्तिः इति।

ध्यान दें:

69. साहित्य दर्पण में रसाभिव्यक्ति कारिका कही है-

''विभावेनानुभावेन व्यक्तः संचारिणा तथा।
रसतामेति रत्यादिः स्थायिभावः सचेतसाम्॥

70. रसास्वाद कारिका-

''सत्वोद्रेकादखण्डस्वप्रकाशनन्दचिन्मयः।
वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वाद सहोदरः॥
लोकोत्तरचमत्कारप्राणः कैश्चित्प्रमातृभिः।
स्वाकारवदभिन्नत्वेनायमास्वाद्यते रसः॥

71. साधारणीकरण व्यापार से विभाव आदि निर्विशेष होते हैं।

72. रति शोकादि भाव रसत्व प्राप्ति में पूर्वपर्यन्त स्थिरता से ही रहते हैं। इसलिए रति शोकादि भाव संसार में स्थायी भाव कहलाते हैं।

73. स्थायिभाव-

'रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा।
जुगुप्सा विस्मयश्चेत्थमष्टौ प्रोक्ताः शमोऽपि च॥

74. जगन्नाथ का रस लक्षण तो भग्नावरण रस ही है।

75. नव रस होते हैं।

'श्रृंगारहास्यकरुणा रौद्रवीरभयानकाः।
वीभत्सोऽद्भुत इत्यष्टौ शान्तोऽपि नवमो रसः॥'

76. श्रृंगार, हास्य, करुण रसों के क्रमानुसार विष्णु, प्रथमगण और यम देवता है।

77. श्रृंगार, हास्य, करुण रसों के क्रमानुसार श्याम, श्वेत और कपोत वर्ण है।

78. रौद्र, वीर, भयानक के क्रमानुसार रुद्रः, महेन्द्र और काल देवता है।

79. रौद्र, वीर, भयानक के क्रमानुसार रक्त, हेमवर्ण और कृष्ण वर्ण है।

80. बीभत्स, अद्भुत, शान्त के क्रमानुसार महाकाल, गन्धर्व, और नारायण देवता है।

81. बीभत्स, अद्भुत और शान्त के क्रमानुसार नील, पीत और अतिधवल वर्ण है।

10

काव्यशास्त्र प्रवेश-3

ध्यान दें:

अलंकारशास्त्र के पद परिचय के अवसर पर काव्य की आत्मा रस के उत्कर्षक गुण, अलंकार, रीति आदि उल्लेख योग्य होते हैं। इस पाठ में गुण का स्वरूप, गुण के भेद, रीति का स्वरूप, रीति के भेद, अलंकार का स्वरूप और अलंकार के भेद का वर्णन करते हैं। अलंकार भेद के वर्णन के समय कुछ अधिक प्रसिद्ध अलंकारों को सोदाहरण इस पाठ में बताया गया है। उसके बाद काव्य के सौन्दर्य के आधायक छन्द होते है। इसलिए छन्द का सामान्य स्वरूप है। उस प्रसंग में पद्य का स्वरूप और पद्य के भेद वर्णित है। फिर कुछ छन्दों को सोदाहरण इस पाठ में बताया गया है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे;

- गुण स्वरूप और गुण भेदों को जानने में;
- रीति का स्वरूप और रीति भेदों को जानने में;
- अलंकार स्वरूप और अलंकार भेदों को जानने में;
- कुछ प्रसिद्ध अलंकारों के लक्षणों को जानने में;
- पद्य का स्वरूप और पद्य के भेदों को जानने में;
- कुछ छन्दों के लक्षणों को जानने में;

10.1) गुण का स्वरूप

गुण, अलंकार, रीति काव्य के उत्कर्ष के हेतु होते हैं। साहित्य दर्पणकार के द्वारा कहा गया है।

''उत्कर्षहेतवः प्रोक्ता गुणालंकाररीतयः''॥ इति।

काव्य के गुण शौर्यादि के समान, अलंकार कटककुण्डल के समान, रीति अवयव संस्थान विशेष होते हैं। वे ही शरीर के समान शब्द अर्थात्मक काव्य की आत्मा रस के उत्कर्षक होते हैं। इसलिए ही वे काव्य के भी उत्कर्ष के हेतु हैं।

ध्यान दें:

गुण शौर्यादि के समान होते हैं। अर्थात् आत्मा के उत्कर्ष हेतु शौर्यादि जैसे गुण होते हैं। वैसे ही काव्य में प्रधानभूत रस के धर्म माधुर्यादि रसव्यंजक पद सन्दर्भ के काव्य के उपयोगी गुण होते हैं। इसलिए ही साहित्य दर्पण में गुण का लक्षण कहा है-

''रसस्याङ्गित्वमाप्तस्य धर्माः शौर्यादयो यथा। गुणाः''।

गुण तीन होते हैं- माधुर्य, ओज और प्रसाद।

क. माधुर्य- माधुर्य का लक्षण है-

'चित्तद्रवीभावमयो ह्लादौ माधुर्यमुच्यते॥'

सहृदयों के चित्त का द्रुतिस्वरूप जिसमें अन्तःकरण द्रुत हो जाए ऐसा संभोग आनन्द विशेष माधुर्य गुण होता है। यह गुण वाल्मीकि, कालिदास आदि के काव्यों में दिखाई देता है। सम्भोग में, करुण में, विप्रलम्भ में और शान्त में यह गुण क्रम से अधिकता से दिखाई देता है। रेफ, डकारादि श्रुति कटु वर्णों से रहित, उस वर्ग के अन्तिम वर्ण के साथ, समास रहित और छोटे समास वाली रचना, मधुर रचना इस गुण की अभिव्यक्ति का निमित्त होता है। जैसे-

अनंङ्गमङ्गलभुवस्तदपाङ्गस्य भङ्गयः।
जनयन्ति मुहूर्यूनामन्तः सन्तापसन्ततिम्॥ इति।

यहाँ प्रथम भाग में वर्ग में स्थित अन्तिम वर्ण से डकार सहित उस वर्ग का गकार, और द्वितीय भाग में वर्ग में स्थित अन्तिम वर्ण नकार के साथ उस वर्ग का तकार माधुर्य की अभिव्यक्ति का कारण है।

ख ओजः- ओज गुण का लक्षण है-

'ओजश्चित्तस्य विस्ताररूपं दीप्तत्वमुच्यते।' इति।

सहृदयों के द्वारा वीरादि रसास्वाद के समय द्रवी भाव के प्रतिकूल चित्त का विस्तार स्वरूप दीप्तत्व ओज होता है। वीर बीभत्स रौद्र रसों में क्रमशः इस गुण की अधिकता होती है। इस गुण की अभिव्यक्ति श्रुतिकटु वर्णों के द्वारा, दीर्घ समास पदों के द्वारा, महाप्राण अक्षरों के द्वारा सम्यक् रूप से होती है। जैसे-

चंचद्भुजभ्रमितचण्डगदाभिघात-
संचूर्णितोरुयुगलस्य सुयोधनस्य।
स्तयानावनद्धघनशोणितशोणपाणि-
रुत्तंसयिष्यति कचांस्तव देवि भीमः॥

यहाँ श्रुतिकटु वर्णो के ञ्च इत्यादि के सम्मिलित होने से बड़े सामासिक पद और सत्व से ओज गुण की सम्यक् अभिव्यक्ति होती है।

ग. प्रसाद- प्रसाद का लक्षण दर्पण में कहा है-

'चित्तं व्याप्नोति यः क्षिप्रं शुष्केन्धनमिवानलः।
स प्रसादः समस्तेषु रसेषु रचनासु च॥' इति।

अग्नि जैसे शुष्क ईंधन को शीघ्र व्याप्त कर लेती है वैसे ही जो गुण चित्त को शीघ्र व्याप्त करता है वह प्रसाद कहलाता है। यह प्रसाद सभी रसों और रचनाओं में है। श्रुति मात्र से अर्थ के बोधक शब्द प्रसाद गुण की अभिव्यक्ति का कारण है। जैसे उदाहरण-

ध्यान दें:

सूचीमुखेन सकृदेव कृतव्रणस्त्वं
मुक्ताकलाप! लुठसि स्तनयोः प्रियायाः।
बाणैः स्मरस्य शतशो विनिकृत्तमर्मा
स्वप्नेऽपि तां कथमहं न विलोकयामि॥

इस प्रकार गुण वर्णित किए गए हैं।

पाठगत प्रश्न-1

1. काव्य के उत्कर्ष के हेतु कौन होते हैं?
2. गुणादि कैसे काव्य के उपकारक है?
3. गुण का स्वरूप क्या है?
4. गुण के कितने भेद है, और वे कौन-से हैं?
5. माधुर्य का लक्षण क्या है?
6. माधुर्य की अभिव्यक्ति का क्या निमित्त है?
7. माधुर्य गुण किन रसों में होता है?
8. माधुर्य का एक उदाहरण दो?
9. ओज का लक्षण क्या है?
10. ओज की अभिव्यक्ति का क्या निमित्त है?
11. ओज गुण का किस में आधिक्य होता है?
12. ओज गुण का एक उदाहरण दो?
13. प्रसाद का लक्षण क्या है?
14. प्रसाद की अभिव्यक्ति का क्या निमित्त है?
15. प्रसाद का एक उदाहरण दो?

10.2) रीति का स्वरूप

रीति अवयव संस्थान के समान है पहले ही प्रतिपादित किया गया है। अब रीति किसे कहते हैं यह साहित्य दर्पण में कहा गया है-

''पदसंघटना रीतिरंगसंस्थाविशेषवत्। उपकर्त्री रसादीनाम्।''

शरीर में यथास्थान अवयवों का संगठन के समान शब्द अर्थ से युक्त काव्य रूपी शरीर में माधुर्यादि गुण व्यंजन वर्णों के सन्निवेश से रीति होती है, वह परम्परा के द्वारा रसादि की पोषिका होती है। एवं वह रीति साहित्य दर्पण के अनुसार चार प्रकार वैदर्भी, गौड़ी, पांचाली और लाटी है। ध्वनिकारादि के अभिप्राय से ती नहीं रीति है, लाटी का प्रयोजन नहीं है। फिर भी यहाँ तो साहित्य दर्पणकार ने चारों का सामान्य परिचय दिया है।

ध्यान दें:

क. वैदर्भी- माधुर्य गुण के अभिव्यंजक वर्णों के द्वारा सुकुमार बन्ध से युक्त, समास रहित, छोटे समास सहित जो रचना है वह वैदर्भी रीति है। वैसा ही दर्पण में है-

''माधुर्यव्यंजकैर्वर्णैः रचना ललितात्मिका।
अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते॥'' इति।

अर्थात् बहुलता से कोमल वर्ण होने चाहिए। यह माधुर्य गुण से अभिव्यंजित शृंगार, करुण आदि रसों में प्रयोग योग्य है। जैसे उदाहरण-

लताकुंजं गुंजन् मदवदलिपुंज चपलयन्
समालिंगन्नंगं द्रुततरमनंगं प्रबलयन्।
मरुन्मन्दं मन्दं दलितमरविन्दं तरलयन्
रजोवृन्दं विन्दन् किरति मकरन्दं दिशि दिशि। इति।

ख. गौडी- ओज प्रकाशक वर्णों के द्वारा समास बहुल उद्धट पदयोजना गौडी होती है। दर्पण में कहा है-

''ओजःप्रकाशकैर्वर्णैर्बन्ध आडम्बरः पुनः। समासबहुला गौडी''॥ इति।

क्रोधादि प्रधान में रौद्रादि रसों में यह प्रयुक्त करते है। जैसे-

विकचकमलगन्धैरन्धयन् भृंगमालाः
सुरभितमकरन्दं मन्दमावाति वातः।
प्रमदमदनमाद्यद्यौवनोद्दामरामा-
रमणरभसखेदस्वेदविच्छेददक्षः॥ इति।

ग- पांचाली- गौडी वैदर्भी के व्यंजक के अतिरिक्त वर्णों के द्वारा, पाँच अथवा छः समस्त पदों का वह बन्ध पांचाली होता है। वैसा ही साहित्य दर्पण में है-

''वर्णैः शेषैः पुनर्द्वयोः। समस्तपंचषपदो बन्धः पांचालिका मता।'' इति।

यहाँ उदाहरण है-

मधुरया मधुबोधितमाधवीमधुसमृद्धिसमेधितमेधया।
मधुकरांगनया मुहुरुन्मदध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे॥ इति।

घ. लाटिका- लाटिका रीति तो साहित्य दर्पणकार को अभिमत है। वैसा ही साहित्य दर्पण में उसका लक्षण है-

''लाटी तु रीतिर्वैदर्भीपांचाल्योरन्तरे स्थिता।'' इति।

यहाँ उदाहरण है-

अयमुदयति मुद्राभञ्जनः पद्मिनीनाम्
उदयगिरवनालीबालमन्दारपुष्पम्।
विरहविधुरकोकद्वन्द्वबन्धुर्विभिन्दन्
कुपितकपिकपोलक्रोडताम्रस्तमांसि॥ इति।

इस प्रकार सामान्य रीति कही गई है।

पाठगत प्रश्न-2

16. रीति का स्वरूप क्या है?
17. रीति के कितने भेद है और वे कौन-से हैं?
18. वैदर्भी रीति का लक्षण क्या है?
19. वैदर्भी रीति का एक उदाहरण दो?
20. गौडी रीति का लक्षण क्या है?
21. गौडी रीति का एक उदाहरण दो?
22. पांचाली रीति का लक्षण क्या है?
23. पांचाली रीति का एक उदाहरण दो?
24. लाटी रीति का लक्षण क्या है?
25. लाटी रीति का एक उदाहरण दो?
26. लाटी रीति किसके मत में नहीं है?

10.3) अलंकार का स्वरूप

काव्य के उपकर्षक में अलंकार भी उनमें से एक होता है। वह ही कटक कुण्डलादि के समान होता है। जैसे केवल कटककुण्डलादि शरीर की शोभा के अतिशय से शरीर के सौन्दर्य को बढ़ाते हैं वैसे ही शब्द अर्थ से युक्त काव्य की शोभा को बढ़ाने वाले अलंकार काव्य की आत्मा रस के उत्कर्षक होते हैं। अलंकार का लक्षण साहित्य दर्पण में है-

''शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्माः शोभातिशायिनः।
रसादीनुपकुर्वन्तेऽलंकारास्तेऽंगदादिवत्॥'' इति।

जो किसी को सुशोभित करने का साधन हो वह अलंकार है, बहुत से वामानादि अलंकारिक चिन्तन करते हैं। वह अलंकार ही काव्य शरीरभूत शब्द अर्थ का लोकोत्तर रमणीयता का सम्पादक है।

शब्द अर्थ की विचित्रता से अलंकार दो प्रकार के है- शब्दालंकार और अर्थालंकार। कुछ अलंकारिक शब्दार्थालंकार इस तृतीय पक्ष को भी कहते हैं। अनुप्रासादि शब्दालंकार और उपमा रूपकादि अर्थालंकार होते हैं। उनमें कुछ अलंकारों को नीचे प्रस्तुत किया गया हैं-

क. शब्दालंकार- जिस अलंकार में शब्द की प्रधानता होती है वह अलंकार शब्दालंकार कहलाता है। शब्दालंकारों में अनुप्रास, यमक, और वक्रोक्ति को वर्णित किया गया है-

1. **अनुप्रासः** - स्वर की विषमता रहने पर भी शब्द के साम्य को अनुप्रास अलंकार कहते है। उसका लक्षण दर्पण में है-

''अनुप्रासः शब्दसाम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्य यत्।'' इति।

स्वर वर्ण विचित्रता को उत्पन्न नहीं करते। इसलिए लक्षण में स्वर सादृश्य को स्वीकार नहीं किया गया है। जैसे यहाँ उदाहरण है-

ध्यान दें:

ध्यान दें:

आदाय वकुलगन्धानन्धीकुर्वन् पदे पदे भ्रमरान्।
अयमेति मन्दमन्दं कावेरीवारिपावनः पवनः॥ इति।

पदे-पदे में, मन्द-मन्दं, पावनः पवनः इत्यादि व्यंजनवर्णो की समानता अनुप्रास अलंकार है। वह अनुप्रास पांच प्रकार का है- **छेकानुप्रास, वृत्यनुप्रास, श्रुत्युनप्रास, अन्त्यानुप्रास और लाटानुप्रास।** उनके विशेष अध्ययन के लिए साहित्यदर्पण देखें।

2. **यमकम्**- अर्थयुक्त होकर भिन्न अर्थ वाले स्वर व्यंजन के समूह की उसी क्रम में आवृत्ति को यमक कहते हैं। वैसा ही लक्षण विश्वनाथ ने कहा है-

''सत्यर्थे पृथगर्थायाः स्वरव्यंजनसंहतेः।
क्रमेण तेनैवावृत्तिःर्यमकं विनिगद्यते॥'' इति।

स्वरव्यंजन का समूह कहीं अर्थवान कहीं निरर्थक होता है। उसे ही प्रतिपादित करने के लिए लक्षण में सत्यर्थे इस पद को प्रयुक्त किया। यहाँ उदाहरण है-

''नवपलाश-पलाश-वनं पुरः स्फुटपराग-परागत-पंकजम्।
मृदुल-तान्त-लतान्तमलोकयत् स सुरभिं सुरभिं सुमनोहरैः॥ इति

इस श्लोक में पलाश-पलाश, सुरभिं सुरभिम् दोनों ही स्वर व्यंजन के समूह की आवृत्ति सार्थक है। लतान्त-लतान्त यहाँ प्रथम निरर्थक है। परागपराग यहाँ द्वितीय की निरर्थकता है। इस प्रकार यहाँ स्वरव्यंजन के समूह की उसी क्रम में आवृत्ति होने से यमक अलंकार है-

3. **वक्रोक्ति**- वक्रोक्ति अलंकार का लक्षण विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में कहा है-

''अन्यस्यान्यार्थकं वाक्यमन्यथा योजयेद्याद यदि।
अन्यः श्लेषेण काक्वा वा सा वक्रोक्तिस्ततो द्विधा॥'' इति।

जहाँ किसी अन्य के कहे अन्यार्थक वाक्य को कोई दूसरा श्रोता यदि सुनकर श्लेष अथवा काकु से अन्य अर्थ को वर्णित करता है तब वह वक्रोक्ति नामक अलंकार है। भिन्न कण्ठ ध्वनि काकु कहलाती है। वह वक्रोक्ति सामान्यतः श्लेष वक्रोक्ति और काकु वक्रोक्ति के भेद से दो प्रकार की होती है। उसका उदाहरण है जैसे-

''के यूयं, स्थल एव सम्प्रति वयम्, प्रश्नो विशेषाश्रयः,
किं ब्रुते विहगः, स वा फणिपतिर्यत्रास्ति सुप्तो हरिः।
वामा यूयमहो विडम्बरसिकः कीदृक् स्मरो वर्तते।
येनास्मासु विवेकशून्यमनसः पुंस्वेव योषिद्भ्रमः॥'' इति।

यहाँ वक्ता ने के यूयम् पूछा। तब श्रोता ने 'के' इसकी जल अर्थ में श्लेष से कल्पना की। फिर कहता है- हम तो अभी स्थल में ही हैं। प्रथम वक्ता फिर कहता है- प्रश्न विशेषपरक है। अर्थात् व्यक्ति विशेष आश्रित प्रश्न है। श्रोता श्लेष से विः का विहग परक और शेष का नागराज परक अर्थ ग्रहण करके कहता है- कि बताइए तो सही वह पक्षी है अथवा फणिपति जिनके ऊपर विष्णु सोते हैं। इस प्रकार से श्लेष से वक्ता के अन्य तात्पर्य वाक्य का अन्य अर्थ से श्रोता ने यहाँ कल्पना की इसलिए वक्रोक्ति अलंकार है। सामान्यतः तीन शब्दालंकार प्रस्तुत किए हैं।

ख. अर्थालंकार- अर्थ वैचित्र्य से जो अलंकार होता है वह अर्थालंकार है। अर्थालंकारों में प्रवेश के लिए उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, समासोक्ति अर्थालंकार यहाँ प्रस्तुत हैं।

1. **उपमा**- अर्थालंकारों में सादृश्यमूलक अलंकारों की जननी उपमा होती है। उसका लक्षण साहित्य दर्पण में प्रस्तुत किया गया है।

ध्यान दें:

''साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैवउपमा द्वयोः।'' इति।

एक वाक्य में दो पदार्थों के, वैधर्म्य रहित, वाक्य सादृश्य को उपमा कहते है। जिसके द्वारा सादृश्य को ग्रहण करते है वहाँ जिसका सादृश्य है वह उपमान है। मुख में सादृश्य है इसलिए मुख उपमेय होता है।

यहाँ लक्षण में वाच्यम् पद के उपादान से रूपक अलंकार का निषेध होता है। क्योंकि रूपक में साम्य व्यंग्य होता है। इसी प्रकार अवैधर्म्य पद से व्यतिरेक का निराकरण होता है। कारण है केवल व्यतिरेक में साधर्म्य के साथ वैधर्म्य भी कहा जाता है। वाक्यैक्य पद के उपादान से उपमेयोपमाया का निषेध होता है। क्योंकि उपमेयोपमाया में दो वाक्य होते है। द्वयोः पद के उपादान से अनन्वय का निषेध होता है, वहाँ एक ही साम्यकथन से।

इस अलंकार के पूर्णोपमा और लुप्तोपमा दो भेद है। जिस उपमा में उपमेय, उपमान, साधारणधर्म, और सादृश्यवाचक होते हैं वह पूर्णोपमा होती है। एवम् अंश चतुष्टय से सम्पन्न पूर्णोपमा है। पूर्णोपमा का उदाहरण है-

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ॥ इति।

यहाँ वागर्थौ उपमान, पार्वतीपरमेश्वरौ उपमेय, इव सादृश्यवाचक शब्द है, सम्पृक्तत्वरूप साधारण धर्म है अतः पूर्णोपमा है।

जिस उपमा में उपमेय, उपमान, साधारण धर्म और सादृश्य वाचक चारों में से एक का, दो अथवा तीन का ग्रहण नहीं होता वह लुप्तोपमा है। यहाँ उदाहरण है जैसे-

मुखमिन्दुर्यथा पाणिः पल्लवेन समः प्रिये।
वाचः सुधा इवोष्ठस्ते बिम्बतुल्यो मनोऽश्मवत्॥ इति।

यहाँ यथाक्रम आनन्द, कोमल, मधुर, कठिन साधारण धर्म वाचक शब्दों के अनुपादान से लुप्तोपमा है। और वह श्रौती आर्थी के भेद से बहुत प्रकार की है। वह सब दर्पणादि में देखा जाना चाहिए।

1. **रूपक**- रूपक अलंकार अभेद प्रधान होता है, उसका लक्षण साहित्य दर्पण में है-

''रूपकं रूपितारोपाद्विषये निरपह्नवे।'' इति।

प्रकृत गोपन को रूपक कहते हैं। निषेध रहित विषय उपमेय में रूपित उपमान के आरोप से सादृश्यता अतिश्य महिमा के अभेद वर्णन से रूपक अलंकार है। अर्थात् रूपक अलंकार में उपमान उपमेय का अभेद प्रतिपादित है। मुख चन्द्रमा के समान उपमा है, मुख चन्द्रमा ही है रूपक है। यहाँ उदाहरण है जैसे-

पान्तु वो जलदश्यामाः शांङ्गर्ज्याघतकर्कशाः।
त्रैलोक्यमण्डपस्तम्भाश्चत्वारो हरिबाहवः॥ इति।

यहाँ त्रैलोक्यम् हरिबाहवः ये दो उपमेय है। मण्डप स्तम्भ ये दो उपमान है। यहाँ त्रैलोक्य ही मण्डप, हरिबाहवः ही स्तम्भ है अभेद वर्णन से रूपक अलंकार है। और वह रूपक परम्परित, निरंग और सांग के भेद से तीन प्रकार का है। विशेष भेद ज्ञान के लिए साहित्य दर्पणादि ग्रन्थों को देखना चाहिए।

2. **उत्प्रेक्षा**- उत्प्रेक्षा अलंकार सम्भावनात्मक है। उसका लक्षण साहित्य दर्पण में है-

''भवेत्सम्भावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना।'' इति।

ध्यान दें:

प्रकृत प्रस्तुत की अप्रस्तुत के रूप में सम्भावना करने को उत्प्रेक्षा कहते है। मन्ये, शंके, ध्रुवं, प्रायः, इव इत्यादि उत्प्रेक्षा वाचक होते हैं। उसका उदाहरण है जैसे-

ज्ञाने मौनं क्षमा शक्तौ त्यागे श्लाघाविपर्ययः।
गुणा गुणानुबन्धित्वात् तस्य सप्रसवा इव॥ इति।

यहाँ प्रस्तुत गुणों में सप्रसवत्व की सम्भावना से उत्प्रेक्षा अलंकार है। इस अलंकार के वाच्य प्रतीयमान इत्यादि भेद है। उनके ज्ञान के लिए साहित्य दर्पणादि ग्रन्थों को देखना चाहिए।

3. **दृष्टान्त**- दृष्टान्त अलंकार तो समर्थ्यसमर्थक भाव मूलक अलंकार है। साहित्यदर्पण में दृष्टान्त अलंकार का लक्षण कहा है-

''दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बनम्॥'' इति।

जहाँ दो वाक्यों के मध्य में धर्म सहित समान धर्म विशिष्ट वस्तु के सामान्य धर्म के प्रतिबिम्बन को प्रतिबिम्ब भाव से वर्णन होता है वह दृष्टान्त अलंकार है। सादृश्य के अवधानगम्य होने को प्रतिबिम्बन कहते हैं।

''अविदितगुणापि सत्कविभणितिः कर्णेषु वमति मधुधाराम्।
अनधिगतपरिमलापि हि हरति दृशं मालतीमाला॥'' इति।

अच्छे कवि की उक्ति के गुण न जानने पर भी कानों में मधुरस बरसाती है इस वाक्य का समर्थन, प्रतीत न होते हुए भी मालती माला की गन्ध दृष्टि को हर लेती है वाक्य की समर्थक होती है। दोनों वाक्य में वमन और हरण दो साधारण धर्म है। यहाँ समानता से ही सामान्य धर्म में बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव होता है यह दृष्टान्त अलंकार का लक्षण है।

4. **समासोक्ति**- कविराज विश्वनाथ ने साहित्यदर्पणनामक ग्रन्थ में समासोक्ति अलंकार के लक्षण को कहा है-

''समासोक्तिः समैर्यत्र कार्यलिंगविशेषणैः।
व्यवहारसमारोपः प्रस्तुतेऽन्यस्य वस्तुनः॥'' इति।

समान कार्य लिंग अथवा विशेषण से प्रस्तुत विषय में अन्य अप्रस्तुत का वस्तु विषय का जहाँ व्यवहार का आरोप हो वह समासोक्ति है। यहाँ उदाहरण है जैसे-

''असमाप्तजिगीषस्य स्त्रीचिन्ता का मनस्विनः।
अनाक्रम्य जगत् कृत्स्नं नो सन्ध्यां भजते रविः॥'' इति।

जिसकी जीतने की इच्छा न पूर्ण हुई हो, उस जैसे नीतिज्ञ पुरुष की सम्भोग की इच्छा कैसे सम्भव है यह प्रथम वाक्यार्थ है। यहाँ नायक और नायिका प्रस्तुत है। और द्वितीय वाक्य का अर्थ होता है सूर्य सम्पूर्ण जगत को आक्रान्त न करके सन्धया से नहीं मिलता है। इस श्लोक में नायक में सूर्य का और नायिका में सन्ध्या के व्यवहार के आरोप से समासोक्ति अलंकार है। यहाँ आरोप में लिंग साम्य कारण होता है। सूर्य में नायक का और पुल्लिङ्ग होने से नायक में सूर्य का व्यवहार, सन्ध्या नायिका में स्त्रीलिंग होने से नायिका में सन्ध्या के व्यवहार का आरोप होता है। इस प्रकार सामान्य रूप से पांच अर्थालंकार वर्णित है।

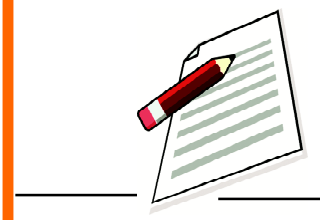

ध्यान दें:

पाठगत प्रश्न-3

27. अलंकार का लक्षण क्या है?
28. अलंकार कितने प्रकार के और कौन-से हैं?
29. अनुप्रास का लक्षण क्या है?
30. अनुप्रास के कितने भेद हैं और कौन-से हैं?
31. यमक का लक्षण क्या है?
32. यमक का उदाहरण क्या है?
33. सत्यर्थे यह पद यमक के लक्षण में किसलिए है?
34. वक्रोक्ति का क्या लक्षण है?
35. वक्रोक्ति के कितने भेद हैं?
36. सादृश्यमूलक अलंकार की जननी क्या है?
37. उपमा का लक्षण क्या है?
38. उपमा कितने प्रकार की और कौन-सी है?
39. पूर्णोपमा में अंशचतुष्टय क्या-क्या है?
40. रूपक का लक्षण क्या है?
41. रूपक के कितने भेद हैं और कौन-से हैं?
42. उत्प्रेक्षा अलंकार का लक्षण क्या है?
43. दृष्टान्त का लक्षण क्या है?
44. दृष्टान्त का उदाहरण क्या है?
45. प्रतिबिम्बन क्या है?
46. समासोक्ति का लक्षण क्या है?

10.4) छन्द का स्वरूप

काव्य के अनुशीलन के लिए छन्दों का ज्ञान अनिवार्य है। और उसके छन्द का विकास सर्वप्रथम वेदों में परिलक्षित है। छन्द ज्ञान के बिना वेदमन्त्रों को अच्छी तरह से उच्चारित नहीं कर सकते हैं। इसलिए वेदों के उपकार के लिए यह वेदांग पादस्थानीय होता है। छन्द का क्या नाम है ऐतरेय आरण्यक में - 'मानवान् पापकर्मभ्य: छादयति छन्दांसि इति छन्द:।'' व्याकरणाचार्य महर्षि पाणिनी के मत में छन्द धातु से छन्द शब्द की व्युत्पत्ति है। जो छन्दों में निबद्ध है वह छन्दशास्त्र होता है। इस शास्त्र का प्रथम ग्रन्थ पिंगल महर्षि द्वारा रचित पिंगल छन्द सूत्र है।

क. पद्यविभाग- छन्दोबद्ध पद्य ही चार चरण वाला होता है। और वह वृत्त पद्य और जाति पद्य के भेद से दो प्रकार का है। वैसा ही छन्दोमंजरी में कहा है-

ध्यान दें:

''पद्यं चतुष्पदी तच्च वृत्तं जातिरिति द्विधा।
वृत्तमक्षरसंख्यातं जातिर्मात्राकृता भवेत्॥'' इति।

वृत्त पद्य में अक्षरों की गणना और जाति छन्द में मात्रा की गणना होती है। मात्रा तीन प्रकार की होती है। और वे एकमात्रा, द्विमात्रा और त्रिमात्रा है। वहाँ ह्रस्व की एक मात्रा, दीर्घ की द्विमात्रा और प्लुत की तीन मात्रा है।

वृत्त समवृत्त, अर्धसमवृत्त और विषमवृत्त के भेद से तीन प्रकार का है। जिस वृत्त के चारों चरण में गुरुलघु क्रम से समान संख्या के अक्षर हो वह समवृत्त है। इन्द्रवज्रा, मालिनी वसन्ततिलका इत्यादि उदाहरण है। जिस वृत्त का प्रथम चरण तृतीय चरण के समान चतुर्थ चरण द्वितीय चरण के समान हो वह अर्धसमवृत्त है। पुष्पिताग्रा, सुन्दरी, माल भारिणी इत्यादि इसके उदाहरण हैं। जिस वृत्त के चारों चरण भिन्नाक्षर विशिष्ट होते हैं वह विषम वृत्त है। उद्गाता, सौरभक इत्यादि यहाँ उदाहरण है। वैसा ही छन्दोमंजरी में कहा है-

''समं समचतुष्पादं भवत्यर्धसमं पुनः॥
आदिस्तृतीयवद् यस्य पादस्तुर्यो द्वितीयवत्।
भिन्नचिह्नचतुष्पादं विषमं परिकीर्तितम्॥'' इति।

ख. पद्योपकारकाः गणाः- समवृत्त छन्द में जो गण व्याप्त हैं वे अक्षर गण होते हैं। वे हि मगण, यगण, रगण, सगण, तगण, जगण, भगण, नगण, गगण, लगण ये दश गण है। ये समवृत्त के उपकारक गण होते हैं। इनमें मगण से आरम्भ होकर नगण पर्यनत जो गण है वे तीन अक्षर से निर्मित होते हैं। गगण और लगण एक अक्षर विशिष्ट हैं। यहाँ अक्षर शब्द स्वर वर्ण का ही बोध करते हैं। छन्दोमंजरी में गणों का लक्षण कहा गया है-

''मस्त्रिगुरुस्त्रिलघुश्च नकारो भादिगुरुः पुनरादिलघुर्यः।
जो गुरुमध्यगतो रलमध्यः सोऽन्तगुरुः कथितोऽन्तलघुस्तः॥
गुरुरेको गकारस्तु लकारो लघुरेककः।'' इति।

मगण त्रिगुरु है। जिस गण में तीन स्वरवर्ण गुरु होते हैं वह मगण है। संयोग से पूर्व स्वरवर्ण गुरुसंज्ञक होता है। नकार त्रिलघु है। जिस गण में तीन स्वर लघु होते हैं वह नगण है। आदिगुरु अर्थात् जिस गण में आदि स्वर वर्ण गुरु और अन्य लघु होते हैं वह भगण है। आदिलघु अर्थात् जिस गण में केवल प्रथम वर्ण लघुसंज्ञक होता है वह यगण है। गुरुमध्यगत अर्थात् जगण में मध्यम वर्ण गुरु संज्ञक और अन्य लघु है। रगण में मध्यम वर्ण लघुसंज्ञक होता है। सगण में अन्तिम वर्ण गुरु होता है और अन्य लघु। तगण में अन्तिम वर्ण लघुसंज्ञक है आदि गुरु है। गुरु में एक गकार है अर्थात् गगण में एक गुरुवर्ण होता है। लकार में लघु एक अर्थात् लगण में एक लघुवर्ण होता है। दस गणों के चिह्न नीचे दिए गए हैं-

गण के नाम	लक्षण	चिह्न
मगण	त्रिगुरु	ऽऽऽ
नगण	त्रिलघु	।।।
भगण	आदिगुरु	ऽ।।
यगण	आदिलघु	।ऽऽ
जगण	गुरुमध्यगत	।ऽ।

ध्यान दें:

रगण	लमध्य	ऽ।ऽ
सगण	अन्तगुरु	।।ऽ
तगण	अन्तलघु	ऽऽ।
गगण	गुरुरेक	ऽ
लगण	लघुरेक	।

मात्रा वृत्त के उपयोगी गण पांच होते हैं- सर्वगुरु, अन्तगुरु, मध्यगुरु, आदिगुरु और सर्वलघु है। वैसा ही छन्दोमंजरी में कहा है-

''ज्ञेयाः सर्वान्तमध्यादिगुरवोऽत्र चतुष्कलाः।
गणाश्चतुर्लघूपेताः पंचार्यादिषु संस्थिताः॥'' इति।

गण	चिह्न	मात्रा
सर्वगुरु	ऽऽ	चतस्रः
अन्तगुरु	।।ऽ	चतस्रः
मध्यगुरु	।ऽ।	चतस्रः
आदिगुरु	ऽ।।	चतस्रः
सर्वलघु	।। ।।	चतस्रः

ये गण चतुश्कला होते हैं। चतुश्कला चार मात्रिक है। चार मात्रा जहाँ हो वह गण चतुर्मात्रक है। जिस गण में सभी वर्ण गुरु हो वह सर्वगुरु है। जिस गण में अन्तिम वर्ण गुरु होता है वह अन्तगुरु है, और अन्य दो वर्ण एकमात्रिक होते हैं। जिस गण में मध्य वर्ण गुरु होता है वह मध्यगुरु है। और अन्य दो लघु वर्ण होते हैं। जिस गण में आदि वर्ण गुरु है वह आदि गुरु है, और अन्य दो वर्ण लघु होते हैं। जिस गण में सभी वर्ण लघु होते हैं वह सर्व लघु है। यहाँ यह ध्यान योग्य है कि मात्रा वृत्त में चतुर्मात्रिक गण होते हैं। इसलिए प्रत्येक गण में चार मात्रा अनिवार्य है। यहाँ सुविधा के लिए तालिका दी गई है-

मात्रा तीन प्रकार की होती है- एकमात्रा, द्विमात्रा, त्रिमात्रा। वहाँ एकमात्रिक ह्रस्ववर्ण, द्विमात्रिक दीर्घ और त्रिमात्रिक प्लुत है। वैसे ही कहा है-

''एकमात्रो भवेद् ह्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते।
त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यंजनं चार्धमात्रकम्॥'' इति।

ग. **लघुगुरुव्यवस्था**- गुरुवर्ण कौन-से है, लघुवर्ण कौन-से हैं यह शंका सबके मन में उठती है। छन्दोमंजरी में इसके समाधान के लिए कारिका है-

''सानुस्वारश्च दीर्घश्च विसर्गी च गुरुर्भवेत्।
वर्णः संयोगपूर्वश्च तथा पादान्तगोऽपि वा॥'' इति।

अनुस्वार से युक्त सअनुस्वार स्वर गुरुसंज्ञक है। जैसे- ग्राम को जाता है यहाँ मकार के उत्तरवर्ती अकार से परम अनुस्वार है। इसलिए अनुस्वार युक्त वह अकार गुरु है। वहाँ अनुस्वार अवसान का भी उपलक्षण है। उस अवसान से व्यंजन भी लघु गुरु होता है। इसी प्रकार विसर्ग संयुक्त स्वर गुरु है। जैसे राम यहाँ विसर्ग से पूर्व मकारोत्तर अकार गुरु है। इसी प्रकार संयुक्तवर्ण से पूर्व वर्ण गुरु है। जैसे रक्त यहाँ क्तेति संयुक्त वर्ण से पूर्व वर्ण रकारोत्तर अकार गुरु है। पद के अन्त में स्थित लघु वर्ण विकल्प से गुरु

ध्यान दें:

और गुरु वर्ण प्रयोजन के अनुसार लघु वर्ण होता है।

घ. **यति**- छन्दों में यति का महत्व है। जिह्वा का इष्ट विश्राम स्थान यति है। वह विच्छेद अथवा विराम कह सकते हैं। गंगादास कविराज के द्वारा वह कहा है-

''यतिर्जिह्वेष्टविश्रामस्थानं कविभिरुच्यते।
सा विच्छेदविरामाद्यैः पदैर्वाच्या निजेच्छया॥'' इति।

यति छन्द में सब जगह नहीं होती है। पद के अन्त में यति चमत्कार कारिका होती है। पद के मध्य में चमत्कार का नाश करती है। वह यति पादान्त और पादमध्या है। वहाँ जैसे वंशस्थविल छन्द में पादान्त यति है।

न तज्जलं यन्न सुचारुपंकजं/
न पंकजं तद् यदलीनषट्पदम्॥ इति।
पादमध्या यतिः यथा मालिनीच्छन्दसि-
सरसिजमनुविद्धं/शैवलेनापि रम्यं/
मलिनमपि हिमांशोः/लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति॥ इति।

यहाँ 'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः' छन्द के लक्षण से पादान्त में जैसे यति वैसे ही पाद के मध्य में आठवें अक्षर से परं होता है।

ङ. **छन्द**- वृत्त सम, अर्धसम, विषम के भेद से तीन प्रकार का है। वहाँ समवृत्तों के पुनः 26 भेद हैं। समवृत्त छन्दों में कुछ छन्दों का परिचय नीचे प्रस्तुत है।

1. **इन्द्रवज्रा** - त्रिष्टुप छन्द में 11 अक्षर हैं। इसका एक भेद इन्द्रवज्रा होता है। इसका लक्षण है- **''स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः''** इति। जिस छन्द के प्रत्येक पाद में दो तगण, जगण और दो गुरु क्रम से होते हैं वह छन्द इन्द्रवज्रा है। यहाँ पादान्त में यति है। उसका उदाहरण है जैसे-

   ऽ ऽ । ऽ ऽ । । ऽ। ऽ ऽ

   गोष्ठे गि-रिं-सव्य-करेण धृत्वा/

   रुष्टेन्द्रवज्राहतिमुक्तवृष्टौ।/

   यो गोकुलं गोपकुलंच सुस्थं/

   चक्रे स नो रक्षतु चक्रपाणिः।।/इति

   इस श्लोक के चारों चरणों में क्रमशः दो तगण, एक जगण और दो गुरु वर्ण है। इन्द्रवज्रा छन्द का लक्षण होता है। यहाँ सब चरण के अन्त में यति है। इसलिए छन्द के लक्षण में उसका उल्लेख नहीं है।

2. **उपेन्द्रवज्रा**- यह त्रिष्टुप छन्द का एक प्रकार है। उपेन्द्रवज्रा छन्द का लक्षण छन्दोमंजरी में है- **''उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततोगौ''** इति। इन्द्रवज्रा छन्द का प्रथम अक्षर लघु होकर उपेन्द्रवज्रा छन्द होता है। इस प्रकार इन्द्रवज्रा का प्रथम गण तगण है। उसके प्रथम अक्षर का लघु होकर मध्य में गुरु जगण होता है। एवं जिस छन्द के प्रत्येक चरण मे क्रम से जगण,तगण, जगण और दो गुरु वर्ण है वह उपेन्द्रवज्रा छन्द है। यहाँ भी पादान्त में यति है। उसका उदाहरण है जैसे-

ध्यान दें:

। ऽ। ऽ ऽ। । ऽ । ऽ ऽ

उपेन्द्र-वज्रादि-मणिच्छ-टाभिः/

विभूषणानां छुरितं वपुस्ते।/

स्मरामि गोपीभिरुपास्यमानं/

सुरद्रुमूले मणिमण्डपस्थम्।। इति।

यहाँ प्रस्तुत श्लोक में प्रत्येक चरण क्रमशः जगण, तगण, जगण और दो गुरु वर्ण है। एवं उपेन्द्रवज्रा छन्द का लक्षण यहाँ संगत होता है।

3. **रथोद्धता**- त्रिष्टुप् छन्द का कोई भेद रथोद्धता है। उसका लक्षण छन्दोमंजरी में है- **''रान्नराविह रथोद्धता लगौ।''** इति। जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रम से रगण, नगण, रगण, लघु और गुरु होते है। यहाँ पाद के अन्त में यति है। रथोद्धता छन्द का उदाहरण है-

ऽ। ऽ। ।। ऽ। ऽ । ऽ/

एवमाश्रमविरुद्धवृत्तिना/

संयमः किमति जन्मतस्त्वया।/

सत्वसंश्रयसुखो हि दुष्यते/

कृष्णसर्पशिशुनेव चन्दनः।। इति।

प्रकृत श्लोक के प्रत्येक चरणों मे क्रम से रगण, नगण, रगण, लघुवर्ण और गुरुवर्ण है। इस प्रकार रथोद्धता का लक्षण सिद्ध होता है।

4. **वंशस्थविलम्**- बारह अक्षर वाले जगती छन्द का एक प्रकार वंशस्थविलम् है। उसका लक्षण छन्दोमंजरी में है- **''वदन्ति वंशस्थविलं जतौ जरौ''** इति। जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रम से जगण, तगण, जगण और रगण होते है वह वंशस्थविलम् है। यहाँ भी पादान्त में यति है। इस छन्द का उदाहरण है-

। ऽ । ऽ ऽ । । ऽ। ऽ । ऽ/

अयं स ते तिष्ठति संगमोत्सुको/

विशंकसे भीरु यतोऽवधीरणाम्।/

लभेत वा प्रार्थयिता न वा श्रियं/

श्रिया दुरापः कथमीप्सितो भवेत्।।/इति।

श्लोक के प्रत्येक चरण में क्रम से जगण, तगण, जगण और रगण है वहाँ वंशस्थविलम् का लक्षण सिद्ध है।

5. **वसन्ततिलका**- चौदह अक्षर वाले शर्कया का एक प्रकार वसन्ततिलकम् है। वसन्ततिलका इसका नामान्तर है। उसका लक्षण छन्दोमंजरी में है- **''ज्ञेयं वसन्ततिलकं तभजा जगौ गः''**। तभजा तगण, भगण, जगण, जगौ- जगण, गुरुवर्ण गः गुरुवर्ण। जिस छन्द के प्रत्येक चरण में तगण, भगण, दो जगण और दो गुरुवर्ण क्रम से होते है वह वसन्ततिलका है। उसकी यति पाद के अन्त में होती है। उसका उदाहरण है-

ध्यान दें:

ऽ ऽ । ऽ । । । ऽ । । ऽ । ऽ ऽ/

फुल्लं व-सन्तति-लकं ति-लकं व-नाल्या:/

लीलापरं पिककुलं कलमत्र रौति।/

वात्येष पुष्पसुरभिर्मलयाद्रिवातो/

यातो हरि: स मधुरां विधिना हता: स्म:।।/इति।

इसके प्रत्येक चरण में क्रम से तगण, भगण, दो जगण और दो गुरु वर्ण है। अत: वसन्ततिलका छन्द है।

6. **मालिनी** - पन्द्रह अक्षर वाले अतिशर्करी छन्द मालिनी छन्द का एक प्रकार है। मालिनी छन्द का लक्षण है- **''ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकै:''** इति। यह मालिनी ननमयययुता है। अर्थात् जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रम से दो नगण, मगण और दो यगण होते है वह मालिनी छन्द है। भोगि संख्या आठ एवं लोक संख्या सात का बोधक है। इस प्रकार प्रत्येक चरण के पहले आठवें वर्ण पर यति फिर सातवें अक्षर पर चरण के अन्त में एक यति। यहाँ चरण के मध्य में यति होती है। इसका उदाहरण है-

।। । ।।। ऽ ऽ ऽ। ऽ ऽ। ऽ ऽ

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं

मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।

इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी

किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्।। इति।

इसके प्रत्येक चरण में क्रम से दो नगण, दो मगण और दो यगण है। और आठवें वर्ण पर फिर सातवें वर्ण पर यति है। इस प्रकार मालिनी छन्द का लक्षण सिद्ध होता है। इस प्रकार कुछ समवृत्त छन्दों को यहाँ प्रस्तुत किया है।

पाठगत प्रश्न-4

47. छन्दशास्त्र के प्रणेता कौन है?
48. छन्दशास्त्र किस प्रकार का वेदांग है?
49. पद्य का क्या स्वरूप है?
50. पद्य के कौन-से विभाग होते हैं?
51. वृत्त का लक्षण क्या है?
52. वृत्त के कितने विभाग हैं?
53. समवृत्त का स्वरूप क्या है?
54. अर्धसमवृत्त का स्वरूप क्या है?
55. विषमवृत्त का स्वरूप क्या है?

ध्यान दें:

56. पद्य के उपकारक गण कौन-से है?
57. मात्रा छन्द के उपकारक गणों के नाम कौन-से हैं?
58. गणों की स्वरूपबोधिका कारिका को लिखिए।
59. लघु गुरु के व्यवस्था परक श्लोक को लिखिए।
60. यति का लक्षण क्या है?
61. यति कितने प्रकार की है और वे कौन-सी है?
62. यति कहाँ चमत्कार के लिए प्रयोग होती है?
63. यति कहाँ चमत्कार का नाश करती है?
64. इन्द्रवज्रा छन्द का क्या लक्षण है?
65. उपेन्द्रवज्रा छन्द का लक्षण क्या है?
66. रथोद्धता छन्द का लक्षण क्या है?
67. वंशस्थ छन्द का लक्षण क्या है?
68. वसन्ततिलका छन्द का लक्षण क्या है?
69. मालिनी छन्द का लक्षण क्या है?
70. मालिनी छन्द में कहाँ-कहाँ यति है?

पाठ सार

काव्य की आत्मा रस के उपकारत्व से काव्य के उपकारक जो गुण, अलंकार, रीति है उनके स्वरूप को यहाँ प्रस्तुत किया गया है। वहाँ आदि में गुण वर्णित है। जैसे शौर्यादि शरीर के उपकारक है उसी प्रकार माधुर्यादि शब्द अर्थरूपी काव्य की आत्मा रस के उपकारक हैं। गुण तीन प्रकार के है- माधुर्य, ओज और प्रसाद है। वहाँ माधुर्य चित्त की द्रुति का कारण होता है। समास रहित अथवा अल्प समासों से युक्त कटु शब्दों से रहित रचना उसकी अभिव्यक्ति का कारण है। सम्भोग में, करुण में, विप्रलम्भ में और शान्त में माधुर्य गुण क्रम से अधिकतम होता है। इस प्रकार चित्त का विस्तार रूप ओज गुण है। वह ही वीर, बीभत्स, रौद्र रसों में क्रमशः अधिक होता है। दीर्घ समास बहुल रचना इसकी अभिव्यक्ति का कारण है। शुष्क ईंधन के समान जो गुण चित्त को शीघ्र ही व्याप्त कर लेता है वह प्रसाद है। श्रुति मात्र से अर्थबोधक शब्द प्रसाद की अभिव्यक्ति का कारण है।

फिर अवयव के सन्निवेश के समान रीति है। दर्पणकार के मत में रीति तीन प्रकार की है- वैदर्भी, गौडी, पांचाली और लाटी। परन्तु ध्वनिकार के मत में लाटी रीति की अपेक्षा नहीं है। माधुर्य व्यंजक वर्णों से युक्त अल्पसमास अथवा समास रहित जो मधुर रचना है वह वैदर्भी है। ओज का प्रकाशन करने वाले वर्णों से उद्धृत रचना गौड़ी है। यहाँ पांच अथवा छः समस्त पदों को, पूर्व में कही गई दो रीति के अभिव्यञ्जकों को छोड़कर वर्णों से जो रचना है वह पांचाली है। लाटी रीति तो वैदर्भी पांचाली के बाद स्थित है। इस प्रकार रीति का परिचय दिया गया।

फिर कटक कुण्डल के समान अलंकार वर्णित है। अलंकार दो प्रकार के हैं- शब्दालंकार और

ध्यान दें:

अर्थालंकार। वहाँ शब्दालंकारों में अनुप्रास, यमक और वक्रोक्ति और अर्थालंकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, समासोक्ति ये अलंकार यहाँ वर्णित है।

वैयाकरण पाणिनी के मत में अभिप्राय अर्थ के बोधक से अथवा आनन्द पर्याय से छन्द् धातु से छन्द शब्द की उत्पत्ति हुई। पद्य छन्दोबद्ध चार चरण वाला होता है। वहाँ अक्षरगणना वाला पद्य वृत्त और मात्रा गणना वाला पद्य जाति कहलाता है। वसन्त तिलकादि वृत्त पद्य के उदाहरण होते हैं। आर्यादि जाति छन्द के उदाहरण है। वृत्त तीन प्रकार के है- समवृत्त, अर्धसमवृत्त और विषमवृत्त। उनके लक्षणों को कहकर के फिर वृत्त के उपकारक दस गण जाति में और उपकारक पांच गण यहाँ वर्णित है। फिर यति के स्वरूप को वर्णित किया है। यति जिह्वा का विराम स्थल होता है। फिर सानुस्वार और विसर्ग इत्यादि कारिका में छन्दों में लघु गुरु व्यवस्था वर्णित है। फिर समवृत्तों में इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, रथोद्धता, वंशस्थवि, वसन्ततिलका, मालिनी इन छन्दों के स्वरूप को सोदाहरण प्रस्तुत किया। यही पाठ का सार है।

आपने क्या सीखा

- गुण स्वरूप और गुण भेद,
- रीति का स्वरूप और भेद,
- अलंकार स्वरूप और अलंकार भेद,
- कुछ प्रसिद्ध अलंकारों के लक्षण,
- पद्य का स्वरूप और पद्य भेद,
- कुछ छन्दों के लक्षण,

पाठान्त प्रश्न

1. गुण के स्वरूप और गुण के भेदों को वर्णित कीजिए?
2. माधुर्य को सोदाहरण वर्णित कीजिए?
3. ओजगुण को सोदाहरण वर्णित कीजिए?
4. प्रसाद को सोदाहरण वर्णित कीजिए?
5. रीति के स्वरूप और रीति के भेदों को वर्णित कीजिए?
6. वैदर्भी को सोदाहरण वर्णित कीजिए?
7. गौडी को सोदाहरण वर्णित कीजिए?
8. पांचाली को सोदाहरण वर्णित कीजिए?
9. लाटी को सोदाहरण वर्णित कीजिए?
10. अलंकार के स्वरूप को वर्णित कीजिए?
11. शब्दालंकारों में एक अलंकार के लक्षण को कीजिए?

ध्यान दें:

12. अर्थालंकारों में एक अलंकार के लक्षण को कीजिए?
13. अनुप्रास अलंकार को वर्णित कीजिए?
14. वक्रोक्ति को वर्णित कीजिए?
15. यमक को वर्णित कीजिए?
16. उपमा को सोदाहरण वर्णित कीजिए?
17. रूपक को सोदाहरण वर्णित कीजिए?
18. उत्प्रेक्षा को सोदाहरण वर्णित कीजिए?
19. समासोक्ति को सोदाहरण वर्णित कीजिए?
20. दृष्टान्त को सोदाहरण वर्णित कीजिए?
21. पद्य के स्वरूप और पद्य के भेदों को वर्णित कीजिए?
22. वृत्त के स्वरूप और वृत्त के भेदों को वर्णित कीजिए?
23. यति के स्वरूप को वर्णित कीजिए?
24. श्लोक में लघु गुरु व्यवस्था को वर्णित कीजिए?
25. वृत्त के और जाति के गणों को वर्णित कीजिए?
26. इन्द्रवज्रा को सोदाहरण वर्णित कीजिए?
27. उपेन्द्रवज्रा को सोदाहरण वर्णित कीजिए?
28. रथोद्धता को सोदाहरण वर्णित कीजिए?
29. वसन्ततिलका को सोदाहरण वर्णित कीजिए?
30. मालिनी को सोदाहरण वर्णित कीजिए?
31. गुण किस प्रकार के होते है?

    क. शौर्यादि के समान ख. अवयवसंस्थानविशेष के जैसे ग. कटककुण्डल के समान।
32. सबसे अधिक माधुर्य कहाँ होता है-

    क. सम्भोग में ख. करुण में ग. वीर में।
33. ओज गुण का सभी की अपेक्षा आधिक्य कहाँ है-

    क. वीर में ख. बीभत्स में ग. रौद्र में घ. शृंगार में।
34. ध्वनिकार के मत में कौन-सी रीति नहीं है?

    क. गौडी ख. पांचाली ग. लाटिका घ. वैदर्भी।
35. रूपक कितने प्रकार के है?

    क. एक प्रकार के ख. दो प्रकार के ग. तीन प्रकार के घ. चार प्रकार के।

ध्यान दें:

36. वृत्त किस प्रकार का है?

क. अक्षरसंख्यातम् ख. वाक्यसंख्यातम् ग. पदसंख्यातम्।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

उत्तर-1

1. काव्य के उत्कर्ष के हेतु गुण, अलंकार, रीति होते हैं।
2. गुणादि काव्य की आत्मा रस के उपकारक हैं।
3. गुण का स्वरूप दर्पण में है-'रसस्यांगित्वमाप्तस्य धर्माः शौर्यादयो यथा। गुणाः' इति।
4. तीन गुणों के भेद माधुर्य, ओज, प्रसाद है।
5. माधुर्य का लक्षण है- **''चित्तद्रवीभावमयो ह्लादो माधुर्यमुच्यते।''** इति।
6. रेफ डकारादिश्रुति कटुवर्णो से रहित, वर्ग के अन्तिम वर्ण सहित, समास रहित और अल्प समास वाली मधुर रचना माधुर्य की अभिव्यक्ति का कारण है।
7. सम्भोग में करुण में विप्रलम्भ में और शान्त में माधुर्य गुण क्रमशः अधिकता से होता है।
8. माधुर्य का एक उदाहरण है-

   अनंगमंगलभुवस्तदपांगस्य भंङ्गयः।
   जनयन्ति मुहूर्यूनामन्तः सन्तापसन्ततिम्॥ इति।
9. ओज का लक्षण है- **''ओजश्चित्तस्य विस्ताररूपं दीप्तत्वमुच्यते।''** इति।
10. ओज की अभिव्यक्ति श्रुतिकटुवर्ण सहित, बड़े समास से युक्त महाप्राण वर्णों से युक्त रचना कारण है।
11. वीर बीभत्स रौद्र रसों में क्रमशः ओज गुण की अधिकता होती है।
12. ओज का एक उदाहरण है-

    चंचद्भजभ्रमितचण्डगदाभिघात-
    संचूर्णितोरुयुगलस्य सुयोधनस्य।
    स्तयानावनद्धघनशोणितशोणपाणि-
    रुत्तंसयिष्यति कचांस्तव देवि भीमः॥
13. प्रसाद का लक्षण है-

    'चित्तं व्यापनोति यः क्षिप्रं शुष्केन्धनमिवानलः।
    स प्रसादः समस्तेषु रसेषु रचनासु च॥'
14. श्रुतिमात्र से अर्थबोधक शब्द प्रसाद की अभिव्यक्ति का कारण है।
15. प्रसाद का एक उदाहरण है-

    सूचीमुखेन सकृदेव कृतव्रणस्त्वं
    मुक्ताकलाप लुठसि स्तनयोः प्रियायाः।
    बाणैः स्मरस्य शतशो विनिकृत्तमर्मा

ध्यान दें:

स्वप्नेऽपि तां कथमहं न विलोकयामि॥ इति।

उत्तर-2

16. शरीर में यथास्थान अवयवों का संगठन के समान शब्द अर्थ से युक्त काव्य रूपी शरीर में माधुर्यादि गुण व्यंजन वर्णों के सन्निवेश से रीति होती है, वह परम्परा के द्वारा रसादि की पोषिका होती है।

17. दर्पणकार के अनुसार रीति के चार भेद है- वैदर्भी, गौडी, पांचाली और लाटी।

18. वैदर्भी रीति का लक्षण है-

''माधुर्यव्यंजकैर्वर्णैः रचना ललितात्मिका।
अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते॥'' इति।

19. वैदर्भी रीति का उदाहरण है-

लताकुंजं गुंजन् मदवदलिपुंज चपलयन्
समालिंगन्नंगं द्रुततरमनंगं प्रबलयन्।
मरुन्मन्दं मन्दं दलितमरविन्दं तरलयन्
रजोवृन्दं विन्दन् किरति मकरन्दं दिशि दिशि। इति।

20. गौडी रीति का लक्षण है-

''ओजःप्रकाशकैर्वर्णैर्बन्ध आडम्बरः पुनः। समासबहुला गौडी'' इति।

21. गौडी रीति का एक उदाहरण है-

विकचकमलगन्धैरन्धयन् भृंगमालाः
सुरभितमकरन्दं मन्दमावाति वातः।
प्रमदमदनमाद्यद्यौवनोद्दामरामा-
रमणरभसखेदस्वेदविच्छेददक्षः॥ इति।

22. पांचाली रीति का लक्षण है-

''वर्णैः शेषैः पुनर्द्वयोः। समस्तपंचषपदो बन्धः पांचालिका मता।'' इति।

23. पांचाली रीति का उदाहरण है-

मधुरया मधुबोधितमाधवींसमृद्धिसमेधितमेधया।
मधुकरांगनया मुहुरुन्मदध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे॥ इति।

24. लाटिका रीति का लक्षण है-

''लाटी तु रीतिर्वैदर्भीपांचाल्योरन्तरे स्थिता।'' इति।

25. लाटिका रीति का उदाहरण है-

अयमुदयति मुद्राभंजनः पद्मिनीनाम्
उदयगिरवनालीबालमन्दारपुष्पम्।
विरहविधुरकोकद्वन्द्वबन्धुर्विभिन्दन्
कुपितकपिकपोलक्रोडताम्रस्तमांसि॥ इति।

26. लाटी रीति ध्वन्यालोककारादि आनन्दवर्धनादि के मत में नहीं है।

ध्यान दें:

उत्तर-3

27. अलंकार का लक्षण है-

''शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्माः शोभातिशायिनः।
रसादीनुपकुर्वन्तोऽलंकारास्तेऽंगदादिवत्॥'' इति।

28. अलंकार दो प्रकार के हैं- शब्दालंकार और अर्थालंकार।

29. अनुप्रास का लक्षण है-

''अनुप्रासः शब्दसाम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्य यत्।'' इति।

30. अनुप्रास के पांच भेद है। छेकानुप्रास, वृत्त्यनुप्रास, श्रुत्युनप्रास, अन्त्यानुप्रास और लाटानुप्रास।

31. यमक का लक्षण है-

''सत्यर्थे पृथगर्थायाः स्वरव्यंजनसंहतेः।
क्रमेण तेनैवावृत्तिःर्यमकं विनिगद्यते॥'' इति।

32. यमक का उदाहरण है-

''नवपलाश-पलाश-वनं पुरः स्फुटपराग-परागत-पंकजम्।
मृदुल-तान्त-लतान्तमलोकयत् स सुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः॥ इति।

33. स्वर व्यंजन का समूह कहीं अर्थवान कहीं निरर्थक होता है। उसे ही प्रतिपादित करने के लिए लक्षण में सत्यर्थे इस पद को प्रयुक्त किया।

34. वक्रोक्ति का लक्षण है-

''अन्यस्यान्यार्थकं वाक्यमन्यथा योजयेद्याद यदि।
अन्यः श्लेषेण काक्वा वा सा वक्रोक्तिस्ततो द्विधा॥'' इति।

35. वक्रोक्ति के दो भेद है- श्लेष वक्रोक्ति और काकु वक्रोक्ति।

36. सादृश्यमूलक अलंकार की जननी उपमा है।

37. उपमा का लक्षण है-

''साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्यम् उपमा द्वयोः।'' इति

38. उपमा प्रधान रूप से दो प्रकार की है- पूर्णोपमा और लुप्तोपमा।

39. पूर्णोपमा के अंशचतुष्टय है- उपमान, उपमेय, सादृश्यवाचक और साधारणधर्म।

40. रूपक का लक्षण है-

''रूपकं रूपितारोपाद्विषये निरपह्नवे।'' इति।

41. रूपक के तीन भेद है- परम्परित, निरंग और सांग।

42. उत्प्रेक्षा अलंकार का लक्षण है-

''भवेत्सम्भावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना।'' इति।

43. दृष्टान्त का लक्षण है-

''दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बनम्॥'' इति।

ध्यान दें:

44. दृष्टान्त का उदाहरण है-

''अविदितगुणापि सत्कविभणितिः कर्णेषु वमति मधुधाराम्।
अनधिगतपरिमलापि हि हरति दृशं मालतीमाला॥'' इति।

45. प्रणिधानगम्यम् का नाम प्रतिबिम्बन है।

46. समासोक्ति का लक्षण है-

''अनुप्रासः शब्दसाम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्य यत्।'' इति।

उत्तर-4

47. छन्द शास्त्र के प्रणेता पिंगलाचार्य है।

48. छन्द पादरूप वेदांग है।

49. पद्य चतुष्पादात्मक होते हैं।

50. पद्य के दो विभाग है वृत्त और जाति।

51. वृत्त का लक्षण है-''वृत्तमक्षरसंख्यातम्।

52. वृत्त के तीन विभाग है- समवृत्त, अर्धसमवृत्त और विषमवृत्त।

53. समवृत्त का स्वरूप है- **''समं समचतुष्पादम्''** इति।

54. जिस वृत्त का प्रथम पाद तृतीयपाद के तुल्य, चतुर्थपाद द्वितीय पाद के तुल्य हो वह अर्धसमवृत्त है।

55. जिस वृत्त के चारों पाद भिन्नाक्षर विशिष्ट होते हैं वह विषम वृत्त है।

56. पद्य उपकारक है- मगण, यगण, रगण, सगण, तगण, जगण, भगण, नगण, गगण, लगण ये दश गण है।

57. मात्रा छन्द के उपकारक गण है- सर्वगुरु, अन्तगुरु, मध्यगुरु, आदिगुरु और सर्वलघु।

58. गणों की स्वरूपबोधिका कारिका है-

''मस्त्रिगुरुस्त्रिलघुश्च नकारो भादिगुरुः पुनरादिलघुर्यः।
जो गुरुमध्यगतो रलमध्यः सोऽन्तगुरुः कथितोऽन्तलघुस्तः॥
गुरुरेको गकारस्तु लकारो लघुरेककः।'' इति।

59. लघुगुरु का व्यवस्थापरक श्लोक है-

''सानुस्वारश्च दीर्घश्च विसर्गी च गुरुर्भवेत्।
वर्णः संयोगपूर्वश्च तथा पादान्तगोऽपि वा॥'' इति

60. यति का लक्षण है- **'यतिर्जिह्वेष्टविरामस्थानम्'।**

61. यति दो प्रकार की है- पाद के मध्य में यति और पाद के अन्त में यति।

62. पदान्त में यति चमत्कार के लिए होती है

63. पद के मध्य में यति चमत्कार का नाश करती है।

64. इन्द्रवज्रा छन्द का लक्षण है-**'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः।'**

ध्यान दें:

65. उपेन्द्रवज्रा छन्द का लक्षण है- **'उपेन्द्रवज्रा प्रथमे लघौ सा।' / जतजास्ततोगौ**

66. रथोद्धता छन्द का लक्षण है- **'रात्पैर्नरलगै रथोद्धता।'**

67. वंशस्थ छन्द का लक्षण है- **'वदन्ति वंशस्थविलं जतौ जरौ।'**

68. वसन्ततिलका छन्द का लक्षण है- **'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः।'**

69. मालिनी छन्द का लक्षण है- **'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः।'**

70. मालिनी छन्द में आठवें अक्षर फिर सातवें अक्षर पर चरण के अन्त पर यति है।

ध्यान दें:

11

काव्य के प्रकार

संस्कृत साहित्य का भण्डार सागर तुल्य है। हमारे संस्कृत वाङ्मय में बहुत सी विधाओं में कवि का कर्म परिलक्षित होता हैं। परन्तु कवि की कृति कैसी है उस विषय में सम्यक् परिचय नहीं होता। कहीं केवल गद्यरूप, कहीं गद्य-पद्य रूप, अथवा कहीं केवल पद्यमय रूप दिखाई देता है। इसलिए पाठक के मन में संशय होता है। इसलिए इस पाठ में छात्रों की सुगमता के लिए काव्य भेद को सरल रीति से प्रतिपादित किया गया है। किस प्रकार का काव्य किस विधा से कहा जाता है वह यहाँ आलोचित किया गया है। काव्यों के दलभेद होते हैं। सरल उपायों से उनका पृथक्करण भी होता है। विचित्रता ही मनुष्यों का स्वभाव है, इसलिए कवियों ने अपनी प्रतिभा से अपने कर्मों में विचित्रता का प्रतिपादन किया है। उनके ही वैचित्र्यों की अलग अलग मुख्य रूप से यहाँ आलोचना की गई है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप समर्थ होंगे;

- काव्य के प्रकारों को जानने में;
- काव्य के अभिधान को जानने में;
- काव्यभेद के प्रयोजन को जानने में;
- काव्य भेद में कारण को जानने में;
- काव्यकर्तृ के विषय में जाने पाने में;
- विविध काव्यों के विषय में जान पाने में;
- दृश्यकाव्यादि के स्वरूप को जानने में;

11.1) भूमिका

साधारणत: काव्य वस्तुओं के चार आश्रयभूत पुराण, इतिहास, जनश्रुति और कविकल्पना है। जिन्हें

ध्यान दें:

निश्चय ही पौराणिक कथा का आश्रय लेकर निबद्ध किया जाए वे पौराणिक काव्य, और जिन्हें ऐतिहासिक आधार से निबद्ध किया जाए वे ऐतिहासिक और जिन्हें जन श्रुति के आधार से रचा जाए वे जन श्रुति काव्य, और जिन्हें कवि कल्पना के आधार से रचा जाए वे काल्पनिक काव्य होते हैं। हालाँकि पौराणिकादि काव्य में भी कल्पना की प्रधानता होती है फिर भी इनकी गणना कथा वस्तु मात्र आधार से है। और समालोचकों के द्वारा उनके पुन: स्वरूप से देवकाव्य-यमककाव्य-श्लेषकाव्यादि भेदों के भी बहुत से भेद किए गए है।

पौराणिक काव्यों में पाणिनी का जाम्बवतीविजय, व्याडि का बालचरित, कात्यायन का स्वर्गारोहण, पतंजलि का महानन्दमय, कालिदास का रघुवंशम् और कुमारसम्भव, कुमारदास का जानकी हरण, भारवि का किरातार्जुनीयम्, बाण का हर्षचरित, भट्टिकवि का रावणवध, माघ का शिशुपालवध, श्री हर्ष का नैषधीयचरित आदि है।

ऐतिहासिक काव्यों में वाक्पतिराज का गौडवधम् (गउडवहो), शिवस्वामी का कप्फणाभ्युदय, पद्मगुप्त का नवसहसांक चरित, बिल्हण का विक्रमांकदेवचरित, कल्हण की राजतरंगिणी, जल्हण का सोमपाल विजय, हेमचन्द्र का कुमारपालचरित, सोमेश्वर का कीर्तिकौमुदी काव्य, अरिसिंह का सुकृतकीर्तनम्, बालचन्द्र का वसन्तविलास, नयनचन्द्र का हम्मीरमहाकाव्य, चन्द्रशेखर का सुर्जनचरित, राजनाथ का अच्युतराजाभ्युदय, गंगा देवी का मधुराविजय अथवा वीरकम्परायचरित, सन्ध्याकरनन्दिन का रामपालचरित, जयानक कवि का पृथ्वीराजविजयम्, शम्भुकवि का राष्ट्रौढ़वंशमहाकाव्य, यज्ञनारायण का रघुनाथभुपविजय, परमेश्वरशिवद्विज का श्रीरामवर्ममहाराजचरित, शंकरलाल का रावजीराजकीर्तिविलास, नागराज का भारतीयदेश्ज्ञभक्तचरित, दिलीपदत्त का मथुराप्रसाद का प्रतापविजयम्, द्विजेन्द्रनाथ का स्वराजविजयम् सत्यव्रत का गोविन्दसिंह महाकाव्य इत्यादि प्रसिद्धों का उल्लेख हैं।

जनश्रुतिमूल काव्यों में प्राय: गद्य साहित्य ही दिखाई देता है। उनमें सुबन्धु का वासवदत्ता, बाण की कादम्बरी, और दण्डी का दशकुमारचरित इत्यादि प्रसिद्ध है। इस प्रकार से ही गुणाढय की बृहत्कथा, सोमेश्वर की कथासरितसागर और क्षेमेन्द्र की बृहत्कथामंजरी है।

कल्पनामूल में मेघदूत-ऋतुसंहार आदि लघुकाव्य ही दिखाई देते है।

11.2) स्वरूप के अनुसार काव्य के भेद

संसार में जो काव्य प्राप्त होते है उनमें अपनी अपनी विशेषता से काव्य भेदों में अपनी अपनी कोटि में उनका अन्तर्भाव होता है। काव्य की बहुत सी विधा होती हैं। उनके भेद नीचे बताए गए हैं। काव्य की बहुत विधाएं हैं, फिर भी स्वरूप के अनुसार मूलत: काव्य के दो भेद है। और वह है श्रव्यकाव्य और दृश्यकाव्य।

11.3) श्रव्यकाव्य

जिस काव्य का रसास्वादन अन्य के द्वारा सुनकर अथवा स्वयं पढ़कर के होता है वह काव्य श्रव्यकाव्य कहलाता है। जैसे- रामायण, महाभारत इत्यादि। श्रव्यकाव्य के भी बहुत से भेद हैं। वे क्रमश: कहे गए हैं।

ध्यान दें:

11.3.1) महाकाव्य

महाकाव्य सर्गो में निबद्ध है। उसमें आठ से अधिक सर्ग अवश्य ही होने चाहिए। महाकाव्य में धीरोदात्त आदि गुणों से युक्त नायक होता है। शृंगार, वीर, शान्त, करुण रसों में एक रस मुख्य होता है तथा अन्य रस उसके अंगभूत होते हैं। काव्य का उपजीव्य ऐतिहासिक अथवा सज्जनाश्रित होता है। महाकाव्य का फल चतुर्वर्गों में से एक होता है। लज्जा युक्त विषयों का महाकाव्य में वर्णन नहीं करना चाहिए। महाकाव्य का उदाहरण है जैसे रघुवंशम, कुमारसम्भवम् इत्यादि।

11.3.2) शास्त्रकाव्य

पद प्रयोग के व्याकरण नियमों के ज्ञान के लिए अन्य शास्त्रीय ज्ञान की सुलभता के लिए जिन काव्यों को रचा गया है वे शास्त्रकाव्य कहलाते हैं। कुछ शास्त्र काव्यों को नीचे बताया गया है।

भट्टिस्वामी का भट्टिकाव्य

प्रसिद्ध शास्त्र काव्यों में भट्टिकाव्य एक है। इस काव्य के विषय में कहते है **'दीपतुल्यः प्रबन्धोऽयं शब्दलक्षणचक्षुषाम्'** इति।

यह काव्य भट्टिस्वामी द्वारा रचा गया है। उस नाम से ही इसकी प्रसिद्धि भी हुई। इस काव्य को रावणवध नाम से भी कहते हैं।

इस काव्य में बाईस सर्ग है जिनमें 1329 श्लोक विद्यमान है। इस काव्य के निर्माण का उद्देश्य मनोविनोद के साथ संस्कृत व्याकरण का ज्ञान है। यह उद्देश्य पूर्ण भी होता है।

भट्टभीम का रावणार्जुनीयम्

इस रावणार्जुनीय नामक काव्य में अष्टाध्यायी सूत्रपाठ क्रम से पदों के निदर्शन के लिए यह शास्त्रकाव्यों में से एक माना जाता है। 'सुवृत्ततिलकम्' नामक अपने ग्रन्थ में क्षेमेन्द्र के द्वारा शास्त्रकाव्य के उदाहरण के लिए भट्टिकाव्य के साथ रावणार्जुनीयम् भी निर्दिष्ट है।

क्योंकि क्षेमेन्द्र अपने ग्रन्थ में सुवृत्ततिलक में रावणार्जुनीयम् शास्त्रकाव्य को निर्दिष्ट करता है, इसलिए रावणार्जुनीयम् के प्रणेता भट्टभीम का समय ग्यारहवीं शताब्दी से पूर्व का सिद्ध होता है।

वासुदेव का वासुदेवविजयम्

केरल में जन्में वासुदेव का वासुदेविजयम् नामक काव्य अपूर्ण ही है। वासुदेव के द्वारा अपूर्ण ही निर्मित किया गया, जिसकी पूर्ति केरलवासी नारायण के द्वारा ही तीन सर्गो में धातुकाव्य निर्माण के लिए किया। यहाँ धातुओं के प्रयोग भेद को देखकर कंसवधवृत्तान्त वर्णित है। इसका समय निश्चित रूप से नहीं कह सकते।

हेमचन्द्र का कुमारपालचरितम्।

यह काव्य ऐतिहासिक काव्य के निर्देश प्रकरण में वर्णित शास्त्रकाव्य भी है, क्योंकि इसमें 20 सर्गों में संस्कृत व्याकरण नियमों को, आठ सर्गों में प्राकृत व्याकरण नियमों को किया।

ध्यान दें:

चिरंजीवभट्टाचार्य का विद्वन्मोदतरंगिणीकाव्यम्।

किसी वंगदेश में उत्पन्न उन्नीसवीं शताब्दी से पूर्व चिरंजीव भट्टाचार्य विद्वान ने इस काव्य को कथोपकथन रूप से सम्पूर्ण दर्शन मत के प्रतिपादन के लिए रचा। यह ग्रन्थ सरस पद विन्यास के लिए हृदयाकर्षक है। प्रत्यक्षमात्र प्रमाण के प्रति कवि ने यह उक्ति अत्यन्त सरलता और सरसता से कही-

''भवादृशे दूसविदेशमागते चरन्तु वैधव्यविधानमंगनाः।'' इति।

11.3.3) देवकाव्य

जैसे शास्त्र काव्यों को शास्त्रीय तत्वों के प्रख्यात विद्वानों के द्वारा रचा गया, वैसे ही प्रधानरूप से देवताओं की कीर्ति को गाने के लिए जिन काव्यों को रचा वे देव काव्य कहलाते हैं। माघ, कुमार सम्भवादि जैसे कवित्व प्रदर्शन के लिए रचे गए प्रतीत होते हैं न कि देवताओं की कीर्ति को वर्णित करने के लिए। इसलिए वे देवकाव्य नहीं है। देवकाव्यों में देवकीर्ति की प्रधानता होती है। यहाँ प्रकरण में उस प्रकार के ही कुछ काव्यों का परिचय दिया गया है।

क्रम	देवकाव्य	कर्तार:	काव्य के विषय
1	भिक्षाटनकाव्यम्	उत्प्रेक्षावल्लभगोकुलनाथ:	यहाँ शृंगारिक पद्धति के द्वारा भिक्षुरूप शिव का चित्रण किया गया है।
2	शिवलीलार्णव:	नीलकण्ठदीक्षित:	यहाँ 22 सर्गों में मदुरा स्थित सुरेन्द्रनाथ शिव की 64 प्रसिद्ध लीलाओं का वर्णन है
3	हरिचरितचिन्तामणि:	जयद्रथ:	यहाँ शिव की महिमा वर्णित है। यहाँ अनुष्टुप् छन्द है।
4	हरिविलासकाव्यम्	लोलिम्बराज:	यहाँ श्री कृष्ण की बाल लीलाओं का सरस शृंगारिक वर्णन किया गया है।
5	यादवाभ्युदयम्	वेदान्तदेशिक:	यहाँ श्री कृष्ण की जीवन कथा और महिमा को वर्णित किया गया है।

11.3.4) खण्ड काव्य

परिचय- महाकाव्य के एक देशानुसार खण्ड काव्य होता है। महाकाव्य में केवल एक का अथवा एक से अधिक नायक नायिकाओं का सम्पूर्ण जीवन ही चित्रित होता है। खण्ड काव्य में उसका एक देश ही चित्रित होता है। उससे खण्ड काव्य वस्तुत: लघु काव्य ही है। क्योंकि महा काव्य में जहाँ जीवन की समग्रता का प्रसार है वहाँ खण्डकाव्य में जीवन के एक ही पक्ष की तन्मयता होती है। उससे ही खण्डकाव्य बिना कारण और प्रकार से महाकाव्य से छोटा ही होता है। और महाकाव्य में भी जीवन के एक से अधिक पक्ष को भी प्रस्तुत कर सकते है, खण्डकाव्य में तो एक ही पक्ष उन्नत होता है। विस्तृत आकार वाले महाकाव्य से छोटे आकार वाला ही खण्ड काव्य है।

खण्डकाव्य मुख्यत: चार प्रकार का दिखाई देता है शृंगारिक, धार्मिक, नैतिक और सांग्रहिक। प्रथम

ध्यान दें:

भेद भी गीति-प्रस्तुति-स्फुट भेद से तीन प्रकार का है। द्वितीय स्तुतिकाव्य ही है। तृतीय नीतिपरक है (उसे ही उपदेश परक कहते हैं) और अन्योक्तिरूप। चतुर्थ भेद संग्रहपरक है सुभाषित संग्रह और कोश इसके भेद हैं। और कहीं सभी पक्षों का मिश्रण भी दिखाई देता है।

खण्डकाव्य की उत्पत्ति- यद्यपि लौकिक साहित्य में खण्डकाव्य का उद्घाटन कालिदास ने ही किया फिर भी यह उससे प्राचीनतम सिद्ध होता है। ऋग्वेदादि में भी खण्डकाव्य का स्वरूप उपलब्ध होता है। कमनीय अर्थ का द्योतक वाक्य ही काव्य होता है। वाक्यौघः अर्थात् वाक्यराशि काव्य होती है, एक वाक्य भी काव्य होता है यदि वह कमनीय अर्थ का प्रकाशन करता है। ऋग्वेदादि में इस प्रकार के वचनों का निश्चय ही काव्यत्व है। जैसे उषस् सूक्त, विपाशाशुतुद्री सूक्त, सुदासविजय सूक्त और भूमि सूक्त इत्यादि सूक्त है।

हंसराज आदि समालोचक खण्डकाव्य को पांच प्रकार का मानते है सूक्तमय, भक्तिरसमय, ऐतिहासिक, रूपकान्तर्गत और संकीर्ण। उनमें से वेदों में केवल सूक्तमय उपलब्ध है जैसे- उषस् सूक्त, भक्तिरसमय जैसे उपनिषदों में और बौद्धग्रन्थों में, जैसे ऐतिहासिक रामायण में महाभारत में प्रस्तुत प्रकृत प्रकृतिवर्णन, रूपकान्तर्गत जैसे रूपकान्त रूप से स्थापित पद्य और संकीर्ण शृंगार प्रधान मेघदूतादि है।

11.3.5) यमक काव्य

जैसे शास्त्रकाव्य और देवकाव्य अलग वर्गभेद में स्थापित है वैसे ही यमक काव्य और श्लेषकाव्य भी अलग वर्ग योग्य है। पहले यमक काव्य को फिर श्लेष काव्य को देखते हैं।

यमक बहुत विधाओं रीति ग्रन्थों में दिखाई देता है। दण्डी ने अपने काव्यादर्श में यमक का विस्तार से वर्णन किया है। दण्डी का द्विसन्धान नामक कोई काव्य भी उसी प्रकार का स्मरण है।

घटखर्पर का यमक काव्य

घटखर्पर का वास्तविक नाम स्मरण नहीं, उन्होंने केवल

आलम्ब्य चाम्बुतृषितः करकोशपेयं भावानुरक्तवनितासुरतैः शपेयम्।

जीयेय येन कविना यमकेन तेन तस्मै वहेयमुदकं घटखर्परेण।।

ऐसी प्रतिज्ञा की, तब से उनकी घटखर्पर संज्ञा ही हो गई।

यह यमक काव्य केवल 22 श्लोंको में पूर्ण है। इसको कालिदास प्रणीत जो मानते हैं वे भ्रमित हैं। इस ग्रन्थ की आठ टीकाएँ उपलब्ध है। इसके रचनाकाल का निर्धारण नहीं कर सकते।

नीतिवर्मन का कीचकवधकाव्यम्

इसके रचयिता पूर्व भारत वासी कोई कवि प्रतीत होते हैं। यहाँ पांच सर्ग, और 177 श्लोक हैं। पहले चार सर्गों में यमक का चमत्कार हृदयग्राही है।

वासुदेव का नलोदयकाव्यम्

केरल देशवासी वासुदेव के द्वारा रचित नलोदय काव्य यमक काव्यों में प्रसिद्ध है। यहाँ चार सर्गों में 217 श्लोक निबद्ध है। कवि ने यमकमय युधिष्ठिरविजयोदय नामक काव्य भी रचा। यह वासुदेव

ध्यान दें:

कुलशेखरवर्मा के समकालीन दशम् शताब्दी में उत्पन्न हुए । नलोदयकाव्य का यमक अत्यन्त रमणीय है। एक उदाहरण देखें-

'योजनि ना गोपीतश्चचार यो वल्लवांगनागोपीतः।
भूर्येना गोपीतः कंसारेर्द्वेषमेव योनागोपीतः॥''

11.3.5) श्लेष काव्य

सन्ध्याकरनन्दिनो 'रामचरितम्'

यह सन्ध्याकरनन्दी वंग देश में पुण्ड्रवर्धन में पिनाकिनन्दिन के पुत्र और प्रजापतिनन्दिन के पौत्र है। इसकी पूर्ति कवियों के द्वारा ग्यारहवीं शताब्दी के अन्त में उत्पन्न राजा मदनपाल के समय में इसका समय निश्चित किया। यहाँ काव्य में पालवंश में उत्पन्न रामपाल का और भगवान राम का वर्णन श्लेष भाषा में किया है। वंगदेश के मध्ययुगीन इतिहास को जानने के लिए काव्य उत्तम साधन है।

धनंजय का **'राघवपाण्डवीयम्'**

इस कवि का समय 1123-1140 शताब्दी मानते हैं। यहाँ 18 सर्गों में रामायण महाभारत की कथा अत्यन्त चतुरता से निबद्ध की गई है।

इस प्रकार के अन्य काव्य है-

ग्रन्थ	कर्ता	समय
राघवपाण्डवीयम्	कविराजमाधवभट्टः	बारहवीं शताब्दी उत्तर भाग
राघवनैषधीयम्	हरदत्तसुरिः	अट्ठारहवीं शताब्दी
पार्वतीरुक्मिणीयम्	विद्यामाधवः	बारहवीं शताब्दी का मध्य भाग
यादवराघवीयम्	वेंकटाध्वरी	सत्रहवीं शताब्दी
राघवपाण्डवयादवीयम्	चिदम्बरकविः	1586-1714 ई.
रामकृष्णविलोमकाव्यम्	दैवज्ञसूर्यः	16वीं शताब्दी पूर्वार्ध

पाठगत प्रश्न-1

1. ऐतिहासिक काव्यों का उदाहरण क्या है?
2. पाणिनी का जाम्बवती विजय किस प्रकार का काव्य है?
3. महाकाव्य में कितने सर्ग अवश्य ही होने चाहिए?
4. भट्टिकाव्य किस प्रकार का काव्य है?
5. रावणार्जुनीयं किसके द्वारा रचा गया?
6. यमक काव्य का एक उदाहरण दीजिए?

ध्यान दें:

7. सन्ध्याकरनन्दि का रामचरित किस प्रकार का काव्य है?

8. यादवराघवीय काव्य का रचनाकाल क्या है?

11.4) दृश्यकाव्य

जिस काव्य का रसास्वादन काव्य के अभिनय दर्शन से और अभिनेता के वार्तालाप के श्रवण से होता है वह काव्य दृश्यकाव्य कहलाता है। जैसे अभिज्ञानशाकुन्तलम्। दृश्य काव्य के दो भेद हैं। रूपक और उपरूपक।

11.4.1) रूपक

कवि अपनी प्रतिभा के द्वारा काव्य के अभिनय के लिए जब कल्पना करते हैं तब वह काव्य रूपक कहलाता है। रूपक के दस प्रकार हैं। वे क्रमशः नीचे बताए जाएंगे। संस्कृत साहित्य जगत में अन्य साहित्य के समान ही रूपक साहित्य भी सुसमृद्ध है। उसकी अपनी एक विशेष परम्परा है। लोकप्रियता की दृष्टि से काव्य में रूपक साहित्य का प्रथम स्थान है। उसके केवल तीन ही अंग नाट्य, नृत्य, नृत्त वैदिक युग से पहले भी अस्तित्व में थे ऐसा वेद साहित्य से सिद्ध ही होता है। ऋग्वेद में उषा नर्तकी के रूप में चित्रित है। जैसे-

''अधि पेशांसि वपते नृतूरिवापोर्णते वक्ष उस्रेव वर्जहम्।
ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वती गावो न व्रजं व्युषा आवर्तमः॥'' (ऋ.1।92।4)

इस प्रकार वहाँ नाट्य तत्वों में मुख्यतम कथोपकथन भी दिखाई देता है जैसे पुरुरवाउर्वशी संवाद सूक्त में, यमयमी सूक्त में और इन्द्रेन्द्राणीदृषाकपिसंवाद में। कात्यायन श्रौतसूत्र में सोमपान अवसर पर अभिनय का प्रसंग भी आता है। जैसे- 'अपोर्णुते दीक्षितः शिरः' (ऋ 7.8.25) इति। यजुर्वेद में केवल नृत्त गीत के लिए एवं सूतशैलूषादि का उल्लेख दिखाई देता है। जैसे-

'नृत्ताय सूतं गीताय शैलूषं (30।6)।

शब्दायाडम्बराघातं महसे वीणावादं (30।19)।

नमयि पुंश्वलूं हसाय कारिं (30।20)।

इस प्रकार ही वैदिककाल में बोया नाट्यबीज रामायणकाल में सम्यक् रूप् से फैला दिखाई देता है। तब नाट्य नृत्त और गान जीवन के अनिवार्य अंग के रूप में ग्रहण किए दिखाई देते है वैसे ही अभिनय भी। वहाँ नट नर्तक आदि संघ का भी उल्लेख दिखाई देता है। जैसे-

'नटनर्तकसंघानां गायकानां च गायताम्।
यतः कर्णसुखा वाचः शुश्राव जनता ततः॥''

महाभारत और रामायण में कौबेरः और रंभाभिसार दो नाटक का नामोल्लेख दिखाई देता है। हरिवंश में वसुदेव यज्ञ के प्रसंग में भद्राख्य नट का नाट्य प्रदर्शन स्मरण है।

विनयपिटक में रंगशाला का उल्लेख चुल्लवग्गकथा प्रसंग में दिखाई देता है। पतंजलि महाभाष्य में भी कंसवध, बालिवध दो नाटक स्मरण है। शुंग काल से तो नाट्य युग ही प्रवृत्त होता दिखाई देता

ध्यान दें:

है। संस्कृत नाटक साहित्य की उत्पत्ति को लेकर पण्डितों में विविध मत है। उनके अनुसार अनुकरण की प्रवृत्ति ही नाटक का मूलाधार है। अनुकरण की प्रवृत्ति तो मनुष्य की सभी प्रवृत्तियों में मूर्धन्य है। विशेषत: बालकों में यह प्रवृत्ति प्रौढ़ की अपेक्षा विशिष्ट है। यह प्रवृत्ति ही क्रमश: अभिनय के बाद और नाट्य की उत्पत्ति में होती है। प्रथम तो यह प्रवृत्ति वीर पूजा में मूर्त रूप से दिखाई देती है। स्वर्ग गए वीर पुरुषों की स्मृति में उनके प्रति सम्मान प्रदर्शन के लिए समय-समय पर सामूहिक महोत्सव का आयोजन होता है। वे केवल समाज शब्द से व्यपदिष्ट है। उस प्रकार से ही समाज में श्रद्धेय वीरचरित का कुशल अभिनय के द्वारा अनुकरण करते हैं। रामलीला और कृष्णलीला इसका एक उदाहरण है। वहाँ प्रकृतिक परिवर्तनों को मूर्त से उपस्थापन की प्रवृत्ति भी नाट्य की उत्पत्ति में सहायक थी। पुत्तलिकानृत्य का भी यहाँ बड़ा योगदान था। इन्द्रध्वज आदि महोत्सव भी नाट्य की उत्पत्ति में सहकारी होते हैं। वस्तुत: नाट्य की उत्पत्ति मनुष्य की स्वाभाविक अनुकरण की प्रवृत्ति से होती है। आचार्य भरत तो नाट्य की उत्पत्ति अन्य कारण से निर्देशित करते हैं। उनके अनुसार वेवस्त मन्वन्तर में त्रेतायुग के प्रथम लोक में सुखदुख से अभिभूत ग्राम्यधर्म में प्रवृत्त उसके शिक्षण के लिए सभी वर्णों के लिए वेद रचना हेतु इन्द्रादि पितामह से प्रार्थना की ऋग्वेद् से पाठ्य को, साम से गीत को, यजुर्वेद से अभिनय को, अथर्व से रस को लेकर वेद उपवेद से सम्बद्ध नाट्यवेद को रचा। और फिर भरतमुनि ने उसके प्रयोग के लिए ब्रह्मा को कहा। इन्द्रध्वज महोत्सव के अवसर पर प्रारम्भ में नान्दी का प्रथम प्रयोग किया। परमेश्वर प्रणीत अमृतमन्थन नामक समवकार का सर्वप्रथम अभिनय किया। और फिर ब्रह्म ने द्वितीय त्रिपुरदाह नामक डिम रचा। यद्यपि भरत के मत में वास्तविकता की अपेक्षा पौराणिकत्व ही अधिक आनन्दित करता है फिर भी इससे यह तो सिद्ध होता है कि इन्द्रध्वजोत्सव नाटक का प्रथम प्रेरक है। नाट्योत्पत्ति के विषय में रिजवे महोदय का वीर पूजा, कीथ के प्राकृतिक परिवर्तन मत की अपेक्षा पिशेल का पुत्तिलकानृत्य मत की अपेक्षा कोन महोदय के छाया नाटक की अपेक्षा भी प्रशस्य है क्योंकि वह मत ही वस्तुत: नाट्याचार्य भरत के मत के साथ कहता है। अमृतमन्थन और त्रिपुरदाह वीरपूजा परम्परा के ही ग्रन्थ विशेष है।

नाटयस्य प्रयोजनं हि लोकरंजनपूर्वकं धर्मार्थकामशिक्षणम्। उक्तमेव-

'त्रिवर्गसाधनं नाटयम्।' लोक मनोरंजन ही नाट्य का मूलभूत उद्देश्य है। जैसा धनंजय कहते हैं- **'आनन्दनि: स्यन्दिषु रूपकेषु व्युत्पत्तिमात्रं फलमल्पबुद्धि:'** इति। दु:ख में, श्रम में, शोक में और तपस्वी के लिए समयानुसार यह नाट्य विश्रामजन्य होगा। नाट्य सभी का विनोदजन्य करने वाला है। जैसा कहा है कालिदास ने मालविकाग्निमित्र में-

''देवानामिदमामनन्ति मुनय: शान्तं क्रतुं चाक्षुष।
रुद्रेणेदमुमाकरव्यतिकरे स्वांगे विभक्तं द्विधा।
त्रैगुण्योद्भवमत्र लोकचरितं नानारसं दृश्यते
नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाऽप्येकं समाराधनम्॥'' इति (1।4)

अवस्था का अनुकरण नाट्य है और वह रस का आश्रय है। भावाश्रित नृत्य और तालालयाश्रित नृत्त है। वस्तु, नेता, रस भेद से नाट्य दस प्रकार का है। नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहामृग, अंक, वीथी, प्रहसन। कथा वस्तु दो प्रकार की है आधिकारिक और प्रासंगिक। और वह पुन: प्रसिद्ध और कल्पित के भेद से पुन: दो प्रकार की है। नेता चार प्रकार का है धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित, धीरप्रशान्त। रस आठ है- शृंगार, वीर, करुण, अद्भुत, हास्य, भयानक, वीभत्स, रौद्र। कुछ नाट्य में शान्त रस की भी पुष्टि करते हैं। रामचन्द्र के मत में उसकी भी पुष्टि अभिनय से सम्भव है।

पाठ-11

काव्य के प्रकार

ध्यान दें:

अभिनय ही नाट्य का जीवन है। वह चार प्रकार का है- वाचिक-आंगिक-आहार्य-सात्विक। नाट्य में नटादि पात्रों के तादम्य के द्वारा ही सामाजिकों को रसास्वादन होता है।

रूपक के प्रकार

रूपक के दस प्रकार है।

''नाटकमथ प्रकरणं भाणव्यायोगसमवकारडिमाः।
ईहामृगांकवीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश॥'' इति।

1. **नाटक**

भारतीय नाटकों का उद्भव कैसे हुआ इस विषय के विचार में पहले पाश्चात्य विद्वानों के मतों को देखना चाहिए। वहाँ रिजवे महोदय वीरपूजा से भारतीय नाटकों का उद्भव कहते हैं। उनके मत में मृत वीर पुरुषों के सम्मान के परिणाम स्वरूप भारत में नाटक की प्रवृत्ति आरम्भ हुई। रामलीला और कृष्णलीला इसी प्रकार की भावनाओं के परिणाम है।

डा. कीथ महोदय ने प्राकृतिक परिवर्तनों को मूर्त रूप में परिवर्तन करने से नाटकों की उत्पत्ति हुई। महाभाष्य में निर्दिष्ट कंसवध नामक नाटक में कृष्ण पक्षीय रक्त मुखी और कंसपक्षीय श्याममुखी होते हैं। वहाँ वसन्त की हेमन्त के ऊपर विजय दिखाना चाहते हैं। कृष्ण विजय प्रकृति प्रकोप के प्रति प्रकाश का प्रतीक है।

डा. पिशेल ने पुत्तिलका नृत्य से नाटकों का उद्भव कहा- नाटकों में प्रचलित सूत्र व्यस्थापकादि शब्द से उसकी उत्पत्ति का समर्थन किया है। सूत्रधार सूत्र को लेकर कठपुतली को नचाता है, और व्यवस्थापक यथा स्थान रक्षा करता है। ये सभी शब्द कठपुतली नृत्य में प्रयुक्त हैं, अब नाटकों में प्रयुक्त है। ऐसे पुत्तिलकानृत्य से नाट्य की उत्पत्ति कहते हैं।

कुछ पाश्चात्य विद्वान भारतीय नाटकों के उद्भव के लिए पोल नृत्य को आधार मानते हैं। ठण्डे पश्चिमी देशों में मई में यह होता है। उस मास में ध्वज का आरोहण कर स्त्री-पुरुष समाज नृत्य करता था। इस आधार से नाटक की उत्पत्ति हुई।

भारतीय विद्वानों ने नाटकों का उद्भव वेदों में स्थित सूक्तों से कहा। ऋग्वेद में अनेक प्रधान कथनोपकथन यमयमी सूक्त, सरमापाणि संवाद, ऊर्वशीपुरूरवा संवाद सूक्त आदि सूक्त हैं, जिनको आधार मानकर नाटकों की उत्पत्ति हुई उदाहरण रूप से ऊर्वशीपुरूरवा संवाद मूल को लेकर कालिदास के विक्रमोर्वशीयं नामक त्रोटक को कह सकते हैं।

जर्मन विद्वान डा. श्रोदर महोदय का भी यही विचार है। डा. हर्टल महोदय भी श्रोदर महोदय के विचार का अनुमोदन करते है। दूसरे विद्वान विण्डिश, ओल्डेनवर्ग, पिशेल का मुख्य अभिप्राय है कि संवादसूक्त पहले गद्य पद्यात्मक थे। पद्यभाग अतिरोचक है। गद्यभाग तो केवल वर्णन के द्वारा लुप्त प्रायः हो गया। नाटक में अब गद्य-पद्य का मिश्रण दिखाई देता है फिर भी इस प्रकार के संवाद सूक्त के समान ही। ये विद्वान ऐतरेयब्राह्मण के शुनः शेपोपाख्यान को और शतपथ ब्राह्मण के ऊर्वशीपुरूरव उपाख्यान का यहाँ उपस्थापन किया है।

नाटक नाम की उत्पत्ति के विषय में भारतीय को भरत के अनुसार मत को नीचे निर्दिष्ट किया

ध्यान दें:

गया है-

'महेन्द्रप्रमुखैर्देवैरुक्तः किल पितामहः।
क्रीडनीयकमिच्छामों दृष्यं श्रव्यं च यद्भवेत्॥' इति।

इस श्लोक से जानते हैं कि चतुर्मुख ब्रह्मा ने देवताओं के आनन्द के लिए नाटक को रचा। **'नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात्'** इति प्राचीन सम्प्रदाय वाले, आधुनिक तो कल्पित वृत्ति भी नाटक को मानते हैं।

रूपक नाटक के मध्य में प्राचीन समय से ही यही भेद निर्णय करता है कि नाटक में प्रसिद्ध वृत्त, रूपक में कवि कल्पित है। प्राचीन संस्कृत साहित्य में रूपकों का निर्माण भी अत्यन्त प्रयास से हुआ। यहाँ कुछ प्रसिद्ध रूप को को प्रदर्शित किया गया है-

क्रम	रूपक	कर्ता
1	मलतीमाधवम्	भवभूतिः
2	मृच्छकटिकम्	शूद्रकः
3	मल्लिकामारुतम्	उद्दण्डः
4	कौमुदीमित्रानन्दम्	जैनाचार्यहेमचन्द्रस्य शिष्यः रामचन्द्रः
5	प्रबुद्धरौहिणेयम्	विरामभद्रः
6	मुद्रितकुमुदचन्द्रम्	यशश्चन्द्रनामक जैनकविः

प्रबोधचन्द्रोदय-चैतन्यचन्द्रोदय-जीवानन्द-विद्यापरिणय आदि कवि कल्पित कथा घटित नाटक है। उनके पात्र कवि से कल्पित होकर भी प्रसिद्ध मनोभाव रूप से वर्णित है।

2. **प्रकरण**- प्रकरण में धीर प्रशान्त नायक होता है। नायिका कुलस्त्री गणिका होती है। शृंगार अंगी रस होता है। प्रकरण पंचात्मक होता है। प्रकरण का एक उदाहरण मृच्छकटिकम् है।

3. **भाण**- संस्कृत साहित्य में प्राचीन दृष्टि से भाण का स्थान भी नाटक के समान प्रतिष्ठित है। धूर्त नायक का चरित, एक अंक, हास्यरस प्रधान होकर भी सौभाग्य शौर्यादि वर्णन से शृंगार वीर रस, और भारती वृत्ति होती है। भाण की रचना यश प्राप्ति के लिए होती है। जैसा कहा है-

'वररुचिरीश्वरदत्तः श्यामिलकः शूद्रकश्च चत्वारः।
एते भाणान् बभणुः का शक्तिः कालिदासस्य॥'

भाण ग्रन्थों में वररुचि की उभयसारिका, शूद्रक का पद्माप्राभृतकम्, ईश्वदत्त का धूर्तविटसंवाद, श्यामिलक का पादताडितकम्, वामनभट्ट बाण का शृंगार भूषणम्, रामभद्रदीक्षित का शृंगारतिलकम्, वरदाचार्य का वसन्ततिलकम्, शंकर कवि का शारदातिलकम्, नल्लाकवि का शृंगार सर्वस्वम्, युवराज का रससदनभाण, साहित्यदर्पण में कहे लीलामधुकर इत्यादि ग्रन्थ हैं।

4. **व्यायोग**

व्यायोग नामक रूपक संस्कृत साहित्य में भी दुर्लभ नहीं है। व्यायोग में प्रसिद्ध वृत्त, स्त्री पात्र का अभाव, अधिक पुरुष पात्र, गर्भविमर्श सन्धि का अभाव, केशिकी वृत्ति और प्रख्यात नायक होता है। हास्य,

ध्यान दें:

शृंगार, शान्त से भिन्न रस है।

व्यायोग ग्रन्थों में बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में वत्सराज कवि का किरातार्जुनीय व्यायोग, भास का मध्यम व्यायोग, प्रह्लादन देव का पार्थपराक्रम, कांचनार्य का धनंजयविजय, रामचन्द्र का निर्भयभीम व्यायोग, विश्वनाथ का सौगन्धिकाहरणम् इत्यादि ग्रन्थ प्रसिद्ध है।

5. समवकार

समवकार में देवासुर आश्रित प्रसिद्ध वृत्त है, 12 नायक, वैदिक गायत्री आदि छन्द, वीर प्रधान रस है। समवकार में बहुत रस है। इस भेद का साहित्य अल्प है जैसे- वत्सराज का समुद्रमथनम्।

6. डिम

रौद्र रस प्रधान, ख्यात वृत्त, चार अंक, सोलह उद्धत नायक, शान्त, हास्य, शृंगार से भिन्न रसों से युक्त, कैशिकी के अतिरिक्त वृत्ति वाला डिम होता है। और इसका उदाहरण त्रिपुरदाह है। कहा है-

'इदं त्रिपुरदाहे तु लक्षणं ब्रह्मणोदितम्।
ततस्त्रिपुरदाहश्च डिमसंज्ञः प्रयोजितः॥'

वेकंटवर्य का 'कृष्णविजय', रामकवि का 'मन्मथोन्मथनम्' उदाहरण है।

7. ईहामृग

ईहामृग में ख्यात और कल्पित वृत्त, चार अंक, तीन सन्धि, संघर्ष संकुल कथानक होते हैं। प्राचीन 'वीरविजय, रुक्मिणीहरण' नामक ईहामृग ग्रन्थ यद्यपि उपलब्ध नहीं होता, फिर भी वत्सराज कृत रुक्मिणीपरिणय पुस्तक में प्राप्त उसका एक उदाहरण प्राप्त होता है। साहित्य दर्पण में कहे 'कुसुमशेखर विजय नामक ईहामृग ग्रन्थ अप्राप्य है।

8. वीथी

वीथी नामक रूपक भेद भाण के समान है, एक अंक शृंगार से भिन्न रूप रस, और कैशिकी वृत्ति है। 'माधवी वीथी' उदाहरण है।

9. अंक

पुराण इतिहास प्रसिद्ध कथानक, करुण प्रधान रस, वास्तविक युद्ध के अभाव में भी वाक् युद्ध इत्यादि सामग्री अंक में अपेक्षित है। इसका उदाहरण शर्मिष्ठा ययाति है। भास्कर कवि के उन्मत्तराघव नामक अंक का उदाहरण पुस्तक में प्राप्त होता है, परन्तु उसका रचनाकाल नहीं मिलता है।

10. प्रहसन

हास्य रस के समाज में महा उपयोगी शिष्ट हास का बहुत आदर है। पहले भी प्रहसन को बहुलता से नहीं लिखा गया है। फिर भी संस्कृत साहित्य में प्रहसन ग्रन्थ का एकान्ताभाव नहीं है।

प्रहसन में भाण के समान सन्धि आदि, कल्पित वृत्त, विषकम्भक प्रवेशक से रहित, और हास्य रस प्रधान होता है।

सबसे प्राचीन प्रहसन ग्रन्थ मत्तविलास है। उसके रचयिता पल्लव नरेश के सिंह विष्णु वर्मा के

ध्यान दें:

पुत्र महेन्द्र विक्रम वर्मा थे। और यह राजा हर्षवर्धनपुलकेशि द्वितीय के समकालिक है इनका समय सातवीं शताब्दी का पूर्वार्ध मान्य है।

11.4.2) उपरूपकम्

रूपक के समान आचरण करने वाले उपरूपक है। उपरूपक के अट्ठारह प्रकार हैं। उनके प्रकार सोदाहरण नीचे लिखें हैं।

1. नाटिका - रत्नावली।
2. त्रोटकम् - विक्रमोर्वशीयम्।
3. गोष्ठी - रैवतमदनिका।
4. सट्टकम् - कर्पूरमंजरी।
5. नाट्यरासकम् - नर्मवती।
6. प्रस्थानकम् - शृंगारतिलकम्।
7. उल्लाप्यम् - देवीमहादेवम्।
8. काव्यम् - यादवोदयम्।
9. प्रेंखणम् - वालीबधम्।
10. रासकम् - मेनकाहितम्।
11. संलापकम् - मायाकापालिकम्।
12. श्रीगदितम् - क्रीडारसातलम्।
13. शिल्पकम् - कनकावतीमाधवम्।
14. विलासिका - न प्राप्यते।
15. दुर्मल्लिका - बिन्दुमती।
16. प्रकरणिका - न प्राप्यते।
17. हल्लीश - केलीरैवतकम्।
18. भणिका - कामदत्ता।

11.5) दृश्य काव्य की प्राचीनता।

संस्कृत साहित्य में दृश्यकाव्यों का उदय प्राचीन काल में ही हुआ। वैदिक युग में दृश्यकाव्य का अस्तित्व प्रमाणित है। ऋग्वैदिक सूक्त से प्रतीत होता है कि सोमविक्रय के समय पर क्रियमाण के अभिनय का वर्णन तत्काल दृश्यकाव्य के अस्तित्व को बताता है। संहिता ब्राह्मण ग्रन्थों में शैलूष शब्द की उपलब्धि भी वैदिक युग में दृश्य काव्य के अस्तित्व को प्रमाणित करता है। महाव्रत में वृष्टि और पशु समृद्धि में उपलब्ध होकर अग्नि के सामने कुमारियों के नृत्य का वर्णन दिखाई देता है। फिर भी यहाँ अर्थ में प्रमाण

ध्यान दें:

का अभाव है। ऋग्वेद में यमयमी संवाद और सरमापाणि संवाद तब के नाटकों के अस्तित्व को जानने के लिए है। गान प्रधान सामवेद में भिक्षु संवादों में से और सती नाटकों के अस्तित्व को प्राप्त करने में असमर्थ ही है।

रामायणकाल में दृश्यकाव्यों के अस्तित्व का स्फुट प्रमाण उपलब्ध है। रामायण में शैलूष नट-नर्तक आदि दृश्य काव्य अंगों का नामोल्लेख है। सांची स्थान से प्राप्त मूर्तियों में कथक समूह की मूर्ति प्राप्त होती है जिसमें उनकी चेष्टा से अभिनय प्रकाशित होता है। महाभारत के अंगभूत हरिवंश में रामचरित के अभिनय का उल्लेख प्राप्त होता है। इन प्रमाणों के द्वारा दृश्य काव्य का उद्भव प्रमाणित होता है।

पाणिनी प्रणीत अष्टाध्यायी में **'पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः'** 4/3/110 'कर्मन्दकृशाश्वादिनिः' 4/3/111 ये दो सूत्र दिखाई देते हैं। इसलिए यह सिद्ध है कि वहाँ उस समय में नटों की शिक्षा के लिए सूत्रों को रचा गया। नटों की शिक्षा और अभिनय का प्रचुर प्रचार था।

पतंजलि महाभाष्य में भी उस समय के अभिनय के सद्भाव को प्रकट करते है। **'ये तावदेते शोभनिका नामैते प्रत्यक्षं कंसं घातयन्ति, प्रत्यक्षं च बलिं बन्धयन्ति'** ऐसा कहा। कंसवध और बलिवध अभिनय का वहाँ वर्णन किया गया है।

दूसरी शताब्दी में वात्स्यायन के कामसूत्र में लिखा है- **'पक्षस्य मासस्य वा प्रज्ञातेऽहनि सरस्वत्या भवने नियुक्तानां नित्यं समाजः। कुशीलवाश्चागन्तवः प्रेक्षकमेषां दद्युः'।** नागरिकों के मनोरंजन के साधन के लिए अभिनय है वात्स्यायन ने कहा है।

पाठगत प्रश्न-2

9. उषा देवी कहाँ नर्तकी रूप में चित्रित है?
10. मालती माधव किसके द्वारा रचित है?
11. शूद्रक के द्वारा विरचित नाटक का नाम क्या है?
12. भाण ग्रन्थ का एक उदाहरण दो?
13. त्रोटक का एक उदाहरण लिखिए।
14. कामदत्ता ग्रन्थ का उप रूपकों में कहाँ अन्तर्भाव होता है?
15. रूपक के कितने भेद हैं?
16. उप रूपक के कितने भेद हैं?
17. सट्टक किसका भेद है?

11.6) शैली के अनुसार काव्य के भेद

उपर्युक्त काव्य भेद काव्य के स्वरूप की दृष्टि से कहे गए हैं। शैली के अनुसार पुनः काव्य के तीन भेद हैं। गद्य काव्य, पद्य काव्य और चम्पू काव्य। गद्यात्मक काव्य गद्य काव्य, पद्यात्मक काव्य पद्य

ध्यान दें:

काव्य, गद्यपद्योभयात्मक काव्य चम्पू काव्य कहलाता है।

11.7) गद्य काव्य

संस्कृत में पद्य साहित्य के समान ही गद्य साहित्य का प्रकर्ष है। वेदकाल में भी गद्य का प्रयोग प्रचुर था। संहिता ग्रन्थों में गद्य की अधिक मात्रा मिलती है। अथर्ववेद की गद्यबहुलता सुप्रतीत है।

पद्य के प्रति लेखकों के नाम अतिशय से आयुर्वेद, ज्योतिषादि वैज्ञानिक ग्रन्थों में यद्यपि पद्य की अपेक्षा गद्य की मात्रा कम है फिर भी चरकादि में गद्य भाग भी प्राप्त है।

पद्यमय ग्रन्थ पाठकों को सुख की अनुभूति कराता है। कण्ठ में स्थापित पद्यमय ग्रन्थ ताल लय के आश्रय के द्वारा रोचक और उपयुक्त होता है। अधिक प्रयुक्त पद्यमय प्राचीन शास्त्रीय ग्रन्थों में भी गद्य का भी समावेश दुरपह्नव ही है।

संस्कृत गद्य के विकासक्रम से उदाहरण है जैसे- 'ऋतं च सत्यंचाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत, ततो राज्यजायत, तत: समुद्रोऽर्णव: समुद्रादर्णवादधि, संवत्सरोऽजायत, अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतोवशी, सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्, दिवं च पृथिवींचान्तरिक्षमथो स्व:।' ऋग्वेद के दशम मण्डल में और कृष्णयजुर्वेद में।

इस गद्य की शैली भाषण में प्रयुक्त शैली के समान है। और कठिन शब्द अधिक प्रयुक्त है। फिर ब्राह्मण ग्रन्थों में बहुलता से गद्य प्रयुक्त है, संहिता ग्रन्थों की अपेक्षा सरलता से समाविष्ट है।

'यदेतन्मण्डलं नयति तन्महदुक्थं ता ऋच: स ऋचां लोकोऽथ यदेतदर्चिर्दीप्यते तन्महाव्रतं तानि सामानि स साम्नां लोकोऽथ य एष एतस्मिन्मण्डले पुरुष: सोऽग्निस्तानि यर्जूषि संयजुषां लोक:'-मण्डलब्राह्मण में।

इसके बाद उपनिषदों में गद्य का प्रयोग मिलता है जैसे-

'श्वेतकेतुर्ह्यारुणेय आस तं ह पितोवाच श्वेतकेतो वस ब्रह्मचर्यम्, न वै सोम्यास्मत्कुलीनोऽननूच्य ब्रह्मबन्धुरिव भवति स ह द्वादशवर्षम् उपेत्य चतुर्विंशतिवर्ष: सर्वान् वेदानधीत्य महामना अनूचानमानी स्वब्ध एयाय। तं ह पितोवाच श्वेतकेतो यन्नु सोम्येदं महामना अनूचानमानी स्तब्धोऽस्युत तमदेशमप्राक्ष्य:। इति। छान्दोग्योपनिषद् 6।1.2।

इस वैदिक गद्य के उद्धरण के पर्यालोचन से सुख से जान सकते हैं कि गद्य का स्वरूप क्रमश: स्पष्ट था। संहिता की भाषा व्याकरण लक्षण से च्युत, उसकी अपेक्षा ब्राह्मणों की भाषा लक्षणशालिनी और स्पष्ट है, उपनिषद की भाषा व्याकरण सम्मित और स्फुट है उसके क्रमिक विकास का पर्याप्त उदाहरण प्राप्त होता है। लौकिक गद्य का प्रथम प्रयोग निरूक्त में किया जैसे-

''सर्वरसा: अनुप्राप्ता: पानीयमिति यथो एतदविस्पष्टार्था भवन्तीति नैष स्थाणोरपाधो यदेनमन्धो न पष्यति, पुरुषापराध: स भवति, यथा जानपदीषु विद्यात: पुरुषविशेषो भवति, पारोवर्यवित्सु तु खलु वेदितृषु भूयोविद्य: प्रशस्यो भवति।' इति (नैघण्टुककाण्डे)

इतने समय तक गद्य काव्याभाषा रूप में प्रयुक्त नहीं था, केवल व्यवहार की भाषा के रूप में प्रयुक्त था। यह क्रम ही शास्त्रीय गद्य में भी प्राप्त होता है। शास्त्रीय गद्यों में साहित्यिक चमत्कारों को धारण न करने का कोई भी प्रयास नहीं किया। इस प्रकार के गद्य के उदाहरण किसी कालक्रम से प्रस्तुत

ध्यान दें:

करते हैं।

'ये पुनः कार्याभावानिर्वृत्तौ तावत्तेषां यत्नः क्रियते। तद्यथा घटेन कार्यं करिष्यन् कुम्भकारकुलं मत्वाऽऽह---कुरु शब्दान् प्रयोक्ष्ये।' इति (महाभाष्यस्य पश्स्याह्निके)

इन गद्यों को पढ़ने से तत्कालिक गद्य की विकसित पूर्णता प्रतीत होती है। शबर स्वामी भाष्य में-

'इच्छयाऽऽत्मानमुपलभामहे, कथमिति? उपलब्धपूर्वे ह्यभिप्रेते भवतीच्छा। यथोमेरुमुत्तरेण यान्यस्मज्जातीयैः अनुपलब्धपूर्वाणि स्वादूनि वृक्षफलानि, न तानि प्रत्यस्माकमिच्छा भवति।'

अब तक गद्य का जो विकास क्रम प्रदर्शित किया है वह शास्त्रीय गद्य विषय अथवा लौकिक गद्य विषय मान सकते हैं। साहित्यिक गद्य तो सर्वप्रथम शिलालेखों में प्राप्त होता है। रुद्रदाम्न के शिलालेख में जो गद्य शैली दिखाई देती है वह नितान्त प्रौढ़ और ओज गुण से गुम्फित है।

गद्य साहित्य में प्रयुज्य सदैव गद्य काव्य नामक काव्य का भेद है। साहित्य प्रयोग और गद्य के शिलालेखों में यह प्रथम रचा प्रतीत होता है। सुबन्धु और बाणभट्ट के गद्य के बहुत समय पूर्व ही रुद्रदाम्न का शिलालेख गद्य शैली में लिखा उदाहरण है।

हरिषेण के प्रयाग प्रशस्ति विजयस्तम्भ के वर्णन में-

'सर्वपृथिवीजयजनितोदयव्याप्तनिखिलावनितलां कीर्त्तिमितस्त्रिदशपतिभवनगमनावाप्तललित सुखविचरणामाचक्षाण इव भुवोर्बाहुरयमुच्छ्रितः स्तम्भः।' इति।

इस प्रकार वैदिक साहित्य से आरम्भ होकर प्रयाग प्रशस्ति लेख काल तक गद्य साहित्य का विकसित रूप वर्तमान में प्रतीत होता है।

11.8) पद्य काव्य

जिस काव्य में केवल पद्य ही होते हैं वह काव्य पद्य काव्य कहलाता है। यहाँ कवि श्लोक के द्वारा ही विषय का वर्णन करते हैं। पांच महाकाव्य है। वे यथाक्रम है रघुवंशम्, कुमारसम्भवम्, किरातार्जुनीयम्, शिशुपालवधम्, नैषधीयचरितम्। इससे अलग उदाहरण नीचे दिए गए है।

जयद्रथ का 'हरचरितचिन्तामणिः'

कश्मीर में उत्पन्न जयद्रथ के द्वारा हरचरितचिन्तामणि नामक महाकाव्य को रचा। यह जयद्रथ अलंकार विमर्श के कर्त्ता प्रसिद्ध अलंकारशास्त्री जयरथ के भ्राता थे। दोनों भाई 1203-1226 ई. के राजदेव नाम के राजा के अधीन थे ऐसा प्रसिद्ध है। इस कारण उनका समय 13वीं शताब्दी का आरम्भ निश्चित होता है।

हरचरितचिन्तामणि की भाषा सरल, पुराण पाठ के समान इससे पाठक में रसास्वाद उत्पन्न होता है।

लोलिम्बराज का 'हरिविलासकाव्य'

यह लोलिम्बराज आयुर्वेद क्षेत्र में प्रसिद्ध वैद्य जीवन के कर्ता के द्वारा प्रसिद्ध है। इसका हरिविलास काव्य लघु काव्य होकर भी गुणों से भरा है। इसका समय ग्यारहवीं शताब्दी मानते हैं। यह भोजराज के समकालीन किसी हरिहरनाम के दक्षिण भारतीय सम्राट का समकालीन था। यह अत्यन्त सरस कवि था।

ध्यान दें:

इस काव्य में कृष्ण की बाललीलाओं का सरस और शृंगारिक वर्णन किया गया है।

11.9) चम्पू काव्य

जिस काव्य में गद्य है पद्य भी हैं वह गद्य पद्योभयात्मक काव्य है। वह ही चम्पू कहलाता है। गद्य काव्यगत अर्थ गौरव पद्य काव्यगत अर्थ गौरव और रागमयत्व दोनों मिलकर चम्पू काव्य में अधिक चमत्कार को उत्पन्न करते हैं।

चम्पू का लक्षण

सर्वप्रथम आचार्य दण्डी ने 'गद्यपद्यमयी वाणी चम्पूरित्यभिधीयते' इति चम्पू के लक्षण को कहा। 'गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूः' इति उस लक्षण में वाणी के स्थान पर काव्य पद के होने पर भी कोई नवीनता नहीं।

'क्वचिदत्र भवेदार्या क्वचिद् वक्त्रापवक्त्रे।
आदौ पद्यैर्नमस्कारः खलादेर्वृत्तकीर्त्तनम्॥'

इस लक्षणानुरोध से कथा आख्यायिका भी गद्यपद्यमिश्रित होने पर भी चम्पू के लक्षण से नहीं मिलती।

चम्पूकाव्यों में तो गद्यपद्य की मात्रा प्रायः समान होती है। कोई भी एक अंग अधिक नहीं होता। इस विषय में कवि सतर्क रहते है।

चम्पूकाव्य का विकास

चम्पू काव्य गद्य काव्य का ही परिमार्जित रूप है। यद्यपि यजुर्वेद में गद्यपद्य का मिश्रण प्राप्त होता है। फिर भी वह चम्पू प्रकार का नहीं है। गद्यपद्य में निबद्ध पाली जातक ग्रन्थों में भी चम्पू का स्वरूप् नहीं दिखाई देता है। इसलिए आर्यसूरि द्वारा रचित जातक माला को ही चम्पूकाव्य का आदि स्रोत कह सकते है। हरिषेण के प्रयाग प्रशस्ति को गद्यपद्यमिश्रण का प्राथमिक प्रयोग मान सकते हैं। यद्यपि जातकमाला और हरिषेण की प्रयाग प्रशस्ति गद्यपद्यमिश्रित शरीर को धारण करते हैं फिर भी चम्पूकाव्य वास्तविक रूप में दसवीं शताब्दी के आदि में ही नलचम्पू के रूप में प्राप्त हुआ।

पाठगत प्रश्न-3

18. गद्यकाव्य क्या है?
19. पद्यकाव्य क्या है?
20. पद्यकाव्य का एक उदाहरण दो?
21. चम्पूकाव्य का लक्षण क्या है?
22. लोलिम्बराज का हरिविलास काव्य गद्यकाव्य अथवा पद्यकाव्य है?

पाठ-11

काव्य के प्रकार

ध्यान दें:

पाठ सार

इस पाठ में संस्कृत साहित्य का कुछ स्वरूप प्रदर्शित कर काव्य के प्रकार को वर्णित किया गया है। बहुत प्रकार से काव्य के प्रकारों को प्रदर्शित किया है। स्वरूप के अनुसार काव्य के दो भेद प्रदर्शित किए हैं। वह दृश्य काव्य और श्रव्य काव्य है। श्रव्य काव्य के भी पुनः महाकाव्य, खण्ड काव्य, श्लेषकाव्य, यमक काव्य इत्यादि भेद उदाहरण के साथ दिखाए गए हैं। दृश्य काव्य के रूपक उपरूपक दो भेदों को विस्तार से वर्णित किया है। रूपक के दस भेद और उपरूपक के अट्ठारह भेदों को यहाँ आलोचित किया है।

फिर शैली के अनुसार काव्य के गद्य, पद्य, चम्पू तीन भेद प्रदर्शित किए। गद्य काव्य के विषय में, पद्यकाव्य के विषय में और चम्पू काव्य के विषय में उन लक्षणों और उदाहरणों को वर्णित किया है। गद्यात्मक काव्य को गद्यकाव्य कहते हैं। पद्यात्मक काव्य को पद्यकाव्य कहते हैं गद्यपद्योभयात्मक काव्य को चम्पूः कहते हैं।

आपने क्या सीखा

- काव्य प्रकारों को जाना
- काव्याभिधान का संक्षिप्त परिचय
- काव्यभेद व प्रयोजन
- काव्यभेद में कारण
- काव्यकर्तृ के विषय में
- विविध काव्यों के विषय में
- दृश्यकाव्यादि के स्वरूप को जाना।

पाठान्त प्रश्न

1. दृश्यकाव्य की प्राचीनता को बताइए?
2. चम्पूकाव्य को सलक्षण सोदाहरण बताइए।
3. रूपक के दश भेदों का वर्णन कीजिए?
4. उप रूपकों के भेदों के नाम और उदाहरणों को लिखिए।
5. शास्त्रकाव्य के विषय पर लघु प्रबन्ध लिखिए।
6. देवकाव्य के विषय पर लघु टिप्पणी लिखिए।
7. महाकाव्य खण्डकाव्य पर आधारित लघु निबन्ध लिखिए।
8. यमक काव्य के स्वरूप और उदाहरण को वर्णित कीजिए?

पाठ-11

काव्य के प्रकार

ध्यान दें:

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

उत्तर-1

1. वाक्पतिराज का गउडवहो।
2. पौराणिक काव्य।
3. आठ
4. शास्त्र काव्य
5. भट्टभीम के द्वारा
6. नीतिवर्मा का कीचकवध।
7. श्लेष काव्य
8. सत्रहवीं शताब्दी

उत्तर-2

9. ऋग्वेद में
10. भवभूति द्वारा रचित
11. मृच्छकटिकम्
12. वररुचि की उभयाभिसारिका
13. विक्रमोर्वशीयम्
14. भणिका का अन्तर्भाव होता है।
15. दस भेद
16. अट्ठारह भेद
17. उपरूपक का

उत्तर-3

18. गद्यात्मक काव्य गद्यकाव्य है।
19. जिस काव्य में केवल पद्य ही हो वह पद्य काव्य कहलाता है।
20. कुमारसम्भव
21. 'गद्यपद्यमयी वाणी चम्पूरित्यभिधीयते' इति चम्पूलक्षणम्।
22. पद्यकाव्य